'आँखकी किरकिरी'

१

विनोदिनीकी मा हरिमतीने महेन्द्रकी मा राजलक्ष्मीके घर जाकर धरना दे दिया। दोनों एक ही गाँवकी लड़की हैं और बचपनमें एकसाथ खेली हैं।

राजलक्ष्मीने महेन्द्रपर दबाव डालतेहुए कहा, "बेटा महेन्द्र, इस गरीबकी लड़कीका उद्धार करना ही है। सुना है, लड़की देखनेमें बड़ी सुन्दर है, और मेमने उसे पढ़ाया-लिखाया है। तुमलोगोंकी आजकलकी पसन्दसे उसका पूरा मेल बैठ जायगा।"

महेन्द्रने कहा, "मा, आजकलके लड़के तो मेरे सिवा और भी बहुतसे हैं।"

राजलक्ष्मीने कहा, "बेटा, यही तो तेरेमें दोष है। तेरे आगे ब्याहकी बात छेड़ना ही मुश्किल है।"

महेन्द्रने कहा, "मा, इस बातको छोड़कर और भी तो बहुत-सी बातें हैं, संसारमें बातोंकी तो कोई कमी नहीं। इसलिए मेरा यह दोष ऐसा कोई खतरनाक नहीं।"

महेन्द्र बचपनसे ही पितृहीन है; और इसीलिए माके साथ उसका व्यवहार साधारण पुत्रों-जैसा नहीं है। महेन्द्रकी उमर लगभग बाईस सालकी हो चुकी, और अब वह एम० ए० पास करके डाक्टरी पढ़ रहा है, किन्तु फिर भी माके साथ उसका प्रतिदिनका बाल-हठ, रूठन-मचलना और अपनी जिदपर अड़ जाना ज्यों-का-त्यों जारी है। कंगारूका बच्चा जैसे मातृगर्भसे जन्म लेनेके बाद भी माके बहिर्गर्भके थैलेमें अपनेको आवृत रखनेका अभ्यस्त बन जाता है, महेन्द्रकी भी ठीक वही दशा है। माकी सहायताके बिना उसका आहार-विहार आराम-विराम लगभग असम्भव-सा हो गया है।

अबकी बार माने जब विनोदिनीकेलिए महेन्द्रपर काफी दबाव डाला, तो उससे कतराते नहीं बना, उसने कहा, "अच्छा, लड़कीको एक बार देख लूं।

और जब देखनेका दिन आया ला, "देखके क्या करना है ! मुझे तुम्हें सुखी करनेके लिए ब्याह करना भले-बुरेका विचार करना ही व्यर्थ है

उसकी बातमें कुछ नाराजगी थी, किन्तु फिर भी माने सोचा। 'शुभदृष्टिके समय उनकी पसन्दके जब पुत्रकी पसन्दका निर्णयात्मक मे होगा, तब महेन्द्रका यह 'तीव्र'-स्वमल' में रूपान्तरित हो जायगा।'

राजलक्ष्मीने निश्चिन्त-चित्तसे का दिन सुधवा लिया। और ब्याहक दिन ज्यों-ज्यों नजदीक आने लगा यों महेन्द्रका मन उत्कण्ठित होने लगा और अन्तमें जब दो-चार दिन बह गये तब वह कह बैठा, "नहीं, मा यह मुझसे हरगिज नहीं होगा।"

बचपनसे महेन्द्र देवता और व दोनोंसे सब तरहका प्रश्रय पाता आ रहा है ; और इसीलिए उसकी इच्छा वेग उच्छृङ्खल है। पराई इच्छाका दबाव उससे सहा नहीं जाता। उसने देखा कि स्वयं उसकी प्रतिज्ञाने और दूसरेके अनुरोधने उसे बहुत ज धर दबाया है और उसे ब्याह करनेके मजबूर कर दिया है, तब विवाहके उसकी अकारण वितृष्णा अत्यन्त प्रबल हो उठी, और ऐन मौकेपर वह बिल ही विमुख होकर नाहीं कर बैठा।

महेन्द्रका परम मित्र था बिहारी वह महेन्द्रको 'भाई साहब' और उसकी माको 'मा' कहता था। मा उसे 'म-बोट' के पीछे बंधे 'लद्दू-बोट' की तरह महेन्द्रका एक आत्यावश्यक भारवाही असबाबके समान समझती थीं, और उसी लिहाजसे उससे ममता भी करती थ राजलक्ष्मीने उसे बुलाकर कहा, "बेटा, अब यह काम तो तुम्हींको करना हो, नहीं तो गरीबकी लड़की –"

बिहारीने हाथ जोड़कर कहा, ", यह काम मुझसे नहीं होनेका। तुम्हारे अनुरोधसे, महेन्द्रको जो मिठाई नहभाई उसे मैं बराबर खाकर निबटाता रहा हूं, पर लड़कीके विषयमें ऐसा हरगि नहीं हो सकता।"

राजलक्ष्मी सोचने लगीं, 'भला हारी ब्याह करेगा ! उसे तो सिर्फ महेन्द्र चाहिए, ब्याह करके बहू लानेकी बा तो उसके कभी मनमें ही नहीं आती।' और यह सोचकर बिहारीके प्रति उनकी कृपा-मिश्रित ममता और भी जरा बढ़ जाती।

विनोदिनीके पिता कोई खास धनी नहीं थे, किन्तु फिर भी उन्होंने अपनी इकलौती पुत्रीको घरपर मिशनरी मेम रखकर बड़े जतनसे पढ़ाया-लिखाया था और दस्तकारीका काम सिखाया था। लड़कीकी उमर बराबर बढ़ती ही जाती थी, फिर भी उन्हें कुछ होश न था। अन्तमें, पिताकी मृत्युके बाद, उसकी विधवा मा उसके लिए लड़का तलाश करते-करते हैरान हैं, – कहीं कोई दिखाई ही नहीं देता, जिसके हाथ लड़की सौंपकर वे निश्चिन्त हो सकें। एक तो रुपया-पैसेसे हाथ खाली, उसपर लड़की उमरमें बड़ी !

अन्तमें राजलक्ष्मीने अपनी जन्मभूमि बारासतके एक ग्राम-सम्पर्कीय भतीजेके साथ विनोदिनीका व्याह करा दिया।

व्याहके थोड़े दिन बाद ही विनोदिनी विधवा हो गई। महेन्द्रने फीकी हँसी हँसते-हुए कहा, "मेरी तकदीर अच्छी थी जो व्याह नहीं किया, नहीं तो स्त्रीके विधवा होनेपर मैं एक घड़ी भी संसारमें नहीं टिक सकता था !"

लगभग तीन साल बाद और-एक दिन मा-बेटोंमें बात हो रही थी।

माने कहा, "बेटा, लोग तो मेरी ही निन्दा करते हैं !"

महेन्द्र बोला, "क्यों मा, लोगोंका तुमने कौन-सा सत्यनास किया है ?"

माने कहा, "लोग कहते हैं, मैं तेरा इस डरसे व्याह नहीं कर रही हूं कि बहू आनेपर लड़का पराया हो जायगा !"

महेन्द्रने कहा, "डर तो होना ही चाहिए। तुम्हारी जगह अगर मैं मा होता, तो लड़केका व्याह हृदयसे हरगिज नहीं कर सकता था। लोक-निन्दाको मैं खुशी-खुशी शिरोधार्य कर लेता।"

माने हँसते-हुए कहा, "लो सुनो, जरा लड़केकी बात सुनो !"

महेन्द्रने कहा, "बहू आकर तो लड़केको अपने बसमें कर ही लेती है। तब फिर इतना कष्ट उठानेवाली, इतना स्नेह करनेवाली मा न-जाने कहाँ हट जाती है ! यह तुम्हें अच्छा लगे तो लगता रहे, मुझे तो अच्छा नहीं लगता।"

राजलक्ष्मीने मन-ही-मन पुलकित होकर अपनी हाल-ही-में आई-हुई विधवा देवरानीको सम्बोधित करते-हुए कहा, "सुन लिया, मझली बहू ! महेन्द्रकी बात

तो सुनो ! बहू आकर कहीं मासे बढ़ न जाय – इस डरसे बेटा ब्याह नहीं करना चाहता ! ऐसी तीन-लोकसे-न्यारी बात सुनी है कभी ?"

चाचीने महेन्द्रसे कहा, "यह बात तो, बेटा, तुम्हारी बेजा ही है। जिस समयकी जो बात हो, उसीमें शोभा है। अब माका आँचल छोड़कर बहूके साथ घर-गृहस्थी करनेका समय है, अब दुधमुहे बच्चेकी तरह रहना थोड़े ही शोभा देता है। बड़ी शरमकी बात है !"

किन्तु राजलक्ष्मीको यह बात विशेष मधुर नहीं मालूम हुई। और इस प्रसङ्गमें उन्होंने जो-कुछ कहा वह सरल हो सकता है किन्तु मधु-लिप्त हरगिज नहीं। वे बोलीं, "मेरा लड़का अगर और-किसीके लड़केसे अपनी माको ज्यादा प्यार करता हो तो तुम्हारे लिए उसमें शरमकी कौनसी बात है, मझली बहू ! तुम्हारे लड़का होता तो लड़केका मरम समझतीं !"

रजलक्ष्मीने समझा कि पुत्र-सौभाग्यवतीसे पुत्रहीना ईर्षा कर रही है।

मझली-बहूने कहा, "तुम्हींने ब्याहकी बात छेड़ी थी, इसीसे बात उठी, नहीं तो मुझे बीचमें बोलनेका हक ही क्या था !"

राजलक्ष्मीने कहा, "मेरा लड़का अगर बहू नहीं लाना चाहता, तो तुम्हारी छातीमें शूल क्यों चुभता है ? मेरा तो ऐसे ही अच्छा है,– अब तक अगर मैं लड़केको पाल-पोसकर इतना बड़ा कर सकी हूं, तो आगे भी उसकी देखभाल कर सकूंगी, इसमें और-किसीकी जरूरत नहीं पड़ेगी।"

मझली-बहू आंसू पोंछती-हुई चुपचाप वहांसे चली गई। महेन्द्रके मनको इससे बड़ी चोट पहुंची।

कालेजसे जल्दी घर आकर वह सीधा अपनी चाचीके पास पहुंच गया।

चाचीने उससे जो-कुछ कहा था उसमें स्नेहके सिवा और कोई बात नहीं थी, इस बातको वह निश्चित-रूपसे जानता है, और यह भी उसे मालूम है कि उसकी चाचीके एक पितृमातृ-हीन बहनौत है, और महेन्द्रके साथ उसका ब्याह कराके यह सन्तानहीन विधवा किसी सूत्रसे अपनी बहनकी लड़कीको पास रखकर सुखी देखना चाहती है। यद्यपि ब्याह करना उसे स्वीकार नहीं, फिर भी चाचीकी इस भीतरी इच्छाको वह स्वाभाविक और अत्यन्त करुणाजनक समझता है।

महेन्द्र जब चाचीके कमरेमें गया तब दिन ढलनेमें बहुत ज्यादा देर नहीं थी। उसको चाची अन्नपूर्णा अपने कमरेमें खिड़कीकी छड़ोंपर सिर टेके शुष्क विमर्ष मुँह किये बैठी थीं। बगलके कमरेमें उनकी थाली ज्योंकी त्यों ढकी-हुई पड़ी थी, अब तक उन्होंने खाया-पीया कुछ भी नहीं।

मामूली-सी कोई बात होते ही महेन्द्रकी आँखोंमें तुरत आँसू भर आते हैं। चाचीको देखकर उसकी आँखें भर आईं। उसने उनके पास जाकर स्निग्धस्वरमें पुकारा, "चाची!"

अन्नपूर्णाने हँसनेकी कोशिश करते-हुए कहा, "आ महेन्द्र, बैठ।"

महेन्द्रने कहा, "बड़ी भूख लगी है, चाची, तुम्हारा प्रसाद खाना चाहता हूं।"

अन्नपूर्णा महेन्द्रका कौशल समझ गईं, और उमड़ते-हुए आँसुओंको किसी कदर रोककर उन्होंने खुद खाया और महेन्द्रको भी खिला दिया।

महेन्द्रका हृदय उस समय करुणासे भीगा-हुआ था। चाचीको सान्त्वना देनेके लिए भोजन करनेके बाद सहसा वह मनकी तरङ्गमें कह बैठा, "चाची, तुम्हारी वो जो एक बहनौत थी न, जिसका तुमने जिकर किया था, उसे एक बार दिखाओगी नहीं मुझे?"

और, बात मुँहसे निकल जानेके बाद ही वह डर गया।

अन्नपूर्णाने हँसते-हुए कहा, "अब ब्याह करनेको मन चला है क्या तेरा?"

महेन्द्रने तुरत जवाब दिया, "नहीं, अपने लिए नहीं, चाची, मैंने बिहारीको राजी कर लिया है। तुम लड़की देखनेका कोई दिन तय करा दो।"

अन्नपूर्णाने कहा, "अहा, उसके ऐसे भाग्य कहाँ! बिहारी जैसा वर उसके भाग्यमें कहाँ बदा है!"

चाचीके कमरेमेंसे निकलते ही दरवाजेके बाहर महेन्द्रकी मासे भेंट हो गई।

राजलक्ष्मीने पूछा, "क्यों महेन्द्र, अब तक तुमलोगोंमें क्या सलाह हो रही थी?"

महेन्द्रने कहा, "सलाह कुछ भी नहीं, पान लेने आया था।"

माने कहा, "तेरे पान तो मेरे कमरेमें लगे रखे हैं।"

महेन्द्र कुछ उत्तर न देकर चला गया।

राजलक्ष्मीने अन्नपूर्णाके कमरेमें जाकर उनकी रोनेसे फूली-हुई आँखें देखते ही बहुत-सी बातोंकी कल्पना कर ली। और चटसे फुसकारती-हुई बोल उठीं, "कहिये मझली-देवीजी, लड़केसे सब भिड़ा चुकीं कि कुछ बाकी है?"

इतना कहकर राजलक्ष्मी उत्तरको प्रतीक्षा किये बगैर ही बड़ी तेजीसे वहाँसे चल दीं।

२

'लड़की देखने जाने' की बात महेन्द्र तो लगभग भूल ही गया था, किन्तु अन्नपूर्णा नहीं भूलीं। उन्होंने श्यामबाजार लड़कीके अभिभावक ताऊको चिट्ठी लिख दी, और उसमें उन्होंने 'लड़की देखने' का दिन भी तय कर दिया।

महेन्द्रने जब सुना कि चाचीने 'लड़की देखने जाने' का दिन भी तय कर दिया है तब उसने चाचीसे जाकर कहा, "इतनी जल्दी क्यों कर डाली, चाची? मैंने तो अभी बिहारीसे कहा भी नहीं।"

अन्नपूर्णाने कहा, "यह क्या बात, महेन्द्र! यह कैसे हो सकता है! अब अगर देखने नहीं गये, तो वे क्या समझेंगे अपने मनमें?"

महेन्द्रने बिहारीको बुलाकर उससे सब बात कह दी। फिर बोला, "चलो तो सही, पसन्द नहीं आई तो कोई जबरदस्ती तो लाद नहीं देगा।"

बिहारीने कहा, "सो मैं नहीं कह सकता। चाचीकी बहनौतको देखनेके बाद 'पसन्द नहीं' कहना मेरे मुँहसे नहीं निकलनेका।"

महेन्द्र बोला, "यह तो और भी अच्छी बात है।"

बिहारीने कहा, "किन्तु यह तुमसे बड़ा बेजा काम हो गया, महेन्द्र-भइया! अपनेको हलका रखकर दूसरेके कंधेपर ऐसा बोझ लादना तुम्हारे लिए उचित नहीं हुआ। अब चाचीके मनको चोट पहुंचाना मेरे लिए अत्यन्त कठिन होगा।"

महेन्द्रने जरा लज्जित और रुष्ट होकर कहा, "तो क्या करना चाहते हो?"

बिहारीने कहा, "जब कि मेरे नामसे तुम उन्हें आशा दे चुके हो, तो मुझे ब्याह करना ही है। देखने जानेका पाखण्ड करना कोई मानी नहीं रखता।"

बिहारी अन्नपूर्णाकी देवीके समान भक्ति करता है।

अन्तमें अन्नपूर्णाने खुद बिहारीको बुलाकर कहा, "यह कैसे हो सकता है, बेटा ! लड़की बिना देखे ब्याह करोगे, नहीं, यह हरगिज नहीं होगा। लड़की पसन्द न आई तो मैं तुम्हें हरगिज ब्याह न करने दूंगी, मेरा यह प्रण रहा।"

निर्धारित दिन भी आ गया। महेन्द्रने कालेजसे लौटकर मासे कहा, "मा, "मेरा वो रेशमी कोट और ढाकेकी धोती तो निकाल दो।"

माने कहा, "क्यों, कहाँ जाना है ?"

महेन्द्रने कहा, "जरूरत है, तुम निकाल दो न,– पीछे सब बता दूंगा।"

महेन्द्रसे जरा-कुछ सजधज किये बिना न रहा गया। दूसरेके लिए होनेपर भी 'लड़की देखने' के प्रसङ्ग-मात्रसे यौवन-धर्म अपने-आप बालोंको जरा सँवार लेता है और दुपट्टेमें जरा सुगन्ध भी छिड़क लेता है।

दोनों मित्र लड़की देखने चल दिये।

लड़कीके ताऊ श्यामबाजार रहते हैं, नाम है अनुकूलचन्द्र। खाते-पीते खुश हैं, और अपनी कमाईसे उन्होंने कलकत्तेमें बगीचा-समेत तिमंजिला मकान भी बनवा लिया है, जो मुहल्लेमें अपना सिर ऊँचा किये शानसे खड़ा है।

गरीब भाईकी मृत्युके बाद पितृमातृ-हीन भतीजीको वे अपने घर ले आये हैं। लड़कीकी मौसी अन्नपूर्णाने कहा था, "मेरे पास ही रहने दो।" इसमें खर्चमें कमी जरूर होती, किन्तु साथ ही इज्जतमें जो कमी पड़ती ! इसलिए वे राजी नहीं हुए। यहाँ तक कि मिलने-जुलनेके लिए भी लड़कीको वे मौसीके घर नहीं जाने देते। अपनी मान-मर्यादाके विषयमें वे इतने कड़े हैं !

लड़की जब सयानी हुई तो 'विवाह-भावना' (ब्याहकी चिन्ताका) समय आ गया, किन्तु कठिनाई यह थी कि आजकलके जमानेमें कन्याके ब्याहके विषयमें 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' का नियम लागू नहीं होता। 'भावना' के साथ खर्च भी चाहिए। दहेजकी बात छिड़ते ही अनुकूल प्रतिकूल हो उठते हैं, कहते हैं, "मेरे अपनी लड़कियाँ भी तो हैं, मैं अकेला कहाँ तक क्या कर सकता हूं !" इस तरह दिन बीतते जा रहे थे। इतनेमें, खूब सज-धजकर कपड़ोंमें खुशबू लगाकर रङ्गभूमिमें मित्रके साथ महेन्द्रने प्रवेश किया।

चैतका महीना है, दिनान्तमें सूर्य अस्त होना चाहता है। दूसरी मंजिलका खुला-हुआ बरण्डा है, चित्र-विचित्र चिकनी चीनी टाइलोंका फर्श है, और उसके एक किनारे दोनों अभ्यागतोंके लिए चाँदीकी तश्तरियोंमें फल और मिठाइयाँ सजी-हुई हैं और बरफ-जलसे भरे चाँदीके गिलासोंपर हिमकण शोभा पा रहे हैं। महेन्द्र बिहारीके साथ सङ्कोचके साथ जलपान करने बैठा। नीचे बगीचेमें माली उस समय झारी लिये-हुए पेड़-पौधोंको पानी दे रहा था, और उस भीगी-हुई मट्टीकी सौंधी सुगन्धको ऊपर तक बहाये ला रही थी चैतकी दखिनी हवा, जो महेन्द्रकी सफेद चुनी-हुई चादरको चंचल किये दे रही थी। आसपासके दरवाजों और खिड़कियोंकी ओटमेंसे थोड़ी-बहुत दबी हँसी और कानाफूसी, और कभी-कभी गहनोंकी हलकी खनक भी सुनाई पड़ रही थी।

जलपान हो चुकनेके बाद अनुकूल बाबूने भीतरकी ओर देखते-हुए कहा, "चुन्नी, जरा पान तो ले आ।"

कुछ देर बाद बड़े संकोचके साथ पीछेका एक दरवाजा खुल गया; और उसमेंसे एक बालिका न-जाने कहाँसे अपने सर्वाङ्गमें दुनिया-भरकी लज्जा लपेटकर हाथमें पानदान लिये अनुकूल-बाबूके पास आ खड़ी हुई। अनुकूलचन्द्रने कहा, "इतनी शरमाती क्यों हो, बेटी! पानदान रख दो इनलोगोंके सामने।"

बालिकाने झुककर काँपते-हुए हाथसे पानदान अतिथियोंके आसनके पास जमीनपर रख दिया। बरामदेके पश्चिमकी ओरसे सूर्यास्तकी सुनहली आभाने आकर बालिकाके लज्जित मुखमण्डलको और भी आरक्त कर दिया। और ठीक इसी मौकेसे महेन्द्रने उस काँपती-हुई बालिकाकी करुण मुखच्छविको एक बार अच्छी तरह देख लिया।

बालिका उसी समय चली जा रही थी; किन्तु अनुकूल-बाबूने उसे टोकते हुए कहा, "जरा ठहर जा, चुन्नी! बिहारी-बाबू, यह मेरे छोटे भाई अपूर्वकी लड़की है। बाप बेचारा असमयमें चल बसा। अब मेरे सिवा संसारमें इसका कोई भी नहीं।" इतना कहकर उन्होंने एक गहरी साँसली और चुप हो गये।

महेन्द्रके हृदयपर दयाने आघात किया। अनाथाकी ओर फिर उसने एक बार आँख उठाकर सार्थ-दृष्टिसे देख लिया।

लड़कीकी उमर कोई भी साफ-साफ नहीं बताता था। आत्मीय-स्वजन कहते, "यही समझो, बारह-तेरह सालकी होगी।" अर्थात् चौदह-पन्द्रह वर्ष होनेकी ही अधिक सम्भावना है। किन्तु अनुग्रह-पालित होनेसे एक प्रकारके कुण्ठित भीरु-भावने उसके नवयौवनको संयत और संवृत कर रखा था।

आर्द्र-चित्तसे महेन्द्रने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

अनुकूलचन्द्रने बालिकाको उत्साहित करते-हुए कहा, "बता दो, बेटी, अपना नाम बता दो।"

बालिकाने आदेश-पालनके अभ्यस्त-स्वरमें कहा, "मेरा नाम आशालता।"

आशा! महेन्द्रको ऐसा लगा कि नाम बहुत ही करुण और कण्ठ अत्यन्त कोमल है। 'अनाथा आशा!'

दोनों मित्र नीचे उतरकर गाड़ीपर सवार हुए, और गाड़ी चल दी।

महेन्द्र बोला, "बिहारी, इस लड़कीको तुम मत छोड़ना!"

बिहारीने उसकी बातका स्पष्ट उत्तर न देकर कहा, "लड़कीको देखकर मुझे उसकी मौसीका खयाल आ जाता है। मैं समझता हूं, यह भी उन्हीं-जैसी सती-लक्ष्मी होगी।"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारे कंधेपर जो बोझ लादा जा रहा है, शायद अब तुम्हें उसका भार उतना असह्य नहीं मालूम होगा?"

बिहारीने कहा, "नहीं, मालूम होता है सह सकूंगा।"

महेन्द्रने कहा, "जरूरत क्या है इतना कष्ट उठानेकी! न-हो-तो तुम्हारा बोझ मैं ही अपने कंधेपर लिये लेता हूं। क्या कहते हो?"

बिहारीने गम्भीरताके साथ एक बार महेन्द्रके मुँहकी ओर देखा और फिर कहा, "महेन्द्र-भइया, सच कह रहे हो? अब भी ठीक-ठीक बता दो। तुम ब्याह करो तो चाची बहुत ज्यादा खुश होंगी,— और फिर तो लड़की हमेशा उनके पास ही बनी रहेगी।"

महेन्द्रने कहा, "तुम पागल हुए हो! ऐसा होता तो बहुत पहले ही हो जाता।"

बिहारीने ज्यादा आपत्ति नहीं की, और वह अपने घर चला गया।

महेन्द्र भी सीधा रास्ता छोड़कर इधर-उधर घूमता-हुआ बहुत देर बाद धीरे-धीरे घर पहुंचा।

महेन्द्रकी मा उस समय पूड़ी उतारनेमें व्यस्त थीं। और चाची अब तक श्यामबाजारसे घर नहीं लौटी थीं।

महेन्द्र अकेला निर्जन छतपर जाकर चटाई बिछाकर पड़ रहा। कलकत्तेकी गगनभेदी अट्टालिकाओंके माथेपर उस समय शुक्ला-सप्तमीका अर्धचन्द्र चुपचाप अपना अपूर्व मायामन्त्र विकीर्ण कर रहा था।

माने आकर जब खबर दी कि खाना तैयार है, तो उसने कहा, "यहाँ बड़ा अच्छा लग रहा है, मा, उठनेको जी नहीं चाहता।"

माने कहा, "तो यहीं ले आऊँ न?"

महेन्द्रने कहा, "अब आज मैं खाऊँगा नहीं,—मैं खा आया हूं।"

माने पूछा, "कहाँ खाने गया था?"

महेन्द्रने कहा, "बहुत बात है, पीछे बताऊँगा।"

पुत्रके इस अभूतपूर्व व्यवहारपर अभिमानिनी माताने कुछ भी नहीं कहा, और वे वापस जानेको उद्यत हो गईं। तब महेन्द्रने तुरत अपनेको संयत करके अनुतापके साथ कहा, "मा, मेरी थाली यहीं ले आओ।"

माने कहा, "भूख न हो तो क्या जरूरत है!"

इस बातपर मा-बेटोंमें कुछ देर तक रूठने-मनानेका क्रम चलता रहा, और अन्तमें महेन्द्रको दुबारा खाने बैठना पड़ा।

३

महेन्द्रको रात-भर ठीकसे नींद नहीं आई। वह सवेरे ही उठकर सीधा बिहारीके घर पहुंचा। और बोला, "भाई बिहारी, रात-भर मैं अपने कर्तव्यके विषयमें विचार करता रहा। चाचीकी भीतरी यह इच्छा है कि मैं ही उनकी बहनौतसे व्याह करूं—"

बिहारीने कहा, "इस विषयमें तो सहसा किसी नये दृष्टिकोणसे विचार करने की जरूरत नहीं थी। वे तो अपनी इच्छाको नानाप्रकारसे व्यक्त कर चुकी हैं।"

महेन्द्रने कहा, "यही तो बात है। मुझे लगता है कि आशासे मैंने अगर ब्याह नहीं किया तो चाचीके मनमें जिन्दगी-भरके लिए एक खेद रह जायगा।"

बिहारीने कहा, "सो तो है ही।"

महेन्द्रने कहा, "मेरी समझसे, मेरे लिए यह बड़े अन्यायकी बात होगी।"

बिहारीने जरा-कुछ अस्वाभाविक उत्साहके साथ कहा, "अच्छी बात है, यह तो बड़ी अच्छी बात है, तुम राजी हो जाओ तो फिर कहना ही क्या है! पर ऐसी कर्तव्य-बुद्धि कल ही अगर तुम्हारे मगजमें आ जाती, तो बहुत अच्छा होता न!"

महेन्द्रने कहा, "एक दिन देरसे आई तो इसमें क्या नुकसान हो गया?"

ज्यों ही महेन्द्रने ब्याहके विषयमें अपनी लगाम ढीली की कि फिर उसके लिए धैर्य रखना दुःसाध्य हो उठा। वह सोचने लगा कि 'अब और ज्यादा बातचीत न होकर जल्दीसे काम पूरा हो जाय तो अच्छा।'

महेन्द्रने मासे जाकर कहा, "अच्छा, मा, अब मैं तुम्हारी बात माने लेता हूं, मुझे ब्याह करना मंजूर है।"

मा तुरत रहस्यको समझ गईं; और मन-ही-मन बोलीं, 'अच्छा, अब समझी, उस दिन मझली-बहू क्यों अचानक अपनी बहनौतको देखने गई थी और महेन्द्र क्यों सज-धजके श्यामबाजार गया था!'

और फिर यह सोचकर कि उनके बारम्बार अनुरोध करनेपर भी लड़केने उनकी बात नहीं मानी और अन्नपूर्णा अपने षड़यन्त्रमें सहज ही में सफल हो गई, वे विश्व-विधानपर अत्यन्त असन्तुष्ट हो उठीं। उन्होंने कहा, "अच्छी बात है, अब मैं तेरे लिए बहुत अच्छी लड़की तलाश कराती हूं।"

महेन्द्रने आशाका जिक्र करते-हुए कहा, "लड़की तो वो भी बड़ी अच्छी है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "उससे ब्याह नहीं हो सकता, बेटा, मैं तुझसे पहलेसे कहे देती हूं!"

महेन्द्रने यथेष्ट संयत भाषामें कहा, "क्यों मा, वो लड़की तो बुरी नहीं है?"

राजलक्ष्मीने कहा, "उसके तीन-कुलमें कोई भी नहीं है, उसके साथ ब्याह करनेसे हमें रिश्तेदारीका क्या सुख मिलेगा?"

महेन्द्रने कहा, "रिश्तेदारीका सुख न होनेपर भी मैं दुःखित नहीं हूंगा। किन्तु, मा, लड़की मुझे बहुत पसन्द आई है।"

लड़केकी जिद देखकर राजलक्ष्मीका चित्त और भी ज्यादा कठोर हो उठा। उन्होंने अन्नपूर्णासे जाकर कहा, "क्यों, देवीजी, बिना मा-बापकी कुलच्छनी लड़कीसे मेरे इकलौते बेटेका ब्याह कराके तुम मेरे लड़केको मुझसे छीन लेना चाहती हो? इतनी बड़ी शैतानी!"

अन्नपूर्णा रो पड़ीं, बोलीं, "महेन्द्रके साथ ब्याहकी तो कोई बात ही नहीं हुई, उसने अपनी तबीयतसे तुमसे क्या कहा है, सो भी मुझे नहीं मालूम।"

किन्तु महेन्द्रकी माने इस बातपर कतई विश्वास नहीं किया। तब फिर अन्नपूर्णाने बिहारीको बुलवाकर उससे कहा, "बेटा, तुम्हारे लिए ही तो सब बात तय हुई थी, फिर क्यों तुमने सब उलटपुलट दिया?" कहते-कहते उनकी आँखें भर आईं; बोलीं, "नहीं, बेटा, फिर तुम्हें राजी होना पड़ेगा। तुमने उद्धार नहीं किया तो मेरे लिए बड़ी लज्जाकी बात होगी। लड़की बड़ी सुशील है, तुम्हारे योग्य है।"

बिहारीने कहा, "चाचीजी, यह मैं जानता हूं, मुझे कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। जो तुम्हारी बहनौत हो वह कहीं अयोग्य हो सकती है! भला उसके लिए मैं नाहीं कर सकता हूं! लेकिन महेन्द्र—"

अन्नपूर्णाने कहा, "नहीं बेटा, महेन्द्रसे उसका ब्याह किसी भी तरह नहीं होनेका। मैं तुमसे सच कहती हूं, तुम्हारे साथ उसका ब्याह होनेसे ही मैं सबसे ज्यादा निश्चिन्त हो सकूंगी। महेन्द्रके साथ ब्याह हो, यह मैं नहीं चाहती।"

बिहारीने कहा, "चाची, तुम्हारी ही अगर इच्छा नहीं, तो फिर मुझे क्या आपत्ति है!"

इसके बाद बिहारी राजलक्ष्मीके पास पहुंचा, और बोला, "मा, चाचीकी बहनौतके साथ मेरी सगाई पक्का हो गई है। यहां मेरे कुटुम्बकी कोई स्त्री तो है नहीं, इसलिए हया-शरम सब छोड़कर मुझे खुद ही खबर देने आना पड़ा।"

राजलक्ष्मीने कहा, "कहता क्या है, बिहारी! आज मैं बहुत खुश हूं।

तेरी बात सुनकर। बड़ी सुशील लड़की है वह, तेरे ही लायक है। किसीके कहने-सुननेमें आकर सगाई छोड़ न देना!"

बिहारी बोला, "मैं क्यों छोड़ने लगा! महेन-भइयाने खुद पसन्द करके मेरी सगाई पक्की की है।"

इन-सब बाधा-विघ्नोंसे महेन्द्र दूना उत्तेजित हो उठा। वह मा और चाचीसे रूठकर एक दीनहीन छात्रावासमें जाकर रहने लगा।

राजलक्ष्मी रोती-हुई अन्नपूर्णाके कमरेमें पहुंचीं, बोलीं, "मझली-बहू, मेरे लड़केने तो उदासीन होकर घर छोड़ दिया मालूम होता है, उसे बचाओ!"

अन्नपूर्णाने कहा, "जीजी, थोड़ा धीरज रक्खो, दो-चार दिन बाद अपने आप ही गुस्सा जाता रहेगा।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुम उसे जानती नहीं। उसकी इच्छाके अनुसार कोई काम न हो तो, वो जो जीमें आता है कर डालता है। तुम्हारी बहनौतके साथ जैसे भी बने उसका –"

अन्नपूर्णा बीच ही में बोल उठीं, "सो कैसे हो सकता है, जीजी! बिहारीके साथ बात तय जो हो चुकी है!"

राजलक्ष्मीने कहा, "इससे क्या हुआ! फिरसे तय सही।" इसके बाद तुरत उन्होंने बिहारीको बुलवाया, और उससे कहा, "बेटा, तुम्हारे लिए और भी अच्छी लड़की तलाश करवाती हूं, तुम इस लड़कीको छोड़ दो,– यह तुम्हारे लायक नहीं।"

बिहारीने कहा, "नहीं, मा, ऐसा नहीं हो सकता। बात बिलकुल पक्की जो हो चुकी है!"

तब फिर राजलक्ष्मीने अन्नपूर्णासे जाकर कहा, "तुम्हें मेरे कण्ठकी सौगन्द है, मझली बहू, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं,–तुम बिहारीको समझा दो तो सब ठीक हो जायगा।"

अन्नपूर्णाने बिहारीसे कहा, "बेटा बिहारी, मेरे मुँहसे बात निकलना नहीं चाहती, पर क्या करूं मैं! आशा तुम्हारे हाथ पड़ती तो मैं बिलकुल निश्चिन्त हो जाती, पर, तुम्हें तो सब मालूम है –"

बिहारीने कहा, "मैं समझ गया, चाची ! तुम जैसी आज्ञा दोगी वही होगा। पर, अब फिर कभी तुम मुझसे और-किसीके साथ व्याह करनेका अनुरोध न करना !"

इतना कहकर बिहारी चला गया। अन्नपूर्णाकी आँखोंमें आँसू भर आये, किन्तु महेन्द्रके अनिष्टकी आशङ्कासे उन्होंने तुरत आँखें पोंछ डालीं। उन्होंने बार-बार अपने मनको समझाया कि 'जो-कुछ हुआ सो अच्छा ही हुआ।'

इस तरह, राजलक्ष्मी अन्नपूर्णा और महेन्द्र तीनोंमें निष्ठुर निगूढ़ नीरव घात-प्रतिघात चलते-चलते व्याहका दिन भी आ गया। बत्तियाँ उज्ज्वल हो उठीं, शहनाई मधुर होकर बजने लगी, और मिष्टान्नमें मिष्टताकी जरा भी कमी नहीं रही।

आशाने सुसज्जित सुन्दर देह और शङ्कित-लज्जित-मुग्ध चेहरेसे अपने नये घरमें प्रवेश किया। उसके इस नवीन नीड़में कहीं कोई काँटा भी हो सकता है—इस बातका उसका कम्पित-कोमल हृदय कल्पना भी नहीं कर सकता था। बल्कि वह तो इस बातको सोचकर मारे आनन्दके फूली नहीं समा रही कि आज वह संसारमें एकमात्र अपनी मातृस्थानीया अन्नपूर्णाके पास आ रही है। और इस आश्वाससे आज उसके मनका सारा भय-संशय दूर हो गया।

व्याहके कुछ दिन बाद राजलक्ष्मीने एक दिन महेन्द्रको बुलाकर कहा, "सुन, अब बहूको कुछ दिनके लिए उसके ताऊके घर भेज दे तो अच्छा है।"

महेन्द्रने कहा, "क्यों मा, क्या बात है ?"

माने कहा, "अब तेरी परीक्षाके दिन आ रहे हैं। पढ़ाईमें बाधा पड़ सकती है।"

महेन्द्रने कहा, "मैं क्या बच्चा हूं, मा ! अपना भला-बुरा नफा-नुकसान मैं खुद नहीं समझ सकता ?"

माने कहा, "सब-कुछ ठीक है,—पर एक ही सालकी तो बात है, बेटा !"

महेन्द्रने कहा, "उसके मा-बाप कोई होते तो उनके पास भेजनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं थी,—पर ताऊके घर मैं उसे नहीं रखना चाहता।"

राजलक्ष्मीने मन-ही-मन कहा, 'अरे बाप रे! अभीसे यह हाल! खुद ही घरका मालिक बन बैठा, बहूके बारेमें सास कोई चीज ही नहीं! कल तो ब्याह हुआ और आज इतना दरद! ब्याह तो किसी दिन हमारा भी हुआ था, पर तब ऐसी बेहयाई नहीं थी।'

माको गम्भीर देखकर महेन्द्रने जोरके साथ कहा, "तुम कुछ चिन्ता मत करो, मा, परीक्षामें जरा भी बाधा नहीं पड़ेगी।"

४

सहसा राजलक्ष्मीने अपरिमित उत्साहसे बहूको घर-गृहस्थीका काम काज सिखाना शुरू कर दिया। भण्डार-घर रसोई-घर और पूजा-घरका काम करते करते आशाका दिन पूरा हो जाता ; और रातको सासके साथ एक बिस्तरपर सोना पड़ता। इस तरह राजलक्ष्मी स्वयं बहूकी विच्छेद-व्यथाकी क्षतिपूर्ति करने लगीं।

और अन्नपूर्णा खूब सोच-विचारकर बहनौतसे दूर-ही-दूर रहने लगीं।

जब कोई प्रबल अभिभावक ईखका सारा रस खूब चबा-चबाकर चूसता रहता है तब हताश्वास लुब्ध बालकका क्षोभ जैसे उतरोत्तर असह्य-रूपसे बढ़ने लगता है, ठीक वैसी ही हालत हो गई महेन्द्रकी। स्वयं उसकी आँखोंके सामने उसकी नवयौवना नववधूका सम्पूर्ण मिष्ट रस केवल घर - गृहस्थीके निष्पेषण - यन्त्रमें निचुड़ता रहे, भला यह भी कभी सहा जा सकता है?

महेन्द्रने अन्नपूर्णासे जाकर कहा, "चाची, मा बहूको जिस तरह काम-धन्धेके कोल्हूमें पेर रही हैं,— मुझसे तो देखा नहीं जाता।"

अन्नपूर्णा जानती थीं कि राजलक्ष्मी बहुत ज्यादती कर रही हैं, किन्तु फिर भी उन्होंने कहा, "क्यों महेन्द्र, इसमें क्या बात है,— बहूको घरका काम-काज सिखाना तो अच्छा ही है। आजकलकी बहू-बेटियोंका उपन्यास पढ़ना, कारपेट बुनना, शौक-ही-शौकमें समय बरबाद करना क्या अच्छी बात है?"

महेन्द्र उत्तेजित होकर बोला, "आजकलकी लड़कियाँ तो आजकलकी-सी होंगी, चाहे वह अच्छी बात हो या बुरी। मेरी स्त्री अगर मेरे ही समान उपन्यास

पढ़कर रस ले सके, तो मैं तो उसमें कोई बुराई या हँसीकी बात नहीं देखता।"

अन्नपूर्णाके कमरेमें पुत्रका कण्ठस्वर सुनते ही राजलक्ष्मी हाथका सब काम छोड़-छाड़कर दौड़ी चली आईं, और तीव्र कण्ठसे बोली, "क्या बात है! तुम दोनोंमें क्या सलाह हो रही है?"

महेन्द्र उत्तेजित तो था ही, बोल उठा, "सलाह कुछ नहीं हो रही। सुनो मा, बहूको मैं दासीकी तरह दिन-रात काम-धन्धेमें झोंकना नहीं चाहता।"

माने अपनी उद्दीप्त ज्वालाका दमन करते-हुए अत्यन्त तीक्ष्ण-धीर कण्ठसे कहा, "तो 'उनका' क्या करना चाहते हो?"

महेन्द्रने कहा, "मैं उसे पढ़ना-लिखना सिखाऊंगा।"

राजलक्ष्मी कुछ जवाब न देकर तेजीसे चली गईं, और क्षण-भर बाद ही बहूका हाथ पकड़कर उसे महेन्द्रके सामने स्थापित करती-हुई बोलीं, "यह लो अपनी धरोहर, सिखाओ जितना सिखाना हो पढ़ना-लिखना!"

इतना कहकर वे अन्नपूर्णाकी तरफ लपकीं और गलेमें आँचल डालकर हाथ जोड़कर बोलीं, "माफ करना, मझली-मालिकिन, मुझे माफ करना! तुम्हारी बहनौतकी इतनी मान-मर्यादा है, मैं समझ नहीं पाई थी! 'इनके' कोमल हाथोंमें मैंने हल्दीके दाग़ लगा दिये हैं, अब लो, तुम इन्हें धो-पोंछकर मेम-साब बनाकर महेन्द्रके हाथ सौंप दो, ताकि ये कुरसी-टेबिलपर बैठकर पढ़ाई-लिखाई कर सकें, दासीवृत्ति मैं ही करूंगी।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी सीधी अपने कमरेमें चली गईं, और जोरसे किबाड़ बन्द करके भीतरसे हुड़का बन्द कर लिया।

अन्नपूर्णा मारे क्षोभके जहांकी तहां धरतीपर बैठ गईं, और आशा इस आकस्मिक 'गार्हस्थिक क्रान्ति'का तात्पर्य न समझकर लज्जा-भय-दुःखसे काँप उठी, और उसका चेहरा फक पड़ गया। महेन्द्र मारे गुस्साके मन-ही-मन कहने लगा, 'बस, अब नहीं, अपनी स्त्रीका भार अपने हाथमें लेना ही पड़ेगा, नहीं तो अन्याय होगा।'

इच्छाके साथ कर्तव्य-बुद्धिका मेल होते ही हवाके साथ आग लग गई। फिर कहां गया कालेज, कहाँ रही परीक्षा, कहाँ गई मित्रता और कहाँ रहा सामाजिक

बन्धन! स्त्रीको उन्नति करना ही महेन्द्रका एकमात्र लक्ष्य बन गया। और उसी क्षण उसने दृढ़ मुष्टिसे स्त्रीका पाणि-ग्रहण किया और उसे अपने कमरेमें ले गया। काम-काज या लोक-लाजकी उसने बिलकुल ही परवाह नहीं की।

अभिमानिनी राजलक्ष्मीने मन-ही-मन कहा, 'अब तो महेन्द्र बहूको लेकर मेरे दरवाजेपर सिर पटकता रहे, तो भी मैं उसकी तरफ नहीं देखनेकी। देखूँ वो अपनी माके बिना बहूको लेकर कैसे जिन्दगी बिताता है!'

दिन बीत गया, रात भी बीत गई, दूसरा दिन आया, तीसरा दिन आया, किन्तु राजलक्ष्मीके दरवाजेके आगे किसी अनुतप्तकी पदध्वनि नहीं सुनाई दी।

राजलक्ष्मीने तय किया कि महेन्द्र क्षमा माँगने आयेगा तो वे उसे क्षमा कर देंगी,– नहीं तो बेचारेको बड़ी गहरी चोट पहुंचेगी।

क्षमाकी प्रार्थना भी नहीं आई। तब फिर राजलक्ष्मीने तय किया कि वे खुद ही जाकर बेटेको क्षमा कर आयेंगी। लड़का रुठ गया है तो क्या माको भी रुठे रहना चाहिए!

दूसरी मंजिलके ऊपर छतके एक कोनेमें महेन्द्रका सोनेका कमरा है, और वही उसका पढ़नेका कमरा है। इधर कई दिनोंसे माने उसके कपड़े-लत्ते नहीं सम्हाले, और न घर-द्वारकी सफाई ही की। कई दिनसे मातृस्नेहके चिराभ्यस्त कर्तव्य पालन न कर सकनेसे उनका हृदय दुग्ध-भारातुर स्तनके समान भीतर ही भीतर व्यथित और पीड़ित हो उठा था। उस दिन दोपहरको वे सोचने लगीं, 'अब तो महेन्द्र कालेज चला गया होगा, चलो इस मौकेसे उसका कमरा ठीक कर आऊं। कालेजसे वापस आते ही वह तुरत समझ जायगा कि कमरेमें आज माका हाथ पड़ा है!'

राजलक्ष्मी जीना तय करके ऊपर पहुंची। महेन्द्रके कमरेका एक किवाड़ खुला-हुआ था,– उसके सामने पहुंचते ही मानो सहसा उनके काँटा चुभ गया, वे ठिठककर खड़ी हो गई। देखा कि फर्शके बिस्तरपर महेन्द्र सो रहा है और दरवाजेकी ओर पीठ किये-हुए बहू धीरे-धीरे उसके तलवेपर हाथ फेर रही है! दोपहरके प्रखर प्रकाशमें खुले कमरेमें दाम्पत्य-लीलाका यह अभिनय देखकर राजलक्ष्मी मारे लज्जा और धिक्कारके संकुचित होकर चुपचाप नीचे उतर आई।

५

कुछ दिन पानी न पड़नेसे खेतकी फसल जैसे पीली हो जाती है और फिर पानी पड़ते ही बिना देर किये जल्दी-जल्दी बढ़कर वह दीर्घकालकी उदासीनता दूर कर देती है और दुर्बल झुकावको त्यागकर बिना किसी संकोचके निःशङ्क होकर अपने अधिकारको उन्नत और उज्ज्वल कर देती है, आशाका भी ठीक वैसा ही हाल हुआ। जहाँ उसका रक्तका निकट-सम्बन्ध था वहाँ उसने कभी आत्मीयताका दावा नहीं किया, पर आज पराये घर आकर उसे जब बिना प्रार्थनाके निकटतम सम्बन्ध और निःसन्दिग्ध अधिकार प्राप्त हुआ, और पतिने जब उस अयत्न-प्रतिपालिता आनाथाके मस्तकपर अपने हाथसे लक्ष्मीका मुकुट पहना दिया तब उसने अपना गौरव-पद ग्रहण करनेमें क्षण-भरकी भी देर नहीं की, उसने नववधू-सुलभ लज्जा-भय सब दूर करके सौभाग्यवती स्त्रीकी महिमासे मण्डित होकर पतिके चरणोंमें बिना किसी सङ्कोचके क्षणमें अपने सिंहासनपर अधिकार जमा लिया।

राजलक्ष्मी उस दिन दोपहरको उस सिंहासनपर इस नवागता 'पराये-घरकी लड़की'को चिराभ्यस्तवत् स्पर्धाके साथ बैठी देखकर दुःसह विस्मयसे नीचे उतर आईं। और फिर अपने चित्त-दाहसे अन्नपूर्णाको दग्ध करने पहुंचीं। बोलीं, "अजी ओ देवीजी, जरा देखो जाकर, तुम्हारी नवाबजादी नवाबके घरसे कैसा शऊर-कायदा सीखकर आई हैं! आज अगर घरके बड़े-बूढ़े कोई होते, तो –"

अन्नपूर्णाने भय-विह्वल होकर कहा, "जीजी, बहू तुम्हारी है, तुम उसे चाहे जैसे रखो, डाटो-डपटो, सिखाओ-गुनाओ, तुम्हें पूरा हक है। उसके बारेमें मुझसे क्यों कहा करती हो?"

राजलक्ष्मी धनुष्टङ्कारकी तरह बज उठीं, बोलीं, "मेरी बहू! तुम जैसी मन्त्रानीके रहते मुझे कौन पूछता है!"

इसपर अन्नपूर्णा बड़ी तेजीसे उठकर अपने पैरोंकी आहटसे जीनेको कँपाती हुई सीधी ऊपर पहुंचीं महेन्द्रके कमरेमें, और जाते ही आशासे बोलीं, "तू इस तरह मेरा सिर नीचा करायेगी कलमुँही! लज्जा-शर्म नहीं, समय नहीं, असमय

नहीं, बूढी सासके ऊपर सारे घरका काम-काज छोड़कर तू यहाँ आराम कर रही है! मेरी फूटी तकदीर कि मैं तुझे इस घरमें लाई।" कहते-कहते उनकी आँखोंसे झरझर आँसू झरने लगे। और आशा भी सिर झुकाये दोनों हाथोंसे साड़ीके पल्लेको नोचती-हुई चुपचाप दीवारके सहारे खड़ी-खड़ी रोने लगी।

महेन्द्रने कहा, "चाची, तुम बहूको क्यों झूठमूठको डाट रही हो! मैंने ही तो इसे रोक रखा है।"

अन्नपूर्णाने कहा, "सो यह क्या तुमने कोई अच्छा काम किया है, बेटा! अभी यह लड़की है, आनाथा है, मासे कभी कुछ सीखा नहीं; भलाई-बुराईका अभी इसे क्या ज्ञान है! तुम इसे क्या सिखा रहे हो?"

महेन्द्रने कहा, "यह देखो, इसके लिए किताब स्लेट कापी सब ले आया हूं। मैं इसे लिखना-पढ़ना सिखाऊंगा। इसपर चाहे कोई निन्दा करे, चाहे नाराज हो।"

अन्नपूर्णाने कहा, "पढ़ाई-लिखाई क्या सारे दिन ही हुआ करती है! शामके बाद एक-आध घण्टे पढ़ा दिया,—बस, काफी है।"

महेन्द्र बोला, "पढ़ना-सिखना इतना आसान नहीं, चाची! इसमें समय लगता है, काफी परिश्रम करना पड़ता है।"

अन्नपूर्णा झुंझला उठीं, और तुरत कमरेसे बाहर निकलकर नीचे चली आईं। आशाने भी धीरे-धीरे उनका अनुसरण करना चाहा; किन्तु महेन्द्र द्वार रोककर खड़ा हो गया। आशाके करुण सजल नेत्रोंकी विह्वल प्रार्थनाका भी उसपर कोई असर नहीं पड़ा, बोला, "ठहरो, सोकर जो समय नष्ट किया है उसकी मुझे पूर्ति कर लेने दो।"

संसारमें ऐसे गम्भीरप्रकृति श्रद्धेय मूढ़ोंका होना कोई असम्भव नहीं जो यह समझ बैठे हों कि महेन्द्रने सचमुच निद्राके आवेशमें पढ़ाईका समय नष्ट किया है, लिहाजा, विशेषरूपसे उनकी जानकारीके लिए इतना कह देना जरूरी है कि महेन्द्रकी शिक्षकतामें जैसा अध्यापन-कार्य सम्पन्न होता है, उसका कोई भी स्कूल-इन्स्पेक्टर कभी भी अनुमोदन नहीं कर सकता।

आशाने अपने पतिपर विश्वास किया था, और वास्तवमें ऐसा सोचा था

कि पढ़ना-लिखना सीखना उसके लिए नाना कारणोंसे सहज नहीं हो सकता, फिर भी पतिकी आज्ञा होनेसे उसका कर्त्तव्य है कि वह पढ़ने-लिखनेमें यथाशक्ति ध्यान दे। इसके लिए वह पूरी कोशिशसे अपने अशान्त विक्षिप्त मनको संयत करती, शयन-गृहमें फर्शपर बिछे-हुए गद्देके एक किनारे अत्यन्त गम्भीर होकर बैठती और किताब-कापीपर बिलकुल झुककर सिर हिलाती-हुई पाठ याद करनेमें जुट जाती। कमरेके दूसरी तरफ एक छोटी-सी टेबिलपर डाक्टरी किताब खोल कर मास्टर साहब कुरसीपर बैठे रहते, और बीच-बीचमें कनखियोंसे छात्राकी निगरानी करते रहते कि ठीकसे मन लगाकर पढ़ रही है या नहीं। देखते देखते अकस्मात् डाक्टरी किताब बन्द हो जाती और महेन्द्रके मुँहसे निकल जाता, "चुन्नी!" आशा चकित होकर मुँह उठाकर देखने लगती। महेन्द्र कहता, "किताब लेकर इधर तो आओ जरा, देखूं कहाँ पढ़ रही हो?"

आशा डर जाती, मास्टर साहब कहीं उसकी परीक्षा न लेने लगें। परीक्षामें उत्तीर्ण होनेकी सम्भावना कम ही रहती। कारण, 'चारु-पाठ' के चारुत्वका प्रलोभन उसके अबाध्य मनको किसी भी तरह वशमें नहीं ला सका था। वह पुस्तकमें उल्लिखित नये-नये शब्द और ज्ञानवर्धक विषय-वस्तुके विषयमें जितना ही ज्ञान प्राप्त करनेकी कोशिश करती, शब्द उतने ही उसके लिए दुरूह हो उठते और काले-काले अक्षर उसकी आँखोंके सामने चींटियोंकी तरह कतार बाँधकर रेंगते रहते।

परीक्षककी बुलाहट सुनकर आशा किताब हाथमें लिये-हुए डरती-डरती महेन्द्रकी कुरसीके पास पहुंचती। महेन्द्र एक हाथसे उसका कटिदेश घेरकर दृढ़तासे उसे बन्दिनी बना लेता, और दूसरे हाथमें किताब लेकर पूछता, "आज कितना पढ़ा बताना जरा?" आशा जितनी पंक्तियोंपर आँखें फेर सकती थी उतना बता देती। महेन्द्र क्षुण्ण स्वरमें कहता, "अरे! इतना पढ़ डाला! मैंने कितना पढ़ा है देखोगी?" और फिर अपनी पढ़ाईका हिसाब देते-हुए जो-कुछ दिखाता उसमें किसी-एक अध्यायके शीर्षकके सिवा और कुछ न होता। आशा आश्चर्यसे आँखें फाड़कर कहती, "तो, इतनी देरसे क्या कर रहे थे?" महेन्द्र उसकी ठोड़ी पकड़कर कहता, "कोई एक आदमी है, उसीकी बात सोच

रहा था। लेकिन जिसकी बात मैं सोच रहा था वह निष्ठुर 'चारुपाठ' में 'दीमककी कहानी'के मजे ले रहा था।" आशा इस निराधार आरोपके विरुद्ध उपयुक्त उत्तर दे सकती थी, किन्तु कोई उपाय जो नहीं, केवल लज्जाके खातिर ही प्रेमकी प्रतियोगितामें चुपचाप उसे हार मान लेनी पड़ती। और इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महेन्द्रकी यह पाठशाला सरकारी या गैरसरकारी किसी भी शिक्षालयका कोई नियम मानकर नहीं चलती।

मान लो, किसी दिन महेन्द्र उपस्थित नहीं है,— और उस मौकेसे आशा पढ़नेमें मन लगानेकी कोशिश कर रही है। इतनेमें महेन्द्र न-जाने कहाँसे आकर पीछेसे उसकी आँखें मीच लेता है, और किताब छीनकर कहता है, "निष्ठुर कहींकी,— मैं नहीं रहता तो तुम मुझे याद नहीं करतीं, पाठ याद किया करती हो! क्यों?"

आशा कहती, "तुम मुझे मूर्ख ही बनाये रखोगे?"

महेन्द्र कहता, "तुम्हारी कृपासे मेरी विद्या भी ऐसी क्या दौड़ लगा रही है जो तुम्हें डाह हो रहा है?"

बात सहसा आशाके मनमें चुभ जाती, और वह उसी क्षण जानेको तैयार होकर कहती, "मैंने तुम्हारी पढ़ाईमें कब बाधा डाली है?"

महेन्द्र उसका हाथ पकड़कर कहता, "तुम इसका क्या समझो! मुझे भूलकर तुम जितनी आसानीसे पाठ याद कर सकती हो, तुम्हें भूलकर मैं तो उतनी आसानीसे पढ़ाई नहीं कर सकता।"

यह बहुत बड़ा दोषारोप है। इसके बाद स्वभावतः ही शरतकी हलकी वर्षाकी तरह आशाकी आँखें आँसू बरसाने लगतीं, और कुछ ही देरमें उसका वह अश्रुवर्षण लाड़-प्यारके सूर्यालोकमें विलीन हो जाता, रह जाती केवल एक सजल उज्ज्वलता।

शिक्षक स्वयं ही यदि शिक्षाका सबसे बड़ा अन्तराय हो उठे, तो अबला शिक्षार्थिनीकी मजाल क्या कि वह विद्यारण्यमें स्वयं मार्ग निकालकर चले! कभी कभी मौसीकी तीव्र ताड़नाकी याद आती तो आशाका चित्त विचलित हो उठता, वह समझ जाती कि पढ़ने-लिखनेका तो एक बहाना है। सासको देखती तो

मारे शरमके गड़-गड़ जाती। किन्तु सास उससे कभी किसी कामके लिए नहीं कहतीं, कोई उपदेश नहीं देतीं, और बिना आज्ञाके वह सासके काममें सहायता देने जाती भी, तो सास अत्यन्त चंचल होकर कहने लगतीं, "अरे, कर क्या रही हो! जाओ अपने कमरेमें जाओ, तुम्हारी पढ़ाई मारी जायगी।"

अन्तमें अन्नपूर्णाको आशासे कहना ही पड़ा, "तेरी जो-कुछ पढ़ाई हो रही है, सो तो सब मुझे मालूम है। अब महेन्द्रको भी क्या तू डाक्टरी पास नहीं करने देगी?"

सुनकर आशाने अपने मनको खूब कड़ा कर लिया; और महेन्द्रसे जाकर बोली, "तुम्हारी परीक्षाकी पढ़ाई नहीं हो रही है, आजसे मैं नीचे मौसीके कमरेमें रहूंगी।"

इस उमरमें इतना कड़ा संन्यासव्रत! शयनागारसे एकदम मौसीके कमरेमें आत्म-निर्वासन! ऐसी कठोर प्रतिज्ञा उच्चारण करते-हुए आशाकी आँखोंमें आंसू भर आये, उसके अबाध्य पतले-पतले ओठ काँप उठे और कण्ठ रुक-सा आया।

महेन्द्रने कहा, "तो चलो, चाचीके कमरेमें ही चले चलें,– पर उन्हें फिर ऊपर आकर हमारे कमरेमें रहना पड़ेगा।"

आशाने अपने इतने बड़े उदार गम्भीर प्रस्तावको मजाकमें उड़ता देख मारे गुस्साके रूठकर अपना मुँह फेर लिया। महेन्द्रने कहा, "इससे तो बल्कि तुम खुद मुझे दिन-रात अपनी आँखों-ही-आँखोंमें रखकर पहरा दो तो अच्छा हो, फिर देखना कि मैं परीक्षाकी पढ़ाई करता हूं या नहीं!"

यह बात सहज ही में तय हो गई। आँखों-ही-आँखोंमें रखकर कैसे पहरा दिया जाने लगा – इसका विस्तृत वर्णन करना अनावश्यक है। सिर्फ इतना कह देना ही काफी होगा कि उस साल महेन्द्र परीक्षामें फेल हो गया; और 'चारु-पाठ'में विस्तृत वर्णन रहनेपर भी 'बहुपद' के विषयमें आशाका अज्ञान दूर नहीं हुआ।

ऐसा अपूर्व पठन-पाठनका कार्य सम्पूर्ण निर्विघ्नतासे नियमित होता रहता हो, यह नहीं कहा जा सकता। बीच-बीचमें बिहारी आकर बड़ी गड़बड़ी मचा देता था। 'महेन-भइया' 'महेन-भइया'की रटसे वह मुहल्ले-भरको सरपर उठा

लेता। महेन्द्रको उसके निजी कमरेसे बाहर निकाले बगैर उसे चैन नहीं पड़ता, पढ़ाईकी शिथिलतापर महेन्द्रको वह काफी डाटता-फटकारता। और आशासे कहता, "भाभी, निगल जानेसे हजम नहीं होता, चबाकर खाना चाहिए,—इस समय तुम एक ही कौरमें सब-का-सब निगल जाना चाहती हो, सो ठीक नहीं, ऐन वक्तपर फिर 'हजमी गोली' ढूंढ़े नहीं मिलेगी।"

महेन्द्र कहता, "चुन्नी, तुम इसकी बातोंमें न आना, इसे तो हमारे आनन्दसे ईर्षा हो रही है।"

बिहारी कहता, "आनन्द जब कि तुम्हारी मुट्ठीमें ही है, तो उसे इस तरह भोगना चाहिए जिससे दूसरोंको ईर्षा न हो।"

महेन्द्र जवाब देता, "दूसरोंकी ईर्षासे आनन्द जो मिलता है! जानती हो चुन्नी, मैं जरा-सा चूक जाता तो गधेकी तरह मैं तुम्हें बिहारीके हाथ ही सौंप देता!"

बिहारीका चेहरा सुर्ख हो उठता, कहता, "चुप!"

इन-सब बातोंसे आशा मन-ही-मन बिहारीसे चिढ़ती रहती। किसी समय बिहारीके साथ उसके व्याहकी बात चली थी, इसी कारण बिहारीके प्रति उसका विपरीत रुख रहता है। बिहारी इस बातको समझता है, और महेन्द्रको इस तरहकी छेड़छाड़में आनन्द आता है।

राजलक्ष्मी बिहारीको बुलाकर उससे अपना दुखड़ा कहतीं। बिहारी कहता, "मा, रेशमका कीड़ा जब कोआ बनाता है तब डरनेकी कोई बात नहीं होती, पर जब वह कोआ काटकर उड़ जाता है तब उसका हाथमें आना मुश्किल हो जाता है। यह कौन जानता था कि महेन-भइया तुम्हारे बन्धनको इस तरह काट देंगे!"

महेन्द्रके फेल होनेकी खबरसे राजलक्ष्मी ग्रीष्मकालके आकस्मिक अग्निकांडकी तरह एकाएक ऐसी जल उठीं कि उसकी लपटोंसे आसपासका कोई बच न सका। सबसे ज्यादा गर्जन और दाहन सहना पड़ा अन्नपूर्णाको,—उनका खाना-पीना सोना सब छूट गया।

६

एक दिन नव-वर्षाके वर्षण-मुखर मेघाच्छन्न सन्ध्याके समय महेन्द्र एक सुवासित महीन दुपट्टा ओढ़े और गलेमें जूहीका एक गजरा डाले बड़े आनन्दसे अपने सोनेके कमरेमें पहुंचा। सहसा आशाको आश्चर्यसे चकित कर देनेके विचारसे उसने जूतोंकी आवाज तक न होने दी। कमरेमें झाँककर उसने देखा कि पूरबकी खुली-हुई खिड़कीमेंसे जोरकी हवा वर्षाकी बौछारके साथ कमरेमें प्रवेश कर रही है, हवासे बत्ती बुझ गई है, और आशा नीचेके बिस्तरपर पड़ी सिसक-सिसककर रो रही है।

महेन्द्रने जल्दीसे उसके पास जाकर पूछा, "क्या हुआ, आशा?"

बालिका दूने आवेगसे रो उठी। बहुत देर बाद महेन्द्रको अपने प्रश्नका क्रमशः उत्तर मिला, 'मौसीसे अब सहा नहीं जाता, सो वे अपने फुफेरे भाईके यहाँ चली गई हैं।'

महेन्द्रको गुस्सा आ गया; वह सोचने लगा, 'वे गईं तो गईं, पर हमारी ऐसी बदलीकी सन्ध्याको क्यों मिट्टीमें मिला गईं?'

अन्तमें उसका सारा गुस्सा मापर जा पड़ा। वे ही तो सब अशान्तिकी जड़ हैं।

महेन्द्रने कहा, "चाची जहाँ गई हैं, हमलोग भी वहीं चले जायेंगे, देखें, मा फिर किनके साथ लड़ती-झगड़ती हैं!"

इसके बाद महेन्द्रने बड़े जोरका शोरगुल मचाते-हुए चीज-वस्त बांधना और कुली-मजूरोंको बुलाना शुरू कर दिया।

राजलक्ष्मी सब समझ गईं। उन्होंने धीरे-धीरे महेन्द्रके पास आकर शान्त स्वरमें पूछा, "कहाँ जा रहा है तू?"

महेन्द्रने पहले तो कुछ जवाब ही नहीं दिया। दो-तीन बार पूछे जानेके बाद बोला, "चाचीके पास जा रहा हूं।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुमलोगोंको कहीं नहीं जाना होगा,—मैं ही जाकर तेरी चाचीको यहाँ लिवाये लाती हूं।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी उसी क्षण पालकीमें बैठकर अन्नपूर्णाको लिवाने चली गईं, और अन्नपूर्णाके सामने जाकर गलेमें आँचल डालकर हाथ जोड़कर बोलीं, "प्रसन्न होइये, मझली-बहू ! क्षमा कीजिये।"

अन्नपूर्णा इस नाटकीय भावको देखकर मारे शरमके गड़-गड़ गईं, और अत्यन्त चंचल होकर जिठानीके पाँवोंकी धूल माथेसे लगाती-हुई बोलीं, "जीजी, क्यों मुझे इस तरह अपराधिनी बनाकर लज्जा देती हो? मुझे तुम जो आज्ञा दोगी, मैं वही करूंगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुम चली आई हो इसलिए बेटा और बहू दोनोंके दोनों घर छोड़कर चले जा रहे हैं।" कहते-कहते अभिमान क्रोध और धिक्कारके मारे वे रो उठीं।

देवरानी-जिठानी दोनों घर लौट आईं। बाहर वर्षा हो रही है। अन्नपूर्णा जब महेन्द्रके कमरेमें पहुंचीं तब आशाका रोना थम चुका था, और महेन्द्र तरह तरहकी हँसीकी बात छेड़कर उसे हँसानेकी कोशिश कर रहा था। लक्षणोंसे मालूम होता है, बदलीकी सन्ध्या सम्पूर्णतः व्यर्थ नहीं जायगी।

अन्नपूर्णाने कहा, "चुन्नी, तू मुझे घरमें भी नहीं रहने देगी, और, और कहीं जाऊं तो वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ेगी ! मुझे क्या कहीं भी जरा शान्ति नहीं लेने देगी?"

आशा अकस्मात् बाण-बिद्ध हरिणीकी तरह चकित हो उठी।

महेन्द्र सहसा झुंझलाकर बोल उठा, "क्यों चाची, चुन्नीने तुम्हारा किया क्या है?"

अन्नपूर्णाने कहा, "बहू-बेटीका इतना बेहयापन मुझसे नहीं देखा गया, तभी तो मैं यहाँसे चली गई थी,– फिर सासको रुलाकर क्यों मुझे पकड़वा मंगाया कलमुँहीने?"

जीवनके कवित्व-अध्यायमें मा और चाची ऐसी 'बाधा' बन सकती हैं, महेन्द्रको यह नहीं मालूम था।

दूसरे दिन राजलक्ष्मीने बिहारीको बुलाकर कहा, "बेटा, एक बार महेन्द्रसे कहो, मैं बहुत दिनोंसे मायके नहीं गई, अब मैं बारासत जाना चाहती हूं।"

बिहारीने कहा, "बहुत दिनोंसे जब कि नहीं ही गईं, तो अब न जाओ तो क्या है! अच्छा, मैं महेन-भइयासे कहूंगा, पर वे शायद ही राजी हों।"

बिहारीकी बातका उत्तर देते-हुए महेन्द्रने कहा, "सो तो ठीक है, जन्मभूमि देखनेको किसका जी नहीं चाहता! पर माका वहाँ ज्यादा दिन न रहना ही अच्छा है,— बरसातके दिनोंमें वो जगह अच्छी नहीं है।"

महेन्द्रने सहज ही में सम्मति दे दी, इससे बिहारी कुछ अप्रसन्न हुआ, बोला, "मा अकेली जायेंगी, वहां कौन उनकी सेवा-टहल करेगा? भाभीको भी साथ भेज दो न!" इतना कहकर वह जरा हँस दिया।

बिहारीकी इस भीतरी व्यंगकी मारसे महेन्द्र संकुचित हो उठा। बोला, "सो क्या मैं नहीं भेज सकता तुम समझते हो?" किन्तु बात इससे और आगे नहीं बढ़ सकी।

इसी तरह बिहारी आशाका मन विमुख कर दिया करता, और यह जान कर कि आशा उसपर नाराज हो रही है, मानो वह एक प्रकारका सूखा आनन्द अनुभव करता रहता।

कहनेकी जरूरत नहीं कि राजलक्ष्मी अपनी जन्मभूमि देखनेके लिए बहुत ज्यादा उत्सुक नहीं थीं। गरमियोंमें नदीका पानी जैसे घट जाता है और तब माझी जैसे कदम-कदमपर लग्गी डालकर थाह लेता है कि कहाँ कितना पानी है, राजलक्ष्मी भी वैसे ही इस मनमुटावके समय मा-बेटेके स्नेह-सम्पर्कके पानीमें लग्गी डालकर थाह लगा रही थीं। उनकी बारासत जानेकी बात इतनी जल्दी और इतनी आसानीसे मंजूर हो जायगी — इस बातकी उन्हें कतई आशा नहीं थी। वे मन-ही-मन कहने लगीं, 'अन्नपूर्णाके घर छोड़ने और मेरे घर छोड़नेमें कितना फरक है! वह ठहरी टोना-मन्त्र जाननेवाली डाइन और हूं केवल मा! मेरा जाना ही अच्छा है।'

अन्नपूर्णा भीतरी बातको समझ गईं, उन्होंने महेन्द्रसे कहा, "जीजी चली जायेंगी तो मैं भी नहीं रह सकूंगी।"

महेन्द्रने मासे कहा, "सुनती हो मा! तुम जाओगी तो चाची भी चली जायेंगी, तब फिर घरका काम कैसे चलेगा?"

राजलक्ष्मी विद्वेष-विषसे जर्जरित होकर बोल उठीं, "तुम जाओगी, मझली बहू ? ऐसा भी कभी हो सकता है ! तुम जाओगी तो काम कैसे चलेगा ? तुम्हारा रहना तो बहुत जरूरी है।"

राजलक्ष्मीके लिए अब देर सहन करना असह्य हो उठा। दूसरे दिन दोपहरके पहले ही उन्होंने देश जानेकी पूरी तैयारियां कर डालीं। महेन्द्र खुद ही उन्हें देश पहुंचा आयेगा, इस विषयमें बिहारी या और-किसीको कोई सन्देह न था। किन्तु समयपर देखा गया कि महेन्द्रने माके साथ एक गुमाश्ता और एक दरवानको भेजनेकी व्यवस्था की है।

बिहारीने कहा, "महेन-भइया, अभी तक तुम तैयार भी नहीं हुए ?"

महेन्द्रने लज्जित होकर कहा, "मुझे कालेजकी –"

बिहारी बोला, "अच्छा, तुम रहने दो, माको मैं पहुंचा आऊंगा।"

महेन्द्र मन-ही-मन क्रुद्ध हो उठा। उसने एकान्तमें आशासे कहा, "सचमुच बिहारी अब बहुत ज्यादती करने लगा है। वह दिखाना चाहता है, मानो उसे माकी चिन्ता मुझसे बहुत ज्यादा है !"

अन्नपूर्णाको रहना पड़ा, किन्तु लज्जा क्षोभ और विरक्तिसे वे अत्यन्त संकुचित होकर दूर-ही-दूर रहने लगीं। चाचीका इस तरह दूर-दूर रहना महेन्द्रको अच्छा नहीं लगा, वह रूठा-रूठा रहने लगा, और आशा भी कुछ रूठी-सी और कुछ अनमनी-सी रहने लगी।

७

राजलक्ष्मी अपनी जन्मभूमिमें पहुंच गईं। तय था कि बिहारी उन्हें पहुंचा कर लौट आयेगा, किन्तु वहांकी अवस्था देखकर वह लौट न सका।

राजलक्ष्मीके मायकेमें सिर्फ दो-एक अतिवृद्धा विधवा जीवित थीं। चारों ओर घना जंगल और बांसके झाड़ थे, तालाबका पानी हरा हो चुका था, और दिन-दोपहरको सियार बोला करते थे, जिससे राजलक्ष्मीका चित्त उद्भ्रान्त हो उठता था।

बिहारीने कहा, "मा, है तो यह जन्मभूमि ही, पर इसे 'स्वर्गादपि गरीयसी' हरगिज नहीं कहा जा सकता। चलो अब कलकत्ते चलो। यहाँ तुम्हें अकेले छोड़ जाना अधर्म है,—मुझसे यह हरगिज न होगा।"

राजलक्ष्मीका भी जी उकता गया था। इतनेमें विनोदिनी आ गई, और उससे राजलक्ष्मीको सहारा मिल गया; और साथ ही विनोदिनीको भी आश्रय मिल गया।

विनोदिनीका परिचय शुरूमें ही दिया जा चुका है। किसी समय महेन्द्र और उसके अभावमें बिहारीके साथ उसके व्याहकी बात चली थी। विधाताके विधानानुसार जिसके साथ उसका शुभ-विवाह हुआ था उस आदमीकी समस्त अन्तरेन्द्रियोंमें ताप-तिल्ली ही थी सबसे प्रबल। और उसके अतिभारके कारण ही वह अधिक दिन तक जीवन धारण न कर सका।

उसकी मृत्युके बाद विनोदिनी, जंगलमें एकमात्र उद्यान-लताकी तरह, इस निरानन्द गाँवमें 'मरी-हुई' सी जिन्दगीके दिन काट रही थी। आज उस अनाथाने आकर बड़ी भक्तिसे अपनी फफुआ-सास राजलक्ष्मीके पाँव लागे, और उनकी सेवामें आत्म-समर्पण कर दिया।

सेवा इसीका नाम है। एक क्षणके लिए भी आलस नहीं; कैसा साफ सुथरा काम है, कैसी उमदा रसोई बनाती है, और बोली कितनी मीठी है!

राजलक्ष्मी कहतीं, "अबेर हो गई है, बेटी, अब कुछ खा-पी लो, जाओ।"

भला वह कब सुनने लगी! पंखेसे हवा करते-करते जब तक सासको सुला नहीं देती तब तक उठनेका नाम नहीं लेती।

राजलक्ष्मी कहतीं, "ऐसा करनेसे तो तुम बीमार पड़ जाओगी, बेटी!"

विनोदिनी अपने प्रति अत्यन्त उपेक्षा और तुच्छताका भाव दिखाकर कहती, "हमलोगोंका दुःखका शरीर ठहरा, बुआजी, बीमारी कभी भूलके भी नहीं फटकती हमारे पास। और फिर, तुम कितने दिन बाद तो आई हो यहाँ! तुम्हारी सेवाके लिए है ही क्या यहाँ, जिससे सेवा कर सकूं!"

बिहारी दो-ही-चार दिनमें गाँवका मुरब्बी-मुखिया बन गया। उसके पास कोई दवा पूछने आता तो कोई मुकदमेके बारेमें सलाह ले जाता, कोई अपने

लड़केको किसी बड़े आफिसमें नौकरी दिलानेकी प्रार्थना करता तो कोई उससे दरखास्त ही लिखा ले जाता। वयोवृद्धोंकी ताश-शतरंज-सभासे लेकर बागदियोंकी ताड़ी-पान-सभा तक सर्वत्र वह अपना सकौतुक कुतूहल और स्वाभाविक सहृदयता लिये-हुए विचरण करने लगा, – कोई उसे गैर नहीं समझता, बल्कि सभी उसका सम्मान करते हैं।

विनोदिनी भी अन्तःपुरके अन्तरालसे कुठौरमें-पड़े इस कलकत्तेके युवकके निर्वासन-दण्डको यथासाध्य हलका करनेकी कोशिश करती रहती। बिहारी हर बार जब गाँवमें घूम-फिरकर घर आता तो देखता कि किसीने उसके कमरेको खूब अच्छी तरह झाड़-बुहारकर साफ-सुथरा कर रखा है, एक गिलासमें दो-चार तरहके फूलोंका गुलदस्ता बनाकर सजा रखा है और उसके बिस्तरके पास ही बङ्किमचन्द्र और दीनबन्धुकी ग्रन्थावली सजाकर रख दी है। प्रत्येक जिल्दके भीतर 'विनोदिनी' नाम लिखा-हुआ है, हस्ताक्षर स्त्रियों-जैसे हैं किन्तु लिखावट पक्की है।

गँवई-गाँवके प्रचलित अतिथि-सत्कारके साथ इस आतिथ्यमें जरा-कुछ विशेषता है। बिहारी जब विनोदिनीका उल्लेख करके प्रशंसा करने लगता तब राजलक्ष्मी कहतीं, "ऐसी लड़कीकी तुमलोगोंने बिलकुल ही उपेक्षा कर दी। मुझे दुःख तो इसी बातका है।"

बिहारी हँसकर कहता, "अच्छा नहीं किया, मा, हमलोग ठगाये गये। पर ब्याह न करके ठगाना अच्छा, ब्याह करके ठगाये जानेमें मुसीबत होती।"

राजलक्ष्मी बार-बार यही सोचने लगीं कि 'अहा, यह लड़की मेरी बहू हो सकती थी, – हुई क्यों नहीं ?'

राजलक्ष्मीके कलकत्ते जानेकी बात छिड़ती तो विनोदिनीकी आँखोंमें आँसू भर आते। कहती, "बुआजी, तुम दो दिनके लिए आई ही क्यों थीं ? जब तुम्हें मैं जानती न थी तब तो किसी-न-किसी तरह दिन कट जाते थे, पर अब तुम्हारे बगैर मुझसे कैसे रहा जायगा !"

राजलक्ष्मी मनके आवेगमें कह डालतीं, "बेटी, तू मेरे घरकी बहू क्यों नहीं हुई, – तब तो मैं तुझे छातीसे लगाकर रखती।"

यह बात सुनकर विनोदिनी मारे लज्जाके किसी कामके बहाने वहाँसे उठके चली जाती ।

राजलक्ष्मीको आशा थी कि कलकत्तेसे उनके पास अनुनय-विनय-भरा करुण पत्र आयेगा, और उसकी वे प्रतिक्षण प्रतीक्षा कर रही थीं। उनका महेन जन्मसे लेकर अब तक कभी इतने दिन माको छोड़कर अकेला नहीं रहा, और अब तो निश्चय ही इतने दिनके विच्छेदने उसे अधीर कर दिया होगा। राजलक्ष्मी अपने रूठे-हुए लड़केकी तरफसे लाड़ और उलाहनेसे भरे प्रार्थनापूर्ण पत्रके लिए तृषित और उत्कण्ठित हो रही थीं ।

महेन्द्रका पत्र आया, किन्तु बिहारीके नाम। उसने लिखा है, "आशा है मा बहुत दिनों बाद जन्मभूमि जाकर बहुत प्रसन्न और सुखी होंगी ।"

माने सोचा, 'बेटा अभी तक रूठा-हुआ है, इसीसे लिखता है, प्रसन्न होंगी, सुखी होंगी । अभागिनी मा भला बेटेके बिना कहीं भी प्रसन्न रह सकती है, सुखसे रह सकती है ?' फिर वे बिहारीसे पूछने लगीं, "फिर आगे क्या लिखा है महेनने, जरा पढ़के सुना तो बेटा ?"

बिहारीने कहा, "आगे और कुछ भी नहीं लिखा, मा !" और चिट्ठीको मुट्ठीमें मोड़-मरोड़कर एक किताबकी जिल्दके भीतर रखकर धप-से उसे एक कोनेमें फेंक दिया ।

भला अब राजलक्ष्मी कैसे स्थिर रह सकती थीं। वे सोचने लगीं, अवश्य ही महेन अभी तक उनसे गुस्सा है, और गुस्सेमें आकर चिट्ठीमें ऐसी बात लिखी होंगी जिन्हें बिहारी पढ़कर सुनानेमें संकोच कर रहा है ।

बछड़ा जैसे गायके थनमें हुड़ मार-मारकर वात्सल्यका सञ्चार करके दूध उतारता है, महेन्द्रके गुस्सेने ठीक वैसे ही राजलक्ष्मीको चोट पहुंचाकर उनके रुके-हुए वात्सल्यको उत्सारित कर दिया। उन्होंने महेन्द्रको क्षमा कर दिया। कहने लगीं, "अच्छा है, अच्छा है, महेन बहूको लेकर शान्तिसे रह रहा है, रहने दो, जैसे भी रहे, सुखी रहना चाहिए। बहूके बारेमें अब मैं कुछ नहीं बोलूंगी,– मैं उसे कष्ट थोड़े ही देना चाहती हूं ! देखो तो भला, जो मा उसे

घड़ी-भरके लिए कभी भी अपनेसे अलग नहीं रख सकती थी वह मा इतनी दूर चली आई, तो क्यों नहीं उसे गुस्सा आयेगा ?" कहते-कहते राजलक्ष्मीकी आँखोंमें आँसू भर आये ।

उस दिन राजलक्ष्मी बिहारीसे बार-बार आकर कहने लगीं, "जाओ बेटा, तुम नहा-धो लो । यहाँ तुम्हारा रहन-सहन बड़ा अनियमित हो गया है ।"

किन्तु बिहारीको उस दिन नहाने-खानेकी प्रवृत्ति ही नहीं हुई । उसने कहा, "मा, मुझ जैसे अभागे अनियममें ही ठीक रहते हैं ।"

राजलक्ष्मीने जोर देकर कहा, "नहीं, बेटा, तुम उठो, जाओ, नहा-धोकर खा-पी लो,– फिर जीमें आये सो करना ।"

सैकड़ों बार अनुरोध किये जानेपर बिहारीको आखिर उठना ही पड़ा ।

उसके बाहर जाते ही राजलक्ष्मीने जल्दीसे जिल्दमेंसे महेन्द्रकी खोई-हुई चिट्ठी निकाल ली ।

विनोदिनीके हाथमें चिट्ठी देते-हुए उन्होंने कहा, "देखो तो बेटी, महेनने बिहारीको क्या लिखा है ?"

विनोदिनी पढ़कर सुनाने लगी । महेन्द्रने शुरूमें माके विषयमें लिखा था, किन्तु बहुत ही थोड़ा, बिहारीने जितना सुनाया था उससे ज्यादा कुछ नहीं ।

उसके बाद ही आशाकी बातें लिखी हैं । महेन्द्रने रस-रंग हास्य-रहस्य और पुलक-आनन्दके नशेमें उन्मत्त होकर चिट्ठी लिखी है ।

विनोदिनी थोड़ा-सा सुनाकर मारे लज्जाके रुक गई, बोली, "बुआजी, अब आगे सुनके क्या करोगी ?"

राजलक्ष्मीके स्नेहसे व्यग्र चेहरेका भाव क्षणमें बदलकर पत्थर-सा कठिन होकर मानो जम गया । कुछ देर वे चुप रहीं, फिर बोलीं, "रहने दो ।" इतना कहकर वे चिट्ठी वापस बगैर लिये ही चली गईं ।

विनोदिनी उस चिट्ठीको लेकर अपनी कोठरीमें चली गई, और भीतरसे किवाड़ बन्द करके बिस्तरपर बैठकर उसे पढ़ने लगी ।

चिट्ठीमें विनोदिनीको क्या रस मिला, सो वही जाने ; किन्तु वह कौतुक-रस हर्गिज नहीं था । चिट्ठीको बार-बार पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखें दोपहरकी गरम

बालूकी तरह जलने लगीं ; और उसकी साँस मरुभूमिकी लूकी तरह गरम हो उठी ।

बार-बार उसके मनमें यही एक बात चक्कर काटने लगी कि महेन्द्र कैसा है, आशा कैसी है, महेन्द्र और आशाका प्रेम कैसा है ? चिट्ठीको अपनी छातीके पास दबाकर वह पैर फैलाये दीवारके सहारे बैठी-हुई बहुत देर तक सामनेके आकाशकी ओर देखती रही ।

बिहारी तलाश करता रह गया, किन्तु महेन्द्रकी चिट्ठी उसे नहीं मिली ।

उसी दिन दोपहरको अकस्मात् अन्नपूर्णा आ पहुंची। दुःसंवादकी आशङ्कासे सहसा राजलक्ष्मीकी छाती काँप उठी । कुछ पूछनेकी उन्हें हिम्मत ही न पड़ी, अपना सफेद-फक मुँह लिये वे अन्नपूर्णाके मुँहकी तरफ देखती रहीं ।

अन्नपूर्णाने कहा, "जीजी, कलकत्तेमें सब राजी-खुशी है ।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तो तुम यहाँ कैसे ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "जीजी, तुम अपनी घर-गृहस्थी आप जाकर सम्हाल लो । मेरा अब घर-गृहस्थीमें मन नहीं लगता,— मैं काशी जानेके लिए घरसे रवाना हो चुकी हूं, इसीसे तुम्हारे पाँव लागने आई हूं । जानमें अनजानमें बहुत कसूर बन पड़े हैं मुझसे, सो सब माफ कर देना, जीजी ! और तुम्हारी बहू, (कहते कहते उनकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे) अभी वह बच्ची है, उसके मा नहीं है, बाप नहीं है,— वह दोषी हो या निर्दोष हो, वो है तुम्हारी ही ।" कहते-कहते उनका गला रुक आया, आगे कुछ कह न सकीं ।

राजलक्ष्मी व्यस्तताके साथ देवरानीके स्नानाहारकी व्यवस्था करने चली गईं ।

बिहारी खबर पाते ही गदाई घोषकी चौपालसे भागा-भागा घर आया । और चाचीके पाँव छूकर कहने लगा, "नहीं नहीं, चाची, यह कैसे हो सकता है ! हमलोगोंकी ममता छोड़कर तुम काशी चली जाओगी ! यह नहीं हो सकता ।"

अन्नपूर्णाने आँसू रोकते-हुए कहा, "अब तू मुझे रोकनेकी कोशिश न कर

बिहारी ! मेरे बिना कोई काम नहीं रुकेगा । तुम-सब खुश रहो, सुखी रहो, इसके सिवा मुझे और क्या चाहिए !"

बिहारी कुछ देर चुप बैठा रहा । और फिर बोला, "महेन्द्रका भाग्य ही खराब है,– उसने तुम्हें भी विदा कर दिया ।"

अन्नपूर्णाने चौंककर कहा, "ऐसी बात मुँहसे न निकाल, बिहारी ! महेन्द्रसे मैं जरा भी नाराज नहीं । मेरे बिना हटे घरकी भलाई नहीं होगी, इसीसे मैंने काशी जाना तय किया है ।"

बिहारी दूर आकाशकी तरफ देखता-हुआ चुपचाप बैठा रहा । अन्नपूर्णाने अपने आँचलसे दो सोनेके भारी कड़े खोलते-हुए कहा, "बेटा, ये कड़े तुम अपने पास रक्खो,– जब तुम्हारी बहू आवे तब मेरी तरफसे आशीर्वादमें उसे पहना देना ।"

बिहारी कड़ोंको माथेसे लगाकर अपने उमड़ते - हुए आसुओंको रोकनेके लिए बगलके कमरेमें चला गया ।

विदा होते समय अन्नपूर्णाने कहा, "बिहारी बेटा, तुम मेरे महेन्द्रकी और आशाकी सम्हाल करते रहना ।"

और फिर राजलक्ष्मीके पास जाकर उनके हाथमें एक कागज देती-हुई बोलीं, "ससुरजीकी सम्पत्तिमें मेरा जो हिस्सा है उसे मैं इस दानपत्रमें महेन्द्रको दिये जाती हूं, मुझे तुम महीने-महीने सिर्फ पन्द्रह रुपये भिजवा दिया करना ।"

इतना कहकर अन्नपूर्णाने जिठानीके पाँवसे माथा छुआकर प्रणाम किया और पाँवोंकी धूल माथेसे लगाई, और फिर काशीके लिए विदा हो गई ।

८

आशाको एक तरहका डर-सा बैठ गया । यह क्या हुआ, मा चली गई, मौसी चली गई ! उनलोगोंका सुख मानो सभीको निकाल बाहर कर रहा है ! अब शायद उसकी खुदकी भागनेकी बारी है । परित्यक्त शून्य घर-गृहस्थीमें दाम्पत्यकी नई प्रेमलीला उसे कैसी-तो असङ्गत-सी मालूम होने लगी ।

गार्हस्थिक कठिन कर्तव्यसे प्रेमको फूलकी तरह तोड़कर अलग कर लेनेसे फिर वह केवल अपने रससे अपने-आपको सजीव नहीं रख सकता, धीरे-धीरे वह विमर्ष और विकृत होने लगता है। आशा भी मन-ही-मन अनुभव करने लगी कि उनके अविश्राम मिलनमें प्रतिक्षण एक तरहकी श्रान्ति और कमजोरी आती जाती है। उनका मिलन मानो अब रह-रहकर अपने-आप मुरझाता और सूखता जा रहा है, घर-गृहस्थीके दृढ़ और प्रशस्त आश्रयके अभावमें उसे खींच-पकड़कर खड़ा रखना अब कठिन हो रहा है। काम-काजके भीतर ही यदि प्रेमकी जड़ न पनपे, तो भोगका विकास भी परिपूर्ण और स्थायी नहीं होता।

किन्तु महेन्द्रने क्या किया कि अपनेसे पराङ्मुख समस्त परिवारके विरुद्ध विद्रोह करके अपने प्रेमोत्सवकी सारी-की-सारी बत्तियाँ एकसाथ जलाकर अत्यन्त समारोहके साथ वह सूने घरके अमङ्गलमें ही मिलनका आनन्द मनाने लगा। उसने आशाके मनको जरा-कुछ चोट पहुंचाते-हुए ही कहा, "चुन्नी, आजकल तुम्हें हो क्या गया है बताओ तो? तुम्हारी मौसी क्या चली गई, सब-कुछ चला गया! तुम ऐसी उदास क्यों रहती हो? हमारे-तुम्हारे प्रेममें ही क्या सारा प्रेम नहीं समा गया?"

आशा दुःखित होकर सोचा करती, 'तब तो मेरे प्रेममें जरूर कहीं कोई कमी है! मैं तो अक्सर मौसीकी बात ही सोचा करती हूं, सासके चले जानेसे मुझे हरदम डर बना रहता है।' और फिर वह जी-जानसे इन-सब प्रेमके अपराधोंको दूर करनेका भरसक प्रयत्न करती रहती।

अब घरका काम-काज ठीकसे नहीं होता। नौकर-चाकर कामसे जी चुराते हैं। एक दिन नौकरानी तबीयत खराब होनेका बहाना बनाकर घर बैठ रही, और रसोइया-महाराज शराब पीकर लापता हो गये। महेन्द्रने आशासे कहा, "बड़ा अच्छा हुआ,– आज हम-तुम दोनों मिलकर रसोई बनायेंगे, बड़ा मजा रहेगा।"

महेन्द्र गाड़ीमें बैठकर साग-तरकारी लेने न्यू-मार्केट पहुंचा, जहांसे अंग्रेजोंके बावर्ची लोग सब्जी खरीदते हैं। कौन-सी चीज कितनी चाहिए और क्या-क्या

चाहिए, यह तो उसे कुछ मालूम नहीं था, लिहाजा बहुत-सा बोझ लेकर वह बड़े आनन्दसे घर लौटा। और आशाका यह हाल कि वह भी कुछ नहीं जानती कि उन चीजोंका कैसे क्या किया जाता है। नतीजा यह हुआ कि निरीक्षण-परीक्षण करते-करते ही ढाई-तीन बज गये, और तरह-तरहके अभूतपूर्व अखाद्योत्पादन कर-करके महेन्द्र खूब मजे लेने लगा। किन्तु आशा महेन्द्रके मजेमें शरीक न हो सकी। उसे अपनी अज्ञता और असमर्थतापर भीतर-ही-भीतर बड़ी लज्जा हुई और क्षोभ भी हुआ।

घर-भरमें, क्या कमरे और क्या बैठक, सर्वत्र चीज-वस्त ऐसी अस्त-व्यस्त हो रही है कि काम पड़नेपर कोई भी जरूरी चीज ढूंढ़े नहीं मिलती। महेन्द्रका एक 'चिकित्सा-अस्त्र' अकस्मात् एक दिन साग-तरकारी बनानेका काम देने लगा और बादमें घूरेमें जाकर अज्ञातवास करने लगा। और एक दिन देखा गया कि उसकी कॉलेजकी 'नोट-बुक' चूल्हा सुलगानेके कामसे पँखा बनकर चौकेमें गई तो फिर लौटी ही नहीं। बादमें मालूम हुआ, उसने हमेशाके लिए भस्मशय्या ग्रहण कर ली है। इतना सब-कुछ होते-हुए भी मजा यह कि इन-सब कल्पनातीत व्यवस्था-विपर्ययसे महेन्द्रके कुतूहलकी सीमा न रही। किन्तु आशा व्यथित और चिन्तित होती रही। उच्छृङ्खल यथेच्छाचारके स्रोतमें सारी घर-गृहस्थीको बहाकर उसके साथ हँसते-हँसते अपनेको भी बहाते जाना बालिका वधूके लिए विभीषिकाजनक मालूम होने लगा।

एक दिन शामको दोनों जने छतवाले बरामदेमें बिस्तर बिछाकर बैठे थे। सामने खुली छत है। वर्षा होनेके बाद कलकत्तेकी दिगन्तव्यापी अट्टालिकाएँ चाँदनीमें चमक रही हैं। बगीचेसे ढेर-के-ढेर भीगे-हुए मौलसिरीके फूल लाकर आशा सिर झुकाये चुपचाप बैठी माला गूँथ रही है। और महेन्द्र उसे खींच-तानकर रुकावट डालकर प्रतिकूल समालोचना करके व्यर्थ ही लड़ाई मोल लेनेकी कोशिश कर रहा है। आशा इस अकारण छेड़छाड़के विरुद्ध प्रतिवाद करनेके लिए कुछ कहनेको बीच-बीचमें मुँह खोलना चाहती तो महेन्द्र चटसे किसी-एक कृत्रिम उपायसे आशाका मुँह बन्द करके उसके शासन-वाक्यको अंकुरावस्थामें ही विनष्ट कर देता।

इतनेमें पड़ोसीके घरकी पालतू कोयल पिंजड़ेमेंसे 'कुहू-कुहू' बोल उठी। उसी समय महेन्द्र और आशा दोनों-के-दोनों अपने सिरके ऊपर लटकते-हुए पिंजड़ेकी तरफ देखने लगे। उनकी कोयलने पड़ोसकी कोयलकी कुहूध्वनिको कभी भी चुपचाप सहन नहीं किया, फिर आज वह जवाब क्यों नहीं देती ?

आशाने उत्कण्ठित होकर कहा, "कोयलको आज हो क्या गया ?"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारी आवाज सुनकर शरमा गई है।"

आशाने अनुनयके स्वरमें कहा, "नहीं, हँसी नहीं, देखो न जरा, क्या हो गया इसे !"

महेन्द्रने पिंजड़ा उतार लिया। पिंजड़ेका आवरण खोलकर देखा तो कोयल मरी पड़ी है। अन्नपूर्णाके चले जानेके बाद नौकर छुट्टी लेकर चला गया था, फिर किसीने उसकी खबर ही नहीं ली।

देखते-देखते आशाका चेहरा म्लान हो गया। उसकी उंगलियाँ रुक गईं,—फूल जहाँके तहाँ पड़े रह गये। महेन्द्रके मनको चोट न पहुंची हो सो बात नहीं, किन्तु असमयमें रङ्गमें भङ्ग होनेकी आशङ्कासे बातको उसने हँसीमें उड़ा देनेकी कोशिश की। बोला, "चलो अच्छा ही हुआ, मैं डाक्टरी करने जाता और यह 'कुहू-कुहू' करके तुम्हें जलाती रहती।" इतना कहकर उसने आशाको अपने बाहुपाशमें आबद्ध करके पास खींचनेकी कोशिश की। किन्तु आशाने धीरेसे अपनेको छुड़ाकर आँचलमें भरे सारे-के-सारे फूल फेंक दिये। बोली, "बस, अब बहुत हो चुका ! छी छी। तुम जल्दी जाओ, माको ले आओ।"

९

ठीक इसी समय नीचेसे आवाज आई, "महेन-भइया, महेन-भइया !"

महेन्द्रने जवाब दिया, "अरे कौन, बिहारी ! आओ आओ।" बिहारीकी आवाज सुनकर महेन्द्रका चित्त मारे खुशीके उत्फुल्ल हो उठा। ब्याहके बाद बिहारी बीच-बीचमें इनलोगोंके सुखमें विघ्न बनकर आया है; किन्तु आज वह विघ्न ही सुखके लिए अत्यन्त आवश्यक मालूम हुआ।

आशाको भी विहारीके आगमनसे आराम मालूम हुआ। माथेका पल्ला सम्हालकर वह जल्दीसे उठके जाने लगी। महेन्द्रने कहा, "जाती कहाँ हो ? और-कोई थोड़े ही है,– बिहारी है।"

आशाने कहा, "लालाजीके लिए जलपानका इन्तजाम करने जा रही हूं।"

कामका अवसर मिल जानेसे आशाका अवसाद जरा-कुछ हलका हो गया। वह सासकी खबर जाननेके लिए घूंघट खींचकर खड़ी रही। बिहारीसे अब तक वह परदा करती आई है, बोलती नहीं।

बिहारी ऊपरके बरण्डेमें पाँव रखते ही बोल उठा, "बुरा हुआ, मुझसे कसूर हो गया, भाभी! ऐसे कवित्वमें आकर कदम रक्खा कि,– खैर डरनेकी कोई बात नहीं, तुम बैठो, मैं भाग चला।"

आशा महेन्द्रके मुँहकी तरफ देखने लगी। महेन्द्रने बिहारीसे पूछा, "बिहारी, माकी क्या खबर है ?"

बिहारीने कहा, "मा-चाचीकी बात आज क्यों भाई साहब! उसके लिए बहुत समय पड़ा है। Such a night was not made for sleep, nor for mothers and aunts!" (ऐसी रात र. नेके लिए नहीं बनी, और न मा या चाचीके लिए!)

इतना कहकर बिहारी जब लौटने लगा तो महेन्द्रने उसे जबरदस्ती पकड़कर बिठा लिया।

बिहारी बोला, "देख लो, भाभी, फिर तुम मुझे दोष न देना,– मुझे जबरदस्ती बिठा रहे हैं। पाप कर रहे हैं महेन-भइया,– देखना, कहीं उसका शाप मुझपर न पड़े!"

आशा कुछ जवाब न दे सकनेके कारण ही ऐसी बातोंसे झुंझला उठती है, और बिहारी उसे जान-बूझकर परेशान किया करता है।

बिहारीने कहा, "घरका ठाठ तो वर्णनातीत हो रहा है! – क्या माको बुलानेका समय अभी नहीं हुआ ?"

महेन्द्रने कहा, "तुम भी खूब हो! हमलोग तो उनकी राह ही देख रहे हैं।"

बिहारीने कहा, "यह बात उन्हें चिट्ठी लिखकर जता देनेमें बहुत कम समय लगेगा,- किन्तु उनकी खुशीका ठिकाना न रहेगा। भाभी, इसके लिए तुम्हें महेन-भइयाको दो मिनटकी छुट्टी देनी होगी, मेरी तुमसे इतनी-सी प्रार्थना है।"

आशा गुस्सा होकर चली गई। उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे।

महेन्द्रने कहा, "न-जाने कैसी शुभ-घड़ीमें तुम दोनोंका साक्षात् हुआ था। सन्धि अन्त तक हुई ही नहीं, हमेशा खटपट ही बनी रहती है।"

बिहारीने कहा, "तुम्हारी माने तो तुम्हें बिगाड़ ही दिया है, उसपर स्त्री भी तुम्हें बिगाड़ रही है,- यह मुझसे देखा नहीं जाता, इसीसे मौका पाकर दो-एक बात कह बैठता हूं।"

महेन्द्र बोला, "इससे फल क्या होता है?"

बिहारीने कहा, "फल तुम्हारे लिए तो विशेष कुछ नहीं होता, पर मुझे तो कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है।"

१०

बिहारीने खुद सामने बैठकर महेन्द्रसे चिट्ठी लिखा ली, और उस चिट्ठीको लेकर दूसरे ही दिन वह राजलक्ष्मीको लिवाने चला गया।

राजलक्ष्मी समझ गईं कि यह चिट्ठी बिहारी खुद लिखा लाया है, किन्तु फिर भी उनसे रहा नहीं गया। वे कलकत्ता चली आईं; और उनके साथ विनोदिनी भी आई।

गृहिणीने आकर अपने घरकी जो दुरवस्था देखी,- चारों तरफ गन्दा, मैला-कुचैला, सब-कुछ उलटा-पुलटा अव्यवस्थित,- तो बहूके प्रति उनका मन और भी मानो वक्र हो उठा।

किन्तु बहूका यह कैसा परिवर्तन! वह तो छायाकी तरह सासका अनुसरण कर रही है। बगैर कहे ही वह सासके हर काममें सहायता करने चली आती है। इससे कभी-कभी सास चंचल होकर कहने लगती है, "ठहरो-ठहरो, तुमसे न होगा। जिस कामको जानती नहीं उसमें क्यों फजूल हाथ डालती हो?"

अब तो राजलक्ष्मीको पक्का निश्चय हो गया कि अन्नपूर्णाके चले जानेसे ही बहूके स्वभावमें इतना परिवर्तन हुआ है। और फिर वे सोचने लगीं कि महेन्द्र सोचेगा, 'चाची जब थी तब बहूको लेकर मैं बड़े आरामसे था, अब माके आते ही मेरा विरह-दुःख शुरू हो गया।' इससे तो यही साबित होगा कि अन्नपूर्णा उसकी हितैषिणी थी और मा उसके सुखमें अन्तराय है। उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'उँह, मुझे क्या जरूरत है।'

आजकल दिनमें अगर कभी महेन्द्र आशाको बुलवाता है तो आशा आनेमें संकोच करती है, किन्तु राजलक्ष्मी डाटकर कहतीं, "महेन बुला रहा है, कानसे सुनाई नहीं देता क्या ? ज़्यादा लाड़-प्यारसे यही तो होता है! जाओ, साग-तरकारी पीछे बनारती रहना।"

फिर वही सिलेट-पेन्सिल और 'चारुपाठ' का झूठा खेल। वही प्यारकी निराधार शिकायतें और परस्पर एक दूसरेपर दोषारोप। दोनोंमेंसे किसके प्रेमका वजन भारी है, इसपर बिना युक्तिके जोरका तर्क-वितर्क; वर्षाके दिनको रात और चाँदनी रातको दिन बना देना। श्रान्ति और अवसादको बाहुबलसे ज़बरदस्ती हटा देनेकी कोशिश करना, और परस्परमें ऐसा अभ्यास करना कि मिलन जब कि शिथिल चित्तको आनन्द नहीं दे रहा तब भी क्षण-भरके लिए मिलन-पाशसे अलग होनेसे डरते हैं,—सम्भोगसुख भस्माच्छन्न है किन्तु फिर भी अन्य काममें जानेको पाँव नहीं उठते! भोग-सुखका यही तो भयानक अभिशाप है कि सुख अधिक दिन नहीं रहता, किन्तु बन्धन दुश्छेद्य हो उठता है।

ऐसी स्थितिमें एक दिन विनोदिनी आकर आशाके गलेसे लिपट गई, और बोली, "बहन, तुम्हारा सुहाग बना रहे। पर मैं दुखिया हूं तो क्या मेरी तरफ तुम्हें एक बार आँख उठाकर देखना भी नहीं चाहिए ?"

बचपन ही से मातृ-पितृहीन आशाको चाचा-चाचीके घर पराई-सी बनकर रहना पड़ा था, इसलिए लोगोंसे मिलने-जुलने बोलने-चालनेमें उसे एक तरहका भीतरी सङ्कोच बना रहता था। वह डरती रहती कि शायद कोई उससे हेलमेल न करना चाहे, उपेक्षासे अनादर कर बैठे! इसीसे विनोदिनी जब अपनी जुड़ी

हुई भौंहें, तीक्ष्ण दृष्टि, गोल-मटोल सुन्दर मुँह और सुडोल यौवन लेकर इस घरमें उपस्थित हुई तब आशाको आगे बढ़कर उससे परिचय करनेका साहस नहीं हुआ।

आशाने देखा कि उसकी साससे विनोदिनीको जरा भी किसी तरहका संकोच नहीं। और राजलक्ष्मी भी मानो खास तौरसे आशाको दिखा-दिखाकर विनोदिनीको मान देती रहती हैं और समय-असमयमें आशाको सुना-सुनाकर विनोदिनीकी उच्छ्वसित प्रशंसा करती रहती हैं। आशाने यह भी देखा कि विनोदिनी घर-गृहस्थीके सब काममें निपुण है, प्रभुत्व चलाना मानो उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वभावसिद्ध है। दास-दासियोंको काममें लगाने, डाटने फटकारने और आदेश देनेमें उसे लेशमात्र भी सङ्कोच नहीं। और यह सब देख-भालकर आशा विनोदिनीके आगे अपनेको बहुत ही तुच्छ समझने लगी।

उसी सर्वगुण-सम्पन्ना विनोदिनीने जब स्वयं आगे आकर आशासे प्रेमकी प्रार्थना की, तब सङ्कोचकी बाधासे टकराकर ही उस बालिकाका आनन्द चौगुना होकर उछल पड़ा ; और उसी क्षण जादूगरके जादूके पेड़की तरह इन दोनोंका प्रणय-बीज एक ही दिनमें अंकुरित पल्लवित और पुष्पित हो उठा।

आशाने कहा, "आओ, बहन, आजसे हम-तुम दोनों भाइली हो जायें। बताओ भाइलेके लिए क्या नाम रक्खा जाय ?"

विनोदिनी हँसती-हुई बोली, "क्या रक्खोगी, तुम्हीं बताओ ?"

आशाने 'गङ्गाजल' 'मौलसिरी' आदि बहुतसे अच्छे-अच्छे नाम बता दिये।

विनोदिनीने कहा, "ये सब नाम तो अब पुराने पड़ गये हैं, अब इन प्यारके नामोंकी कोई कदर नहीं।"

आशाने कहा, "तो तुम्हीं बताओ, तुम्हें क्या पसन्द है ?"

विनोदिनीने हँसते-हुए कहा, "आँखकी किरकिरी।"

श्रुति-मधुर नामपर ही आशाका झुकाव था, किन्तु विनोदिनीकी सलाहसे उसे 'प्यारकी गाली'को ही ग्रहण करना पड़ा। विनोदिनीने आशाके गलेमें बाँह डालकर कहा, "आँखकी किरकिरी !" और फिर हँसते-हँसते वह लोटपोट हो गई।

११

आशाके लिए एक सङ्गिनीकी बड़ी जरूरत थी। प्रेमका उत्सव भी केवल दो आदमियोंसे सम्पन्न नहीं होता,—सुखालापकी मिठाई बाँटनेके लिए फालतू आदमीकी भी जरूरत होती है।

क्षुधित-हृदया विनोदिनी भी नववधूके नवीन प्रेमके इतिहासको उसी तरह कान फैलाकर पीने लगी जिस तरह शराबी ज्वालामय शराबको हाथ बढ़ाकर पीता है। उसका मस्तिष्क उन्मत्त हो उठा और शरीरका रक्त जलने लगा।

दोपहरके सन्नाटेमें जब मा सो जातीं, नौकर-चाकर नीचे विश्राम-शालामें जाकर आराम करते, महेन्द्र बिहारीकी ताड़नासे कुछ देरके लिए कालेज चला जाता और सूर्य-किरणोंसे उत्तप्त नीलिमाके शेष प्रान्तसे चीलोंका तीव्र कण्ठ अतिक्षीण स्वरमें क्वचित्-कभी सुनाई देता रहता, तब आशा अपने निर्जन शयनागारमें तकियेपर अपने खुले बाल फैलाकर नीचेके बिस्तरपर लेट जाती और विनोदिनी अपनी छातीके नीचे तकिया दबाकर औंधी पड़कर उसके मुँहसे गुनगुन-गुञ्जरित प्रेम-कहानी सुननेमें तल्लीन हो जाती। सुनते-सुनते उसके कर्णमूल लाल हो उठते और साँस जोर-जोरसे चलने लगती।

विनोदिनी खोद-विनोदकर प्रश्नपर प्रश्न करके तुच्छसे तुच्छ बातको बाहर निकाल लेती, एक बातको बार-बार सुनती, घटना समाप्त हो जानेपर कल्पनाकी अवतारणा करती। कहती, 'अच्छा बहन, अगर ऐसा होता तो क्या होता, अगर वैसा होता तो तुम क्या करतीं?' इन सब असम्भावित कल्पनाओंके रास्ते आनन्दकी बातोंको बढ़ाते चले जानेमें आशाको भी एक तरहका विचित्र आनन्द मिलता।

विनोदिनी कहती, "अच्छा एक बात तो बता, 'आँखकी किरकिरी', तेरा अगर बिहारी-बाबूसे ब्याह होता तो?"

आशा कहती, "नहीं बहन, ऐसी बात तुम न कहा करो! छी छी, मुझे बड़ी शरम मालूम होती है। हाँ, तुमसे अगर होता तो बड़ा अच्छा होता। तुम्हारे साथ भी तो ब्याहकी बात चली थी!"

विनोदिनी कहती, "मेरे साथ तो बहुतोंकी बहुत बात चली थी। नहीं हुआ सो अच्छा ही हुआ,—मैं जैसी हूं वैसी ही अच्छी हूं।"

आशा उसकी बातका प्रतिवाद करती। विनोदिनीकी अवस्था उससे अच्छी है, इस बातको वह कैसे मान ले? वह कहती, "एक बार तुम सोच तो देखो, बहन 'किरकिरी', अगर मेरे पतिसे तुम्हारा ब्याह हो जाता तो कैसा होता? कसर तो जरा-सी रह गई थी, नहीं तो हो ही जाता!"

सो तो होता ही। नहीं हुआ तो क्यों? आशाका यह कमरा, यह पलंग सब-कुछ तो एक दिन उसीकी प्रतीक्षा कर रहा था। विनोदिनी आशाके इस सुसज्जित शयनागारकी तरफ देखती है तो उससे यह बात भूलते नहीं बनती। इस घरमें आज वह एक अतिथि-मात्र है, आज उसे जगह मिल गई तो रह रही है, कल नहीं मिली तो चली जायगी।

तीसरे पहर विनोदिनी अपनी तरफसे चलाकर अपूर्व निपुणताके साथ आशाका जूड़ा बांध देती और सन्ध्या होते ही उसे खूब सजाकर पति-मिलनके लिए भेज देती। विनोदिनीकी कल्पना मानो अवगुण्ठिता होकर इस सुसज्जित वधूके पीछे-पीछे मुग्ध युवकके अभिसारमें निर्जन शयनागारमें प्रवेश करती। और किसी-किसी दिन तो आशाको वह जाने ही नहीं देती। कहती, "ओःफ्, जरा बैठो भी तो! तुम्हारे प्रियतम कहीं भागे थोड़े ही जाते हैं। वे तो जंगलके हरिण नहीं हैं, आंचलके पालतू हरिण हैं।" इस तरह नाना छलोंसे वह आशाको रोक रखनेकी कोशिश करती।

महेन्द्र आशासे बहुत नाराज होकर कहता, "तुम्हारी सहेली तो जानेका नाम ही नहीं लेतीं, बात क्या है? वे देश कब जायेंगी?"

आशा व्यग्र होकर कहती, "तुम मेरी 'किरकिरी' पर नाराज न हुआ करो। तुम नहीं जानते, तुम्हारी बातें सुननेका उसे कितना चाव है! वह कितने जतनसे मुझे सजाकर तुम्हारे पास भेजती है।"

राजलक्ष्मी आशाको काम नहीं करने देती थीं। विनोदिनीने बहूका पक्ष लेकर उसे काममें लगाना शुरू कर दिया। विनोदिनीको जरा भी आलस नहीं, वह दिन-भर कुछ-न-कुछ करती ही रहती, और आशाको भी छुट्टी नहीं

देना चाहती। विनोदिनी एकके बाद एक कामका ऐसा सिलसिला लगाये रखती कि उसमेंसे आशाका निकल भागना मुश्किल हो जाता। और फिर इस बातकी कल्पना करके कि आशाके पीतम छतके कोनेवाले सूने कमरेमें अकेले बैठे मारे गुस्सेके फड़फड़ा रहे होंगे, विनोदिनी मन-ही-मन तीव्र-कठोर हँसी हँसती रहती। आशा उद्विग्न होकर कहती, "अब मैं जाऊँ, बहन किरकिरी, वे गुस्सा हो रहे होंगे।"

विनोदिनी चटसे कहती, "जरा ठहरो, इसे खतम कर जाओ,– अब ज्यादा देर नहीं होगी।"

थोड़ी देर बाद आशा फिर फड़फड़ाने लगती, कहती, "नहीं, बहन, अब वे सचमुच ही गुस्सा हो जायेंगे,– मुझे छोड़ दो, मैं जाऊँ।"

विनोदिनी कहती, "होने दो न गुस्सा,– जरा नाराज हो जायेंगे तो क्या है! प्यारके साथ नाराजी बिना मिले तो प्यारका जायका ही नहीं मिलता, साग-तरकारीमें नमक-मिर्चके बिना क्या मजा है,– प्यारमें भी चटपटे मसालेकी जरूरत पड़ती है, समझी कुछ!"

किन्तु नमक-मिर्चका जायका क्या है सो तो विनोदिनी ही समझ रही थी, सिर्फ साथमें उसके तरकारी नहीं थी। उसकी नसोंमें मानो आग-सी जल उठी। वह जिधर भी देखती है, उसकी आँखोंसे मानो चिनगारियाँ-सी बरसने लगती हैं। विनोदिनी गहरी साँस ले-लेकर सोचा करती, 'ऐसी सुखकी घर-गृहस्थी, ऐसे प्यारके पति! इस घरको तो मैं राजाका राज्य बना देती, ऐसे पतिको तो मैं चरणोंका दास बना रखती। मेरे रहते क्या इस घरकी यह दशा होती, ऐसे आदमीका ऐसा हाल होने देती! मेरी जगह कहाँ तो एक दुधमुँही बच्चीको खेलकी गुड़ियाको मिली है!' और इस भावावेगमें सहसा वह आशाके गलेसे लगकर कहने लगती, "बहन किरकिरी, बताओ न बहन, कल तुमसे उनकी क्या-क्या बातें हुई थीं? मैंने जो तुम्हें सिखाया था, वैसा किया था? सच कहती हूं, किरकिरी, तुम दोनोंके प्यारकी बातें सुनती हूं तो मेरी भूख-प्यास सब जाती रहती है!"

१२

महेन्द्र एक दिन नाराज होकर अपनी मासे बोला, "यह क्या अच्छी बात है, मा ? पराये घरकी किसी युवती विधवाको अपने घर लाकर रखनेकी क्या जरूरत ? मेरी तो इसमें कतई राय नहीं,– कौन जाने, कब कौनसा संकट आ खड़ा हो !"

राजलक्ष्मीने कहा, "है तो वो अपने विपिनकी ही बहू, कोई गैर थोड़े ही है, मेरे पास रहती है तो क्या हो गया !"

महेन्द्रने कहा, "नहीं, मा, अच्छा नहीं हो रहा । मेरी रायसे उसे यहाँ रखना उचित नहीं ।"

राजलक्ष्मी खूब अच्छी तरह जानती है कि महेन्द्रकी रायकी उपेक्षा करना आसान नहीं । उन्होंने बिहारीको बुलाकर कहा, "बिहारी, तू एक बार मेहनको समझाकर कह तो सही कि विपिनकी बहूके रहनेसे मुझे कितना आराम है । आखिर बुढ़ापेमें मैं अकेली कितना करूँगी ? तू तो जानता है, बेटा, वो गैर हो चाहे जो हो, अपनोंसे तो आज तक मुझे ऐसी सेवा कभी नहीं मिली ।"

बिहारी राजलक्ष्मीकी बातका कुछ जवाब न देकर सीधा महेन्द्रके पास पहुंचा, बोला, "महेन-भइया, विनोदिनीके विषयमें कुछ सोच रहे हो क्या ?"

महेन्द्रने हँसते-हुए कहा, "सोचते-सोचते तो मुझे रात-भर नींद नहीं आती । अपनी भाभीसे पूछ देखो, आजकल विनोदिनीके ध्यानमें तो मेरे और-सब ध्यान भङ्ग हो रहे हैं ।"

आशा मुँहसे तो कुछ बोल न सकी, सिर्फ घूंघटके भीतरसे मौन तर्जन करके रह गई ।

बिहारीने कहा, "कहते क्या हो, दूसरे 'विषवृक्ष'की तैयारी तो नहीं !"

महेन्द्रने कहा, "बात तो कुछ ऐसी ही है । अब उसे विदा करनेके लिए चुन्नीके प्राण फड़फड़ा रहे हैं ।

घूंघटके भीतरसे फिर आशाकी आँखोंने कुटिल कटाक्षसे महेन्द्रको डाट दिया ।

बिहारीने कहा, "विदा कर दो तो फिर पुनरागमनमें क्या देर लगती है। विधवाका ब्याह कर दो, – जहरके दाँत बिलकुल ही उखड़ जायँगे।"

महेन्द्र बोला, "विषवृक्षकी कुन्दका भी तो ब्याह करा दिया गया था!"

बिहारीने कहा, "खैर, इस उपमाको अभी रहने दो। विनोदिनीके विषयमें मैं भी कभी-कभी सोचता हूं। तुम्हारे यहाँ तो वह हमेशा नहीं रह सकती। और फिर, देशमें मैं जैसा जंगल देख आया हूं, वहाँ भी तो यावज्जीवन उसे वनवासमें नहीं भेजा जा सकता,– इतना कठोर दण्ड सहा कैसे जायगा!"

विनोदिनी अब तक महेन्द्रके सामने नहीं निकली थी, किन्तु बिहारीने उसे देखा है। और देखते ही वह इतना समझ गया है कि यह नारी जंगलमें डाल रखने लायक नहीं है। किन्तु, एक ही अग्निशिखा घरके प्रदीपमें और तरहसे जलती है और घरमें आग दूसरी तरहसे लगाती है,– यह बात भी महेन्द्रने न सोची हो सो बात नहीं।

महेन्द्रने इस बातपर बिहारीकी खूब खिल्ली उड़ाई। और बिहारीने भी उसका जवाब दिया। किन्तु उसका मन समझ गया था कि यह नारी खिलवाड़की चीज नहीं, और न इसकी उपेक्षा ही की जा सकती है।

राजलक्ष्मीने विनोदिनीको सावधान कर दिया। उन्होंने कहा, "देखो, बेटी, बहूसे तुम जो इतना हेलमेल रखती हो, उसे अपने पास उलझाये रहती हो,– ऐसा न किया करो। तुम गाँवकी रहनेवाली हो, आजकलका चाल-चलन तुम्हें नहीं मालूम। आखिर तुम खुद समझदार हो, सोच-समझकर चलना ही ठीक है।"

इसके बादसे विनोदिनी अत्यन्त आडम्बरके साथ आशाको अपनेसे दूर-दूर रखने लगी। कहती, "बहन, मैं इस घरकी कौन हूं! मुझ जैसी गरीबिनको तो अपनी आबरू बचाकर चलना चाहिए, नहीं तो किस दिन क्या हो जाय, कौन कह सकता है!"

आशा बहुत रोई-धोई, बहुत गिड़गिड़ाई, मनानेकी भी काफी कोशिश की, किन्तु दृढ़प्रतिज्ञ विनोदिनी टससे मस न हुई। मनकी बातोंसे आशा आकंठ परिपूर्ण हो उठी, किन्तु विनोदिनीने एक न सुनी।

इधर महेन्द्रका बाहुपाश धीरे-धीरे शिथिल होता आ रहा था, और उसकी मुग्ध दृष्टि भी मानो क्लान्तिसे घिरी आ रही थी। पहले उसे जो अनियम और उच्छृङ्खलता कौतुकजनक मालूम होती थी अब वह धीरे-धीरे उसे पीड़ा पहुंचाने लगी। आशाकी सांसारिक अपटुतापर उसे क्षण-क्षणमें गुस्सा आने लगा, किन्तु मुँह खोलकर कुछ कहता नहीं। उसके कुछ न कहनेपर भी आशा भीतर ही भीतर अनुभव करती रहती है कि निरवच्छिन्न मिलनमें प्रेमकी मर्यादा म्लान होती आ रही है। महेन्द्रके लाड़-प्यारमें अब कुछ बेसुरापन आने लगा है, कुछ तो झूठी ज्यादती होती है और कुछ आत्म-प्रवंचना।

ऐसे समयमें भागनेके सिवा बचनेका कोई उपाय नहीं, विच्छेदके सिवा कोई दवा नहीं। स्त्रियोंके स्वभावसिद्ध संस्कार-वश आशा आजकल महेन्द्रको अकेला छोड़कर दूर-दूर रहनेकी कोशिश करती रहती है। किन्तु एक विनोदिनीके सिवा वह जाय भी तो किसके पास?

प्रणयकी उत्तप्त सुहाग-शय्यापर पड़े-पड़े, बहुत दिन बाद, अब महेन्द्रकी जरा आँख खुली, और धीरे-धीरे उसने अपने काम-काज और पढ़ने-लिखनेपर ध्यान देते-हुए मानो जरा सजग होकर करवट बदला। अपनी डाक्टरी किताबोंका उसने नाना असम्भव स्थानोंसे उद्धार किया, उनकी धूल झाड़ी, और अचकन पतलून वगैरहको धूप दिखानेकी तैयारी करने लगा।

१३

आशाने जब देखा कि विनोदिनी किसी भी तरह हाथ नहीं आ रही तो उसने एक नई चाल चली। उसने विनोदिनीसे कहा, "बहन किरकिरी, तुम मेरे पतिके आगे निकलती क्यों नहीं? दूर-दूर क्यों भागी फिरती हो?"

विनोदिनीने अत्यन्त संक्षेपमें किन्तु तेजके साथ उत्तर दिया, "छी छी।"

आशाने कहा, "क्यों? मैंने तो माँसे सुना है, तुम कोई गैर नहीं हो!"

विनोदिनीने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, "संसारमें अपना-पराया कोई भी नहीं। जो अपना समझता है वही अपना है, और जो गैर समझता है वह अपना होनेपर भी गैर है।"

आशाने अपने मनमें समझा कि इस बातका तो कोई जवाब नहीं। सचमुच ही उसके पति विनोदिनीके प्रति अन्याय करते हैं, वास्तवमें उसे गैर समझते हैं और अकारण ही उससे नाराज रहते हैं।

उस दिन रातको आशा अपने पतिसे जिद कर बैठी, "मेरी किरकिरीके साथ तुम्हें बोलना ही पड़ेगा।"

महेन्द्रने हँसते-हुए कहा, "तुम्हारा साहस तो कम नहीं मालूम होता!"

आशाने कहा, "क्यों, इसमें डरकी क्या बात है?"

महेन्द्रने कहा, "तुम अपनी सखीके रूपका जैसा वर्णन किया करती हो, उससे तो वह खतरेसे खाली नहीं मालूम होती!"

आशाने कहा, "अच्छा मैं सब सम्हाल दूंगी। तुम अपना मजाक रहने दो,—उससे बोलोगे या नहीं सो बताओ?"

महेन्द्रने विनोदिनीको देखनेका कोई कुतूहल ही न हो, सो बात नहीं। यहाँ तक कि आजकल तो उसे देखनेके लिए कभी-कभी उसके आग्रह भी होने लगता है। किन्तु इस तरहका अनावश्यक आग्रह उसे स्वयं उचित नहीं जचता।

हार्दिक सम्बन्धके विषयमें महेन्द्रका उचित-अनुचितका आदर्श साधारण लोगोंकी अपेक्षा कुछ कड़ा था। पहले तो वह केवल इस डरसे कि कहीं माके अधिकारमें कोई खामी न आ जाये, अपने विवाहका प्रसङ्ग तक सुननेसे घबराता था; और आजकल आशाके साथ अपने सम्बन्धकी वह यहाँ तक रक्षा करना चाहता है कि अन्य स्त्रीके प्रति सामान्य कौतूहलको भी मनमें स्थान देना अन्याय समझता है। और इस बातका उसके हृदयमें बड़ा गर्व है कि अपने प्रेमके सम्बन्धमें वह अत्यन्त सन्दिग्ध-शोधक और बहुत ही सच्चा-खरा है। यहाँ तक कि बिहारीको वह अपना मित्र कहता है, इसलिए और-किसीको मित्र ही नहीं मानना चाहता। और-कोई अगर उससे आकृष्ट होकर घनिष्ठता करने आता तो उसके प्रति मानो वह जबरदस्ती उपेक्षा-भाव दिखाता, और बिहारीके आगे उस अभागेके विषयमें उपहास-तीव्र अवज्ञा प्रकट करके अन्य साधारणके प्रति अपनी अत्यन्त उदासीनता घोषित करने लगता। बिहारी इसपर आपत्ति करता तो महेन्द्र कहने लगता, "तुम कर सकते हो, बिहारी, जहाँ भी जाओ तुम्हारे

मित्रोंकी कमी नहीं रहती, किन्तु मैं चाहे जिसे 'मित्र' समझकर घनिष्ठता नहीं कर सकता।"

उसी महेन्द्रका मन आजकल बीच-बीचमें जब अनिवार्य व्यग्रता और कुतूहल के साथ इस अपरिचिताके पीछे अपने-आप दौड़ने लगता है तो वह स्वयं अपने आदर्शके सामने मारे संकोच और लज्जाके छोटा हो जाता है। अन्तमें नतीजा यह हुआ कि उसमें एक तरहकी झुँझलाहट पैदा हो गई और उसको ताड़नासे विनोदिनीको वह घरसे विदा कर देनेके लिए माके पीछे पड़ गया।

महेन्द्रने आशाकी बातका जवाब देते-हुए कहा, "रहने दो, चुन्नी! तुम्हारी 'आँखकी किरकिरी'से बात करनेकी मुझे न तो फुरसत है, न इच्छा है। पढ़नेके समयमें डाक्टरी किताबें पढ़ता हूं, और फुरसतके वक्त तुम हो,—इसमें अब तुम्हारी सखीके लिए गुंजाइश ही कहाँ है जो तुम उसे लाना चाहती हो?"

आशाने कहा, "अच्छा अच्छा, मैं तुम्हारी पढ़ाईके समयपर जरा भी दखल नहीं जमाऊंगी, मैं अपने ही समयमेंसे थोड़ा-सा किरकिरीको दे दूँगी।"

महेन्द्रने कहा, "तुम तो दे दोगी, पर मैं जो नहीं देना चाहता।"

आशा जो विनोदिनीको प्यार करती है, महेन्द्रका कहना है, इससे उसके पति-प्रेममें त्रुटिका ही प्रमाण मिलता है। महेन्द्र अहकारके साथ कहता, "मेरे समान अनन्यनिष्ठ प्रेम तुम्हारा नहीं है।" आशा इस बातको कतई स्वीकार नहीं करती, इसपर झगड़ती और रोती, किन्तु तर्कमें जीत नहीं पाती।

महेन्द्र अपने दाम्पत्य-राज्यमें विनोदिनीके लिए सूच्याग्र स्थान भी नहीं देना चाहता, और यह उसके लिए गर्वका विषय हो उठा। किन्तु, महेन्द्रका यह गर्व आशासे सहा नहीं जाता, फिर भी आज उसने पराजय स्वीकार करते हुए कहा, "अच्छा तो ठीक है, मेरी ही खातिर तुम मेरी 'किरकिरी' से बोला करो।"

आशाके प्रति अपने प्रेमकी दृढ़ता और श्रेष्ठता प्रमाणित करनेके बाद महेन्द्रने अन्तमें अनुग्रहपूर्वक विनोदिनीसे बोलना स्वीकार कर लिया, किन्तु इतना पहलेसे कह रक्खा, "इसका मतलब यह नहीं कि तुम-जब-है-तब मुझे परेशान करती रहो!"

दूसरे दिन तड़के ही उठकर आशा दौड़ी-दौड़ी विनोदिनीके कमरेमें पहुंची और सोती-हुई विनोदिनीसे लिपट गई। विनोदिनीने चौंककर कहा, "यह क्या! आज यह क्या गजब हुआ जो चकोरी आज चाँदको छोड़कर मेघके दरबारमें!"

आशाने कहा, "तुम्हारी ये सब काव्य-कविताकी बातें मुझे नहीं आतीं, बहन, क्यों फजलूमें घूरेमें मोती बखेर रही हो! जो तुम्हारी बातका जवाब दे सकता है उसे जाकर सुनाओ न देखूं?"

विनोदिनीने कहा, "आखिर वो रसका रसिक है कौन?"

आशाने कहा, "तुम्हारे देवरजी। नहीं, मजाक नहीं,– वे तुमसे बोलनेके लिए फड़फड़ा रहे हैं।"

विनोदिनी मन-ही-मन बोली, 'स्त्रीके हुकमसे मेरी पुकार हुई है,– और मुझे ऐसा समझ लिया है कि मैं सुनते ही दौड़ी जाऊँगी!' विनोदिनी किसी भी तरह राजी नहीं हुई। और आशाको इससे पतिके आगे नीचा देखना पड़ा।

महेन्द्र भीतर-ही-भीतर क्रुद्ध हो उठा। उसके आगे आनेमें दूसरी तरफसे आपत्ति! उसे औरोंकी तरह साधारण आदमी समझ लिया! उसकी जगह और कोई होता तो अब तक खुद आगे बढ़कर नाना कौशलसे विनोदिनीसे बोल-चाल और मेलजोल कर लेता। महेन्द्रने इसकी कभी कोशिश तक नहीं की। इतने ही से क्या विनोदिनीको उसका परिचय नहीं मिल गया? विनोदिनी यदि एक बार उसे अच्छी तरह जान जाय, तो अन्य पुरुषोंमें और महेन्द्रमें कितना अन्तर है सो अच्छी तरह समझ जाय।

विनोदिनीने भी दो दिन पहले क्रोधके साथ मन-ही-मन कहा था, 'इतने दिनोंसे मैं इस घरमें हूं, महेन्द्र कभी मुझे देखने तककी कोशिश नहीं करता! जब मैं बुआजीके कमरेमें रहती हूं तब किसी बहानेसे वह माके पास भी नहीं आता। आखिर इतनी उपेक्षा, इतनी उदासीनता क्यों? मैं क्या आदमी नहीं, मैं क्या स्त्री नहीं! अगर एक बार भी मेरा परिचय मिल जाता, तो समझ जाता कि उसकी लाड़-प्यारकी चुन्नीमें और विनोदिनीमें क्या अन्तर है!'

आशाने पतिके आगे प्रस्ताव रखा, "आँखकी किरकिरीको मैं यह कहकर

अपने कमरेमें ले आऊंगी कि तुम कालेज चले गये हो और इस बीचमें तुम बाहरसे अचानक आ जाना,– बस, फिर वह अपने-आप काबू हो जायगी।"

महेन्द्रने कहा, "आखिर किस कसूरपर बेचारीको ऐसी कड़ी सजा देना चाहती हो ?"

आशाने कहा, "नहीं, सचमुच ही मुझे उसपर बड़ा गुस्सा आ रहा है। तुमसे मिलनेमें भी उसे अपत्ति ! उसकी प्रतिज्ञा मैं तोड़ूँगी तब छोड़ूँगी।"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारी प्रिय सखीको देखे बिना मैं मरा थोड़े ही जाता हूं। मैं इस तरह चोरी-चोरी नहीं देखना चाहता।"

आशा अनुनयके साथ महेन्द्रका हाथ पकड़कर बोली, "तुम्हें मेरे कण्ठकी सौगन्द, एक दफे तुम्हें मेरी बात माननी ही पड़ेगी। जैसे भी हो, एक बार उसका घमंड चूर करना ही है,– फिर तुम्हारी तबीयत आवे सो करना।"

महेन्द्रने कुछ जवाब नहीं दिया। उसे चुप देखकर आशाने कहा, "तुम्हें मेरे प्यारकी कसम, मेरे प्यारे हो न ! मेरी बात नहीं रक्खोगे ?"

महेन्द्रका भीतरी आग्रह उत्तरोत्तर प्रबल होता जा रहा था। और इसी लिए उसने जरूरतसे ज्यादा उदासीनता दिखाते-हुए मुश्किलसे अपनी सम्मति दे दी।

शरदऋतुके स्वच्छ निस्तब्ध मध्याह्नमें विनोदिनी महेन्द्रके निर्जन कमरेमें बैठी आशाको कारपेटपर कढ़ाईका काम सिखा रही थी और आशा अन्यमनस्क होकर बार-बार दरवाजेकी तरफ देखती-हुई बुनाईमें गलती करके विनोदिनीके आगे अपना असाध्य अपटुत्व प्रकट कर रही थी।

अन्तमें विनोदिनीने झुंझलाकर आशाके हाथसे कार्पेट छीनकर अलग फेंक दिया और कहा, "बस रहने दो, तुमसे न होगा,– मुझे काम है, मैं जाती हूं।"

आशाने कहा, "जरा और बैठो, अबकी देख लो, मैं गलती नहीं करूंगी।" इतना कहकर उसने कार्पेट उठा लिया, और कढाई शुरू कर दी।

इतनेमें चुपकेसे दबे-पांव विनोदिनीके पीछे दरवाजेके पास महेन्द्र आकर खड़ा हो गया। और आशा कारपेटसे निगाह न हटाकर धीरे-धीरे हँसने लगी।

विनोदिनीने कहा, "अचानक हँसीकी कौनसी बात याद आ गई ?"

आशासे रहा नहीं गया। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी, और कारपेट विनोदिनीके ऊपर फेंककर बोल उठी, "नहीं, बहना, तुमने ठीक ही कहा था, मुझसे यह नहीं होनेका।" और फिर विनोदिनीके गलेसे लिपटकर पहलेसे दूने जोरसे हँसने लगी।

विनोदिनी पहलेसे ही सब समझ रही थी। आशाके चाञ्चल्य और हाव-भावसे ही उसने ताड़ लिया था कि कौन पीछे आकर चुपचाप खड़ा हुआ है। उससे कोई बात छिपी नहीं थी। फिर भी निहायत सरल और निरीह बनकर उसने जान-बूझकर आशाके इस अत्यन्त क्षीण जालमें अपनेको फँसा दिया।

महेन्द्रने भीतर घुसकर कहा, "हँसीका कारण जाननेसे मैं ही अभागा क्यों वञ्चित रह जाऊं ?"

विनोदिनी चौंककर माथेका पल्ला सम्हालती-हुई उठना ही चाहती थी कि आशाने उसका हाथ पकड़ लिया।

महेन्द्रने हँसते-हुए कहा, "या तो आप बैठिये, मैं जाता हूं,–या फिर आप भी बैठिये, मैं भी बैठता हूं।"

विनोदिनीने साधारण स्त्रियोंकी तरह आशाके हाथसे अपना हाथ खींचकर कोलाहलके साथ लज्जाकी धूम नहीं मचाई। उसने सहज-स्वाभाविक सुरमें ही कहा, "सिर्फ आपके अनुरोधसे ही बैठती हूं, पर मन-ही-मन आप मुझे श्राप न दीजियेगा।"

महेन्द्रने कहा, "पर ऐसा श्राप तो मैं जरूर दूंगा कि आपमें बहुत देर तक चलनेकी शक्ति न रहे।"

विनोदिनीने कहा, "उस श्रापसे मैं नहीं डरती। कारण आपकी 'बहुत देर' बहुत ज्यादा देर नहीं होगी। और अब तक तो शायद उतनी देर हो भी चुकी होगी।" इतना कहकर उसने फिर उठनेकी कोशिश की। किन्तु आशाने उसका फिर हाथ पकड़ लिया, बोली, "तुम्हें मेरी सौगन्द है, किरकिरी, बैठो जरा।"

१४

आशा महेन्द्रसे पूछने लगी, "सच-सच बताना, मेरी 'आँखकी किरकिरी' तुम्हें कैसी लगी ?"

महेन्द्रने कहा, "बुरी नहीं लगी ।"

आशाने अत्यन्त खिन्न होकर कहा, "तुम्हें तो कोई पसन्द ही नहीं आती ।"

महेन्द्रने कहा, "सिर्फ 'एक'को छोड़कर ।"

आशाने कहा, "अच्छा, उससे जरा और बातें होने दो अच्छी तरह, फिर देखूंगी पसन्द आती है या नहीं !"

महेन्द्रने कहा, "फिर बातें ! अब शायद बराबरके लिए यह सिलसिला जारी हो गया !"

आशाने कहा, "भद्रताके लिहाजसे भी तो आदमीके साथ बात करनी पड़ती है । एक दिनके परिचयके बाद ही अगर बातचीत बन्द कर दोगे तो 'किरकिरी' अपने मनमें क्या समझेगी ? तुम्हारा तो सब-कुछ निराला होता है । और कोई होता तो ऐसी स्त्रीसे बात करनेके लिए खुशामद करता फिरता, और एक तुम हो जो समझते हो कि कहांकी आफत आ पड़ी ।"

अन्य लोगोंकी अपेक्षा अपनेमें इस प्रभेदकी बात सुनकर महेन्द्रको बड़ी खुशी हुई । बोला, "अच्छा तो ठीक है, प्रियतमे ! इसमें इतने चञ्चल होनेकी क्या बात है । मेरे लिए तो भागनेकी तो कोई जगह नहीं, और तुम्हारी सखी भी कहीं भागी नहीं जाती, लिहाजा बीच-बीचमें मिलाप हुआ ही करेगा और मिलाप होनेपर आलाप करनेकी भद्रता भी पालन की जायगी, तुम्हारे पतिमें कमसे कम इतना ज्ञान तो है ही ।"

महेन्द्र मन-ही-मन समझता था कि विनोदिनी अब बराबर किसी-न-किसी बहानेसे उसके सामने आयेगी ही । गलत समझता था बेचारा । विनोदिनी उसके आसपास भी नहीं फटकती, और न कभी कहीं अचानक जाते-आतेमें ही दिखाई देती है ।

महेन्द्र इस डरसे कि कहीं उसकी तरफसे कुछ व्यग्रता न प्रगट हो जाय,

स्त्रीके आगे विनोदिनीका प्रसङ्ग तक नहीं छेड़ सकता। बीच-बीचमें विनोदिनीका सङ्ग पानेके लिए अपनी स्वाभाविक और साधारण इच्छाको छिपाने और दमन करनेमें महेन्द्रकी व्यग्रता मानो उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। उसपर विनोदिनी के उपेक्षा-भावने उसे और भी उत्तेजित कर दिया।

विनोदिनीसे भेंट होनेके दूसरे दिन महेन्द्रने मानो प्रसङ्गवश हँसी-हँसीमें आशासे पूछा था, "अच्छा, तुम्हारा अयोग्य पति तुम्हारी 'आँखकी किरकिरी'को कैसा लगा?"

प्रश्न करनेके पहले ही आशासे इस विषयमें उच्छ्वापूर्ण विस्तृत रिपोर्ट मिलेगी, महेन्द्रको ऐसी दृढ़ प्रत्याशा थी। किन्तु उसके लिए सब्र करनेपर भी जब कोई फल नहीं मिला तब उसने हँसी-हँसीमें यह प्रश्न उठाया था।

आशा बड़ी मुश्किलमें पड़ गई। 'आँखकी किरकिरी'ने तो इस विषयमें कोई बात ही नहीं कही! इससे अपनी सखीपर उसे बहुत झुंझलाहट भी आई थी।

आशाने पतिसे कहा, "ठहरो, पहले दो-चार दिन मिलने-जुलने तो दो, तब तो कहेगी। कलका मिलाप था ही कितनी देरका, और बात ही क्या हुई थी!"

इससे भी महेन्द्र कुछ निराश हुआ और विनोदिनीके सम्बन्धमें निश्चेष्टता दिखाना उसके लिए और भी मुश्किल हो गया।

इस वर्तालापके बीचमें बिहारी आ धमका; और पूछने लगा, "क्या बात है, महेन-भइया, आज तुमलोगोंमें किस बातपर बहस चल रही है?"

महेन्द्रने कहा, "देखो तो, भाई, तुम्हारी भाभीने कुमुदिनी या प्रमोदिनी न-जाने किससे 'मछलीका काँटा' या 'बालोंकी डोरी' क्या-तो सहेला जोड़ा है, और इसीलिए मुझे भी उसके साथ 'चुरुटकी राख' या 'दिआसलाईकी सींक' नामसे कुछ-न-कुछ जोड़ना पड़ेगा! बोलो भला, यह भी कोई बात है!"

आशाके घूंघटके भीतर दाम्पत्य-कलहके मौन बादल गरज उठे; और शायद आँखोंमें बिजली भी चमक उठी हो तो आश्चर्य नहीं। बिहारी क्षण-भर चुपचाप खड़ा महेन्द्रके मुंहकी तरफ देखता रहा, फिर हँसकर बोला, "भाभी,

लक्षण अच्छे नहीं दिखाई देते ! ये सब तुम्हें बहलानेकी बातें हैं। तुम्हारी 'आँखकी किरकिरी'को मैंने देखा है। और, और-भी जरा जल्दी-जल्दी देख सकूं तो उसे मैं हादसा, मेरा मतलब दुर्घटना, नहीं समझूंगा,– यह मैं शपथ-पूर्वक कहता हूं। किन्तु, महेन-भइया जब कि इतने आड़म्बरके साथ साफ़ इनकार कर रहे हैं, तो, यह तो बड़े सन्देहकी बात मालूम होती है।"

महेन्द्र और बिहारीमें बहुत ज्यादा अन्तर है – आशाको इस बातका और एक प्रमाण मिल गया।

अकस्मात् महेन्द्रको फोटोग्राफी सीखनेका शौक चर्रा उठा। पहले उसने एक बार फोटोग्राफी सीखना शुरू करके छोड़ दिया था। अब फिर कैमरेकी मरम्मत कराके फोटो उतारना शुरू कर दिया। घरके नौकर-चाकर तक सबकी तसवीरें खींचने लगा।

आशा जिद कर बैठी, "तुम्हें 'किरकिरी'की एक तसवीर खींचनी होगी।"

महेन्द्रने अत्यन्त संक्षेपमें कह दिया, "अच्छा।"

किन्तु 'आँखकी किरकिरी'ने उससे भी संक्षेपमें कह दिया, "ना।"

आशाको फिर एक कौशल रचना पड़ा, और वह शुरूसे ही विनोदिनीसे छिपा न रहा।

तय हुआ कि दोपहरको आशा उसे अपने सोनेके कमरेमें ले आयेगी और वहीं किसी कदर सुला लेगी; और फिर महेन्द्र चुपकेसे आकर उसी अवस्थामें उसकी तसवीर उतार लेगा। इस तरह आशा अपनी जिद्दिन सहेलीकी सारी हेकड़ी धूलमें मिला देगी।

आश्चर्यकी बात तो यह है कि विनोदिनी कभी दिनमें सोती नहीं, किन्तु आशाके कमरेमें आकर उस दिन उसकी आँखोंमें नींद भर आई। बदनपर एक लाल दुशाला डालकर खुली खिड़कीकी तरफ मुंह करके वह हाथोंपर सिर रखकर ऐसे सुन्दर ढंगसे सो गई कि देखते ही महेन्द्रको कहना पड़ा कि 'मालूम होता है, मानो फोटो खिचवानेके लिए जान-बूझकर तैयार होकर ही सोई है।'

महेन्द्रने दबे-पाँव चुपकेसे कैमेरा निकाल लिया। किस तरफसे फोटो लेनेसे अच्छा होगा – यह तय करनेके लिए पहले तो वह चारों तरफसे बहुत

देर तक उसे अच्छी तरह देखता रहा। फिर आर्टके लिहाजसे उसे दवे-पांव सिरहानेके पास जाकर उसके खुले-हुए बालोंको जरा इधर-उधर कर देना पड़ा, और पसन्द न आनेपर फिर उसमें संशोधन कर लेना पड़ा। वह आशाके कानमें बोला, "पैरोंके पास दुशालेको जरा बाईं तरफ हटा दो।"

अपटु आशाने चुपकेसे कानमें कहा, "मुझसे ठीक करते नहीं बनेगा,—मैं नींद और छुटा दूंगी, तुम्हीं हटा दो।" महेन्द्रने हटा दिया।

अन्तमें फोटो उतारनेके लिए महेन्द्रने ज्योंही कैमेरामें कांच डाला त्योंही मानो किसी शब्दसे विनोदिनी जागकर हिल उठी और एक दीर्घनिश्वास लेकर भड़भड़ाकर उठ बैठी। आशा जोरसे हँस पड़ी। विनोदिनी बहुत नाराज हुई और अपने ज्योतिर्मय नेत्रोंसे महेन्द्रपर अग्निवाण बरसाती-हुई बोली, "यह आपका बड़ा अन्याय है!"

महेन्द्रने कहा, "अन्याय है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु चोरी भी की और चोरीका माल भी हाथ न आया,—'गुनाह और बेलज्जत' होनेसे मेरा तो इहलोक और परलोक दोनों ही बिगड़ गया। लिहाजा, अन्यायको पूरा कर लेने दीजिये, फिर आप जो चाहें सो दण्ड दे सकती हैं।"

आशा भी विनोदिनीके पीछे पड़ गई। तसवीर उतारी गई। किन्तु पहली तसवीर खराब हो गई। लिहाजा, चित्रकारको दूसरे दिन और-एक तसवीर बगैर उतारे चैन नहीं पड़ा। उसके बाद दोनों सखियोंको एकसाथ बिठाकर सखीत्वके चिर-निदर्शन-स्वरूप और-एक फोटो उतरवानेमें विनोदिनी 'ना' नहीं कह सकी। बोली, "लेकिन यही आखिरी फोटो है!"

सुनते ही महेन्द्रने उस प्लेटको बिगाड़ दिया। इस प्रकार फोटो खींचते-खिचवाते मेल-मिलाप बहुत दूर अग्रसर हो गया।

१५

बाहरसे हिलाते-डुलाते रहनेसे राखमें दबी आग फिर जल उठती है। नव-दम्पतिका प्रेमोत्साह इधर जो-कुछ थोड़ा-बहुत म्लान होता आ रहा था, तृतीय पक्षकी चोट खाकर वह फिर जाग उठा।

आशामें हास्यालाप करनेकी शक्ति नहीं थी, किन्तु विनोदिनी इस दिशामें पर्याप्त खुराक दे सकती थी, इसलिए विनोदनीके अन्तरालमें आशाको एक जबरदस्त आश्रय मिल गया। महेन्द्रको हरवक्त आमोद-प्रमोदकी उत्तेजनासे ताजा बनाये रखनेमें आशाको अब विशेष उद्यम नहीं करना पड़ता।

ब्याहके बाद कुछ ही दिनोंमें महेन्द्र और आशा दोनोंने एक दूसरेके प्रति अपनेको निःशेष कर डालनेका डौल कर लिया था,— इनका प्रेमका सङ्गीत एकदम उच्चस्वरमें निखादसे ही शुरू हुआ था, ब्याज न खाकर इनलोगोंने मूलधनको ही खतम करनेकी ठान ली थी। आखिर इस पागलपनकी बाढ़को ये लोग अपने रोजमर्राकी गृहस्थीके स्रोतमें कैसे परिणत करते? नशा करनेके बाद ही बीचमें जो अवसाद आता है उसे दूर करनेके लिए आदमी फिर जो नशा चाहता है, वह नशा आशा कहाँसे जुटावे? इतनेमें विनोदिनीने नशेका एक नया और रंगीन प्याला भरकर आशाके हाथमें दे दिया। और इससे अपने प्रियतमको प्रसन्न-प्रफुल्ल देखकर आशाको भी आराम मिला।

अब उसे अपनी तरफसे चेष्टा करनेकी जरूरत नहीं रही। महेन्द्र और विनोदिनी दोनों जब उपहास-परिहास करते, आशा तब उनकी हँसीमें शामिल हो जाती; और जी खोलकर खूब हँसती रहती। ताशके खेलमें महेन्द्र जब आशाको बुरी तरह धोखा देता तब वह विनोदिनीको पंच मानकर सकरुण अभियोगकी अवतारणा करती। और महेन्द्र जब आशासे कोई मजाक या असङ्गत कोई बात कर बैठता तो आशा इसी प्रत्याशामें रहती कि विनोदिनी उसकी तरफसे समुचित उत्तर देकर उसकी बात रख ले। इस तरह इन तीनोंकी सभा रोज जमने लगी।

किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि विनोदिनीके काममें किसी तरहकी शिथिलता आ गई हो। रसोई-पानी, घरका और-सब काम-काज, राजलक्ष्मीकी सेवा, सब-कुछ पूरी तरह कर चुकनेके बाद तब कहीं वह इस आमोद-प्रमोदमें शामिल होती थी।

महेन्द्र अस्थिर होकर कहता, "नौकर-नौकरानियोंसे काम न लेकर तुम उन्हें मिट्टी कर दोगी मालूम होता है।"

विनोदिनी कहती, "काम न करके खुद मिट्टी होनेकी अपेक्षा यह अच्छा है। जाओ, तुम कालेज जाओ।"

महेन्द्र कहता, "आज बदलीके दिन—"

विनोदिनी कहती, "सो नहीं होगा, गाड़ी तैयार है, तुम्हें जाना ही होगा।"

महेन्द्र कहता, "मैंने तो गाड़ीकी मनाही कर दी थी।"

"मैंने कह दिया था।"—कहते-हुए विनोदिनी महेन्द्रके कालेज जानेके कपड़े उठा लाती।

महेन्द्र कहता, "तुम्हें तो राजपूतोंके घर जन्म लेना था। युद्ध-यात्राके समय पतिको अपने हाथसे कवच पहन।कर विदा करतीं।"

आमोद-प्रमोदके प्रलोभनमें कालेजसे छुट्टी लेना या पढ़नेसे जी चुराना विनोदिनीको कतई बरदाश्त न था, इन सब बातोंमें कभी भी वह शह नहीं देती। उसके कठिन शासनसे दिन-दोपहरका आमोद-प्रमोद बिलकुल उठ गया, और इस तरह सायंकालका अवकाश महेन्द्रके लिए अत्यन्त रमणीय और लोभनीय हो उठा। उसका दिन मानो अपने अवसानके लिए प्रतीक्षा-सा करता रहता।

पहले कभी-कभी ठीक समयपर रसोई नहीं बनती थी, और इस बहानेसे महेन्द्र बड़े मजेसे कालेज जानेसे रुक जाता था। किन्तु अब विनोदिनी स्वयं व्यवस्था करके महेन्द्रके लिए कालेजके समयसे बहुत पहले ही रसोई तैयार करा देती है, और ज्योंही वह खा चुकता है त्योंही उसके पास खबर पहुंचती है कि 'गाड़ी तैयार है।' पहले उसके कपड़ोंका यह हाल था कि कौनसा धोबीके यहाँ गया है और कौनसा किस अलमारीके किस कोनेमें पड़ा है, बहुत देर तक इस बातका पता ही न लगता था। और अब सब कपड़े बाकायदा तैयार मिलते हैं, किसीमें जरा सिकुड़न तक देखनेको नहीं मिलती।

शुरू-शुरूमें विनोदिनी इन सब विशृङ्खलाओंके लिए महेन्द्रके सामने आशाको हँसी-हँसीमें डाट दिया करती थी, और महेन्द्र भी आशाके इस निरुपाय अपटुत्वपर स्नेहसे हँस दिया करता था। अन्तमें सखीत्वके वात्सल्यमें आकर विनोदिनीने आशाका कर्तव्य-भार उसके हाथसे छीनकर अपने हाथमें ले लिया। घरका रूप ही बदल गया!

अचकनका कोई बटन टूट गया है, आशासे कुछ करते नहीं बन रहा। विनोदिनी जल्दीसे आकर हतबुद्धि आशाके हाथसे अचकन छीनकर चटसे उसमें बटन टांक देती। एक दिन महेन्द्रके लिए रखे-हुए भोजनमें बिल्लीने आकर मुँह डाल दिया, आशा सोचके मारे व्याकुल हो गई, इतनेमें विनोदिनीने रसोईमें जाकर न-जाने कैसे क्या-क्या खटराग किया कि उस दिनका काम चल गया, और आशा आश्चर्यसे दंग रह गई।

इस तरह महेन्द्र खाने-पीनेमें पहनने-ओढ़नेमें काम और विश्राममें सर्वत्र ही नाना रूपमें विनोदिनीके हाथकी सेवाका अनुभव करने लगा। विनोदिनीके बनाये-हुए पशमी जूते उसके पाँवोंमें और विनोदिनीके हाथका बुन-हुआ ऊनी गुलबन्द उसके गलेमें मानो कोमल मानसिक संस्पर्शके समान लिपटा-हुआ है। आशा आजकल सखीके हाथके प्रसाधनसे सुन्दर ढंगसे सजधजकर और सुगन्ध लगाकर महेन्द्रके पास पहुंचती है। उसमें मानो कुछ तो आशाका अपना होता और कुछ और-एक जनीका,— अपने साज-सिंगार और सौन्दर्य-आनन्दमें गङ्गा-यमुनाके समान मानो वह अपनी सखीके साथ एकमेक हो गई हो।

बिहारीका आजकल पहले जैसा आदर नहीं रहा,— उसे अब कोई बुलाता ही नहीं। बिहारीने महेन्द्रको लिख भेजा था कि 'कल रविवार है, दोपहको आकर मैं माके हाथकी रसोई खाऊँगा।' महेन्द्रने देखा कि रविवार बिलकुल मिट्टी हो जायगा। चटसे उसने लिख भेजा, 'रविवारको एक खास कामसे मुझे बाहर जाना है।'

फिर भी बिहारी खाने-पीनेके बाद एक बार महेन्द्रकी घरकी खबर लेने चला आया। नौकरसे पता चला कि महेन्द्र घरमें ही है, बाहर नहीं गया। जीनेसे ही 'महेन्द्र-भइया' पुकारता-हुआ वह महेन्द्रके कमरेमें पहुंच गया। महेन्द्र झेंप गया, बोला, "सिरमें बड़े जोरका दर्द हो रहा है।" और तकियेके सहारे लेट गया। आशा इस बातको सुनकर और महेन्द्रके चेहरेपर बेचैनीका भाव देखकर घबरा उठी; सोचने लगी, क्या करना चाहिए। और कर्तव्य-निर्णयके लिए विनोदिनीका मुँह ताकने लगी।

विनोदि अच्छी तरह जानती थी कि मामला चिन्ताजनक नहीं है, फिर भी अत्यन्त उद्विग्न होकर बोली, "बहुत देरसे बैठे हो, जरा सो जाओ। मैं 'ओडिकोलोन' लिये आती हूं।"

महेन्द्रने कहा, "रहने दो, जरूरत नहीं।"

विनोदिनी नहीं मानी, जल्दीसे जाकर 'ओडिकोलोन' और बरफ-पानी मिलाकर ले आई, और आशाके हाथमें भीगा-हुआ रूमाल थमाकर बोली, "लो, महेन्द्र-बाबूके माथेसे बाँध दो।"

महेन्द्र बार-बार कहता रहा, 'रहने दो न! रहने दो न!' और बिहारी किसी तरह हँसी रोककर चुपचाप बैठा अभिनय देखने लगा। महेन्द्र गर्वके साथ सोचने लगा, 'बिहारी जरा देखे तो, मेरी कितनी कदर है!'

आशा बिहारीके सामने लज्जा-कम्पित हाथोंसे अच्छी तरह पट्टी नहीं रख सकी, ओडिकोलोनकी बूंद लुढ़ककर महेन्द्रकी आँखमें गिर पड़ी। विनोदिनीने आशाके हाथसे रूमाल छीनकर अपने निपुण हाथोंसे सावधानीसे पट्टी बाँध दी, और दूसरा एक कपड़ा 'ओडिकोलोन' के पानीमें भिगोकर थोड़ा-थोड़ा पट्टीपर निचोड़ दिया। आशा घूँघटको और भी जरा नीचा करके पंखेसे हवा करने लगी।

विनोदिनीने स्निग्ध कण्ठसे पूछा, "कुछ आराम मिल रहा है?"

इस तरह अपने कण्ठस्वरमें मधु उँड़ेलकर विनोदिनीने कनखियोंसे एक बार बिहारीके मुँहकी तरफ देख लिया। देखा, बिहारीकी आँखें कौतुकसे हँस रही हैं। सारा मामला उसके लिए प्रहसन है। विनोदिनीने समझ लिया कि इस आदमीको भरमाना आसान नहीं,—कुछ भी इसकी नजरोंसे छिपाया नहीं जा सकता।

बिहारीने हँसते-हुए कहा, "विनोदा-भाभी, इस तरहकी सेवा-शुश्रूषा मिलती रही तो रोग घटेगा नहीं, बल्कि बढ़नेकी ही ज्यादा सम्भावना है।"

विनोदिनीने कहा, "सो भला हम मूरख स्त्रियाँ क्या जानें! आपलोगोंके डाक्टरी-शास्त्रमें शायद ऐसा ही लिखा होगा!"

बिहारीने कहा, "हाँ, सो तो है ही। सेवा देखकर मेरे सिरमें भी दर्द

शुरू हो रहा है। लेकिन मेरे जैसे जले-भुने माथेको बिना इलाजके चटपट अच्छा हो जाना पड़ता है। महेन-भइयाके माथेमें जोर ज्यादा है।"

विनोदिनीने भीगी-हुई पट्टीको उतारते-हुए कहा, "जरूरत क्या है मुझे, मित्रका इलाज मित्र ही करें।"

बिहारी रंगढंग देखकर भीतर-ही-भीतर झुँझला उठा था। इधर कई दिन वह अध्ययनमें व्यस्त था, इस बीचमें महेन्द्र विनोदिनी और आशाने मिलकर अपने-आप इतनी उलझन पैदा कर ली है, यह उसे नहीं मालूम था। आज उसने विनोदिनीको विशेष-रूपसे देखा, और विनोदिनीने भी उसे अच्छी तरह देख लिया।

बिहारी कुछ तीक्ष्ण स्वरमें बोल उठा, "ठीक बात है। मित्रका इलाज मित्र ही करेगा। मैं ही सिर-दर्द लाया था, मैं ही उसे साथ लेता जाऊँगा। 'ओडिकोलोन' का अब फजूलखर्च मत कीजिये।" और फिर आशाकी ओर देखकर बोला, "भाभी, इलाज करके बीमारी अच्छी करनेकी अपेक्षा बीमारी न होने देना ही अच्छा है।"

१६

बिहारीने सोचा, 'अब दूर रहनेसे काम नहीं चलेगा ; जैसे भी हो, इनके बीचमें मुझे भी एक स्थान लेना पड़ेगा। इनमेंसे कोई भी मुझे नहीं चाहेगा, किन्तु फिर भी मुझे रहना ही पड़ेगा।'

बिहारी आह्वान-अभ्यर्थनाकी परवाह किये बिना ही महेन्द्रके व्यूहमें प्रवेश करने लगा। एक दिन विनोदिनीसे बोला, "देखो, विनोदा-भाभी, इस लड़केको पहले तो इसकी माने मिट्टी किया, फिर मित्रने मिट्टी किया, अब स्त्री मिट्टी कर रही है,– कमसे कम तुम तो उस गुटमें न मिलकर कोई नया रास्ता दिखाओ, दुहाई है तुम्हें!"

महेन्द्रने कहा, "मतलब?"

बिहारी बोला, "मतलब यह कि मुझ जैसे आदमीको, जिसे कोई कभी पूछता तक नहीं –"

महेन्द्र बीचमें ही बोल उठा, "उसे भले ही मिट्टी कर दो ! अरे, मिट्टी होनेकी उम्मेदवारी इतनी आसान नहीं, भई, इतनी आसान नहीं ! दरखास्त पेश कर देनेसे ही काम नहीं बन जाता ।"

विनोदिनीने हँसते-हुए कहा, "मिट्टी होने-लायक शक्ति भी तो चाहिए, बिहारी-बाबू !"

बिहारीने कहा, "शक्ति तो, भाभीजी, अपने गुणसे न हो तो और-किसीके हाथके गुणसे भी आ जाती है। एक बार शह देकर आजमाना चाहो तो आजमा सकती हो,—बन्दा तैयार है ।"

विनोदिनीने कहा, "पहलेसे तैयार होकर आनेसे कुछ नहीं होता, बिहारी बाबू, असावधान रहना पड़ता है। क्यों बहन किरकिरी, ठीक है न ? अपने इन देवरका भार तुम्हीं ले लो न अपने ऊपर !" आशाने उसे उंगलियोंसे धक्का देकर जरा ढकेल दिया। बिहारीने भी इस मजाकमें भाग नहीं लिया।

आशाके सम्बन्धमें कोई भी मजाक बिहारीको सहन नहीं होगा—इतना विनोदिनी जानती थी। किन्तु बिहारी आशाकी श्रद्धा करता है और विनोदिनीको हलका करना चाहता है—यह बात विनोदिनीके चुभ गई। उसने फिर आशासे कहा, "तुम्हारा यह भिक्षुक देवर मेरी आड़में तुम्हींसे कुछ चाहता है। कुछ दे भी दो, किरकिरी !"

आशा बहुत ही झुँझला उठी। क्षण-भरके लिए बिहारीका चेहरा सुर्ख हो उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण उसने मुसकराते-हुए कहा, "यह खूब रहा, मेरी पारी आती है तो दूसरोंपर टाल दी जाती है, और महेन-भइयाके साथ हाथों हाथ नगद कारबार, क्यों !"

विनोदिनी समझ गई कि बिहारी सब मिट्टी करने ही आया है, और सोचने लगी, 'बिहारीके सामने हमेशा सशस्त्र ही रहना होगा।'

महेन्द्रको भी झुँझलाहट आ गई। उसका खयाल है कि खुलासा बातोंसे कवित्वका माधुर्य ही नष्ट हो जाता है। उसने जरा-कुछ तीव्र स्वरमें ही कहा, "बिहारी, तुम्हारे महेन-भइया और-किसी कारबारमें नहीं पड़ते,—जो उनके हाथमें है उसीमें वे सन्तुष्ट हैं।"

बिहारीने कहा, "हो सकता है वे अपने-आप न पड़ते हों, किन्तु भाग्यमें लिखा रहता है तो कारबारकी लहर बाहरसे आकर भी लगती है।"

विनोदिनी कह उठी, "फिलहाल आपके हाथमें तो कुछ भी नहीं, फिर आपकी लहर किधरसे आ रही है?" इतना कहकर उसने कटाक्षके साथ हँसकर आशाकी बाँह मसक दी। आशा झुँझलाकर उठके चल दी। बिहारी पराजित होकर मारे क्रोधके चुप रह गया ; और ज्योंही वह उठके जानेको उद्यत हुआ, विनोदिनी चटसे कह बैठी, "हताश होकर न जाइये, बिहारी-बाबू, मैं 'किरकिरी' को अभी भेजे देती हूं।"

विनोदिनीके चले जाते ही, सभा-भङ्गके क्षोभसे, महेन्द्र भीतर-ही-भीतर बहुत झुंझला उठा। और उसका अप्रसन्न चेहरा देखकर बिहारीका रुका-हुआ आवेग उच्छ्वसित हो उठा। उसने कहा, "महेन-भइया, तुम अपना सर्वनाश करना चाहो, करो, तुम्हारी हमेशाकी आदत पड़ी-हुई है। किन्तु जो सरलहृदया साध्वी तुमपर एकान्त-विश्वासके साथ निर्भर है, उसका सर्वनाश मत करो। अब भी मैं कहता हूं, उसका सर्वनाश मत करो।" कहते-कहते बिहारीका कण्ठ रुक आया।

महेन्द्र भीतरी क्रोधको रोकता-हुआ बोला, "सुनो बिहारी, तुम्हारी ये सब बातें मेरी कुछ समझमें नहीं आ रही हैं। पहेलियाँ छोड़कर तुम साफ-साफ कहो, क्या कहना चाहते हो?"

बिहारीने कहा, "साफ-साफ ही कहूंगा। विनोदिनी तुम्हें जान-बूझकर अधर्मकी ओर खींच रही है और तुम बिना सोचे-समझे मूढ़की तरह उधर पैर बढ़ाते चले जा रहे हो।"

महेन्द्र गरज उठा, "बिलकुल झूठ बात है। तुम अगर किसी भले घरकी बहू-बेटीको इस तरह सन्देहकी दृष्टिसे देखते हो तो अन्तःपुरमें तुम्हारा आना ही उचित नहीं।"

इतनेमें एक थालीमें कई तरहकी मिठाइयाँ लिये मुसकुराती-हुई विनोदिनीने प्रवेश किया, और थाली बिहारीके सामने रख दी। बिहारी कह उठा, "यह क्या! मुझे बिलकुल भूख नहीं।"

विनोदिनीने कहा, "यह कैसे हो सकता है ! आपको जरा मीठा मुँह करके ही जाना होगा।"

बिहारीने हँसते-हुए कहा, "मेरी दरखास्त मंजूर हो गई मालूम होता है। समादर शुरू हो गया !"

विनोदिनी बहुत ही दबी हँसी हँसकर बोली, "आप जब कि देवर ठहरे, तो नातेका जोर तो है ही। जहाँ जोर चल सकता है वहाँ भिक्षा माँगनेकी क्या जरूरत ? आप तो आदर-लाड़ छीनके भी ले सकते हैं ! क्यों महेन्द्र बाबू, ठीक है न ?"

महेन्द्र-बाबूके मुँहसे तब मारे क्रोधके बात ही नहीं निकल रही थी।

विनोदिनी बोली, "क्यों बिहारी-बाबू, आप शरमाकर नहीं खा रहे हैं या गुस्सेमें ? और किसीको बुलाना पड़ेगा क्या ?"

बिहारीने कहा, "कोई जरूरत नहीं। जो मिला है मुझे, मेरे लिए वही काफी है।"

विनोदिनीने कहा, "फिर मजाक ! मजाकमें तो आपसे जीतना ही मुश्किल है। मिठाई देनेपर भी मुँह बन्द नहीं होता।"

रातको आशाने महेन्द्रके आगे बिहारीके प्रति अपनी नाराजगी प्रकट की, और महेन्द्रने और-और दिनकी तरह उसे हँसीमें उड़ा नहीं दिया, उसमें पूरी तरह भाग लिया।

सवेरे उठते ही महेन्द्र बिहारीके घर पहुंचा। बोला, "बिहारी, हजार हो, पर विनोदिनी अपने घरकी स्त्री नहीं, तुम सामने पड़ते हो तो उसे कुछ बुरा-सा लगता है।"

बिहारीने कहा, "अच्छा, यह बात है क्या ! तब तो मैंने अच्छा नहीं किया। उन्हें अगर आपत्ति है तो मुझे क्या गर्ज अटकी है कि मैं उनके सामने जाऊँ !"

महेन्द्र निश्चिन्त हुआ। इतनी आसानीसे इतना अप्रिय-कार्य सम्पन्न हो जायगा, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। बिहारीसे महेन्द्र डरता है।

उसी दिन बिहारी महेन्द्रके अन्तःपुरमें जाकर विनोदिनीसे कहने लगा, "विनोदा-भाभी, मुझे क्षमा कीजियेगा।"

विनोदिनी बोली, "क्यों बिहारी-बाबू, आज क्या बात है ?"

बिहारीने कहा, "महेन्द्रसे सुना है कि अन्तःपुरमें आकर मैं आपके सामने आता हूं, इससे आप नाराज होती हैं। इसीसे क्षमा माँगकर आपसे मैं विदा लेना चाहता हूं।"

विनोदिनीने कहा, "भला यह कैसे हो सकता है, बिहारी-बाबू ! मैं आज हूं, कल नहीं रहूंगी,– मेरे लिए आप क्यों विदा लेने लगे ! अगर मैं यह जानती कि यहां आनेसे इतना बखेड़ा उठ खड़ा होगा तो आती ही नहीं।" कहते-कहते विनोदिनीका मुँह उतर गया, और वह आँसू रोकनेके लिए तुरत वहाँसे चली गई।

बिहारी क्षण-भरके लिए यह सोचकर दुःखित हुआ कि 'झूठा सन्देह करके मैंने विनोदिनीको व्यर्थ ही चोट पहुंचाई।'

उस दिन शामको राजलक्ष्मी बिपदाकी मारी-सी आकर बेटेसे बोलीं, "महेन, विपिनकी बहू तो देश जानेके लिए जिद कर रही है !"

महेन्द्रने कहा, "क्यों मा, यहाँ उन्हें क्या कोई तकलीफ है ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "तकलीफ कुछ नहीं। उसका कहना है, ऐसी उमरमें विधवा बहू-बेटीका पराये घर ज्यादा दिन टिका रहना ठीक नहीं, लोकनिन्दाका डर है।"

महेन्द्रने क्षुब्ध होकर कहा, "अब यह 'पराया-घर' हो गया ?"

बिहारी वहीं बैठा था। महेन्द्रने उसकी तरफ तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा, और चुप हो रहा।

अनुतप्त बिहारी सोचने लगा, 'कलकी मेरी बातचीतमें शायद कुछ निन्दा का आभास था, विनोदिनीको शायद उसीसे चोट पहुंची होगी।'

पति-पत्नी दोनोंके दोनों विनोदिनीसे रूठ गये। एकने कहा, "हमें गैर समझती हो, बहन ?" दूसरेने कहा, "अब यह 'पराया-घर' हो गया !"

विनोदिनीने कहा, "मुझे क्या तुमलोग हमेशा ही बाँध रक्खोगे ?"

महेन्द्रने कहा, "इतना हममें दम कहाँ ?"

आशाने कहा, "जाना ही था तो इस तरह हमलोगोंसे मोह क्यों जोड़ा था, भाइली इसीलिए बनी थीं क्या ?"

उस दिन कुछ भी निर्णय नहीं हुआ।

विनोदिनीने कहा, "नहीं, बहन, जरूरत नहीं, दो दिनके लिए ममता न बढ़ाना ही अच्छा है।" कहते-हुए उसने व्याकुल दृष्टिसे एक बार महेन्द्रके मुँहकी ओर देख लिया।

दूसरे दिन बिहारीने आकर कहा, "विनोदा-भाभी, जानेकी बात क्यों सोच रही हो ? कोई कसूर बन पड़ा है क्या,– उसीका दण्ड दे रही हो ?"

विनोदिनीने मुँह फेरकर कहा, "कसूर आप क्यों करने लगे ! कसूर तो मेरी तकदीरका है।"

बिहारीने कहा, "आप अगर चली जायेंगी तो मुझे बराबर यही खयाल आता रहेगा कि आप मुझ ही पर नाराज होकर चली गई हैं।"

विनोदिनीने अपनी करुण दृष्टिसे बिनती-सी प्रकट करते-हुए बिहारीके मुँहकी तरफ देखकर कहा, "मेरा रहना क्या उचित है, आप ही बताइये न ?"

बिहारी बड़े असमंजसमें पड़ गया। यह वह कैसे कहे कि रहना उचित है ? उसने कहा, "आखिर जाना तो आपको पड़ेगा ही,– मेरा कहना था कि कुछ दिन और रह जायें तो हर्ज क्या है ?"

विनोदिनीने आँखें नीची करके कहा, "आप सब-के-सब मुझसे रहनेको कह रहे हैं, आपलोगोंकी बात टालना भी तो मेरे लिए कठिन है,– लेकिन यह अच्छी बात नहीं।" कहते-कहते उसके घने-लम्बे पलकोंके भीतरसे आँसूकी मोटी-मोटी बूँद बड़ी तेजीसे ढलकने लगीं।

बिहारी इस नीरव अश्रु-प्रवाहसे व्याकुल हो उठा, बोला, "कुछ ही दिनोंमें आपने अपने गुणोंसे सबको वश कर लिया है, इसीसे आपको कोई छोड़ना नहीं चाहता। कुछ खयाल न कीजियेगा। भला आप जैसी लक्ष्मीकी प्रतिमाको अपनी इच्छासे कौन विदा कर सकता है ?"

आशा एक कोनेमें घूंघट काढ़े बैठी थी, वह आँचलसे बार-बार अपनी आँखें पोंछने लगी। इसके बाद फिर विनोदिनीने जानेकी बात नहीं चलाई।

१७

बीचकी इस गड़बड़ीको बिलकुल पोंछकर मिटा देनेके लिए महेन्द्रने प्रस्ताव किया, "अगले रविवारको दमदमके बगीचेमें 'पिकनिक' करने चला जाय।"

आशा अत्यन्त उत्साहित हो उठी। किन्तु विनोदिनी किसी भी तरह राजी नहीं हुई। विनोदिनीकी इस आपत्तिपर महेन्द्र और आशा दोनोंके दोनों मुरझा-से गये। उनलोगोंने समझा, विनोदिनी आजकल उनसे दूर-दूर रहना चाहती है।

शामको बिहारीके आते ही विनोदिनीने उससे कहा, "देखिये तो, बिहारी बाबू, महेन्द्र-बाबू दमदमके बगीचेमें 'पिकनिक' करने जायेंगे, उसमें मैं साथ नहीं जाना चाहती, सो दोनों-के-दोनों आज सवेरेसे मुझसे मुँह फुलाये बैठे हैं"।

बिहारीने कहा, "मुँह फुलाना बेजा तो नहीं मालूम होता। आप नहीं जायेंगी तो इनकी 'पिकनिक' में ऐसा काण्ड होगा जो दुश्मनके भी न हो।"

विनोदिनीने कहा, "तो फिर आप भी चलिये। आप चलें तो मैं भी चलनेको तैयार हूं।"

बिहारीने कहा, "अच्छी बात है। किन्तु 'कर्ता'के पीछे 'कर्म' होता है, घरके कर्ताकी क्या राय है?"

बिहारीके प्रति विनोदिनीके इस विशेष पक्षपातसे मालिक और मालिकिन दोनों ही मन-ही-मन खिन्न हुए। बिहारीको साथ लेनेके प्रस्तावसे महेन्द्रका आधा उत्साह काफूर हो गया। महेन्द्रकी हमेशा यह कोशिश रहती कि किसी भी तरह बिहारीके मनमें यह बात बैठ जाय कि उसकी उपस्थिति विनोदिनीके लिए सर्वदा ही अप्रिय है। किन्तु आजकी घटनामें उसने देखा कि अब तो बिहारीको रोकना उसके लिए असाध्य है।

महेन्द्रने कहा, "अच्छा तो है, अच्छा रहेगा! लेकिन, बिहारी, तुम जहाँ भी जाते हो वहाँ कुछ-न-कुछ बखेड़ा खड़ा किये बगैर नहीं मानते। तुम्हारा कोई ठीक नहीं,—कुछ-नहीं-तो मुहल्ले-भरके लड़के ही इकट्ठे कर लाओगे, या किसी गोरेसे लड़ पड़ोगे! कुछ कहा नहीं जा सकता।"

बिहारी महेन्द्रकी आन्तरिक अनिच्छाको समझकर मन - ही - मन हँसने लगा, बोला, "यही तो संसारका मजा है! क्यासे क्या हो जाता है, और कब कहाँ कौन-सा बखेड़ा उठ खड़ा होता है, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अच्छा तो, विनोदा-भाभी, खूब सवेरे ही चलना होगा,– मैं ठीक समयपर आ जाऊंगा।"

रविवारको सवेरे ही चीज-वस्त और नौकर-चाकरोंके लिए एक थर्ड-क्लास और मालिकोंके लिए एक सेकेण्ड-क्लास किरायेकी घोड़ा-गाड़ी लाई गई। बिहारी भी बड़ा-सा एक पैक-बक्स साथ लिये ठीक समयपर आ गया। महेन्द्रने कहा, "यह तुम क्या ले आये! सामानकी गाड़ीमें तो यह अमायेगा नहीं।"

बिहारीने कहा, "तुम चिन्ता न करो, भाई साहब, मैं अभी सब ठीक किये देता हूं।"

विनोदिनी और आशा गाड़ीमें बैठ गईं। अब महेन्द्रको चिन्ता हुई कि बिहारीको कहाँ बिठाया जाय। वह बगलें झांकने लगा। बिहारीने अपनी पेटी गाड़ीकी छतपर लाद दी, और चटसे वह कोचबक्सपर बैठ गया।

महेन्द्रके लिए यह 'जान बची और लाखों पाये' साबित हुआ, वह सोच रहा था, 'बिहारी भीतर बैठेगा या क्या करेगा, कोई ठीक नहीं!'

विनोदिनी घबराहटके साथ कहने लगी, "बिहारी-बाबू, आप कहीं गिर तो नहीं जाइयेगा?"

बिहारीने कहा, "आप निश्चिन्त रहिये, डरिये नहीं,– पतन और मूर्छा दोनों ही मेरी जन्मपत्रीमें नहीं हैं।"

गाड़ी चलते ही महेन्द्रने कहा, "न-हो-तो मैं ही ऊपर जाकर बैठूँ, बिहारीको भीतर भेज दूं?"

आशाने घबराकर उसकी चादर पकड़ते-हुए कहा, "नहीं नहीं, तुम नहीं जा सकते।"

विनोदिनीने कहा, "आपको आदत नहीं, फिर क्या जरूरत है, गिर-गिरा गये तो मुश्किल होगी।"

महेन्द्रने उत्तेजित होकर कहा, "मैं गिर पड़ूँगा !" कहनेके साथ ही वह ऊपर जानेको उद्यत हो उठा।

विनोदिनीने कहा, "आप बिहारी-बाबूको दोष देते हैं, पर मैं तो देख रही हूं, आप ही बखेड़ा खड़ा करनेमें अद्वितीय हैं !"

महेन्द्र मुँह फुलाकर बोला, "अच्छा, एक काम किया जाय,—मैं दूसरी एक गाड़ी मँगाकर उसमें चला जाता हूं, इसमें बिहारी चला जायगा।"

आशाने कहा, "ऐसा हो तो फिर मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।"

विनोदिनीने कहा, "और मैं क्या गाड़ीसे कूद पड़ूँगी !"

इस तरह बात यहीं खतम हो गई।

महेन्द्र रास्ते-भर अत्यन्त गम्भीर मुँह बनाये बैठा रहा।

गाड़ी यथासमय दमदमके बगीचेमें पहुंची। और नौकरोंकी गाड़ी जो बहुत पहले चली थी, उसका अभी तक पता ही नहीं।

शरदऋतुका प्रातःकाल अत्यन्त मधुर और सुहावना लग रहा है, धूप फैल जानेसे ओस तो सूख गई है, किन्तु बगीचेके पेड़-पौधे निर्मल प्रकाशसे झलमला रहे हैं। बगीचेकी चहारदीवारीके किनारे-किनारे हरसिंगारके पेड़ोंकी कतार है, और उनके नीचे पड़े-हुए फूलोंकी सुगन्धसे सारा बगीचा महक रहा है।

आशा कलकत्तेके ईंट-पत्थरके मकानोंके बन्धनसे मुक्ति पाकर वन्य हरिणीकी तरह उल्लसित हो उठी। उसने विनोदिनीके साथ ढेर-के-ढेर फूल चुने, पेड़से पके शरीफे तोड़कर उसके नीचे बैठकर खाये, और फिर दोनों सखियाँ मिलकर बहुत देर तक तालाबमें नहाती रहीं। इन दोनों नारियोंने मिलकर एक तरहके निरर्थक आनन्दसे पेड़ोंकी छाया और डालियोंकी सँधमेंसे निकलते-हुए प्रकाशको, तालाबके पानी और निकुञ्जके पुष्प-पल्लवोंको पुलकित और सचेतन कर दिया।

नहानेके बाद दोनों सखियोंने आकर देखा कि नौकरोंकी गाड़ी अभी तक नहीं आई है। महेन्द्र कोठीके बरण्डेमें कुरसीपर बैठा किसी विलायती कम्पनीका सूचीपत्र पढ़ रहा था। उसके चेहरेपर खुशीका नाम तक नहीं, सूखा-सूखा-सा दिखाई दे रहा है।

विनोदिनीने महेन्द्रके पास जाकर पूछा, "बिहारी-बाबू कहाँ हैं ?"

महेन्द्रने संक्षेपमें उत्तर दिया, "मालूम नहीं।"

विनोदिनीने कहा, "चलिये उन्हें ढूँढ़ निकाला जाय।"

महेन्द्रने कहा, "उसे कोई चुरा ले जायगा, ऐसी कोई आशङ्का नहीं मालूम होती। बिना ढूँढ़े भी वह मिल जायगा।"

विनोदिनीने कहा, "लेकिन, कमसे कम ऐसी तो आशङ्का है कि शायद वे आपके लिए ही सोचमें दुबले-हुए जा रहे हों कि कहीं 'दुर्लभ रत्न' खो गया तो क्या होगा! कमसे कम उन्हें तसल्ली तो दे आना चाहिए।"

तालाबके पास एक बड़ा-सा पक्का घाट है, वहाँ बिहारी अपना पैक-बक्स खोलकर 'स्टोव' निकालकर उसपर पानी गरम कर रहा था। सबके उपस्थित होते ही उसने आतिथ्य-पूर्वक एक-एक प्याला गरम चाय और रकाबियोंमें कुछ नमकीन नाश्ता निकालकर सबके आगे रख दिया। विनोदिनी बार-बार कहने लगी, "भाग्यसे बिहारी-बाबू सब तैयारी कर लाये थे, इसलिए जानमें जान आ गई, नहीं तो चाय न मिलनेसे महेन्द्र-बाबूकी न-जाने क्या दशा होती!"

चाय पाकर महेन्द्रके सचमुच ही जानमें जान आ गई, किन्तु फिर भी वह बोला, "बिहारीकी हर बातमें ज्यादती हुआ करती है। पिकनिक करने आये हैं, यहाँ भी अगर सब-कुछ घर जैसा नियमके माफिक हुआ, तो फिर मजा ही क्या रहा!"

बिहारीने कहा, "तो दे दो, भइया, मेरा चायका प्याला वापस दे दो, चाय बगैर पीये ही तुम मनमाना मजा लेते रहो,— मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं।"

काफी दिन चढ़ गया, पर नौकर नहीं आये। बिहारीकी पेटीमेंसे नाना प्रकारके भोज्य पदार्थ निकलने लगे। दाल-चावल, साग-तरकारी और छोटी छोटी शीशियोंमें पिसे-हुए मसाले इत्यादि। विनोदिनी आश्चर्यके साथ कहने लगी, "बिहारी-बाबू, आपने तो हम औरतोंको भी मात कर दिया! घरमें तो गृहिणी नहीं हैं, फिर यह-सब आपने सीख कहाँसे लिया?"

बिहारीने कहा, "कमबख्त पेटके लिए सब-कुछ सीखना पड़ता है, भाभीजी! करूं क्या, अपनी सेवा-टहल और आदर-जतन सब-कुछ अपने-आप ही करना पड़ता है न!"

बिहारीने यह बात योंही हँसी-हँसीमें कही थी, किन्तु विनोदिनी गम्भीर होकर बिहारीके मुँहकी तरफ करुण दृष्टिसे देखती-हुई कृपा वर्षण करने लगी।

बिहारी और विनोदिनी दोनों मिलकर रसोईके काममें जुट पड़े। आशा क्षीण और संकुचित-सी होकर हस्तक्षेप करने आई, किन्तु बिहारीने रोक दिया। अपटु महेन्द्रने मदद करनेकी कोई कोशिश ही नहीं की। वह बरगदके तनेसे पीठ लगाये और पैरपर पैर रखे कांपते-हुए पत्तोंपर सूर्यकिरणोंका नाच देखने लगा।

रसोई बन चुकनेपर विनोदिनीने कहा, "महेन्द्र-बाबू, आप इस बरगदके पत्ते गिनकर पार नहीं पा सकते,– अब जाइये, नहा आइये।"

इतनेमें नौकर-चाकर भी सामान लेकर आ पहुंचे। उनकी गाड़ी रास्तेमें टूट गई थी। आते-आते दोपहर हो गया।

खाने-पीनेके बाद बरगदके पेड़के नीचे ताश खेलनेका प्रस्ताव हुआ; पर महेन्द्रने कुछ ध्यान ही नहीं दिया, और देखते-देखते पेड़की छायाके नीचे उसे नींद आ गई, और सो गया। आशा कोठीके भीतर जाकर दरवाजा बन्द करके आराम करनेकी तैयारी करने लगी।

विनोदिनीने माथेका पल्ला सम्हालते-हुए बिहारीसे कहा, "अच्छा तो, मैं अब भीतर जाती हूं।"

बिहारीने कहा, "आप कहां जायेंगी,– बैठिये जरा, गपशप कीजिये।"

क्षण-क्षणमें दोपहरकी गरम हवा तरु-पल्लवोंको मर्मरित करने लगती है, और क्षण-क्षणमें तालाबके उस पार जामुनके पेड़के घने पत्तोंमेंसे कोयल बोल बोल उठती है।

विनोदिनी अपने बचपनकी बातें करने लगी,– गाँवकी बात, मा-बापकी बात, बचपनकी सहेलियोंकी बात। कहते-कहते उसके माथेका पल्ला खिसक पड़ा। विनोदिनीके चेहरेपर प्रखर यौवनकी जो एक दीप्ति सर्वदा ही बनी रहती थी, बाल्यस्मृतिकी छायाने आकर उसे आज स्निग्ध कर दिया। उसकी आँखोंमें जिस कौतुकतीव्र कटाक्षको देखकर तीक्ष्णदृष्टि बिहारीके मनमें अब तक नाना प्रकारके

संशय उपस्थित हुआ करते थे, उन्हीं आँखोंकी उज्ज्वल-कृष्ण ज्योति जब एक शान्त-सजल रेखामें परिणत होकर म्लान हो आई, तब बिहारीको विनोदिनीमें मानो और ही कोई व्यक्तित्व दिखाई देने लगा। उसने देखा कि उस दीप्ति-मण्डलके केन्द्रस्थलमें एक कोमल हृदय अब भी सुधा-धारासे सरस बना-हुआ है, अपरितृप्त रस-रङ्ग-कौतुक-विलासकी दहन-ज्वाला अभी तक उसकी नारीप्रकृतिको सुखा नहीं सकी है। विनोदिनी मानो सलज्ज सती स्त्रीके रूपमें अनन्य भक्ति के साथ पतिकी सेवा कर रही है, कल्याण-परिपूर्णा जननीकी तरह सन्तानको गोदमें लिये-हुए है! यह चित्र इसके पहले एक क्षणके लिए भी कभी बिहारीके मनमें उदित नहीं हुआ। आज मानो रङ्गमञ्चका पट क्षण-भरके लिए उठ गया और उसके भीतरका एक 'मङ्गल-हृदय' उसकी आँखोंके सामने प्रकट हो गया। बिहारी सोचने लगा, 'विनोदिनी बाहरसे विलासिनी युवती जरूर है, किन्तु उसके भीतर एक पूजा-रता नारी निरशन हो तपस्या कर रही है। बिहारी एक दीर्घ निश्वास लेकर मन-ही-मन बोला, 'मनुष्य अपने वास्तव-रूपको आप ही नहीं जान पाता, अन्तर्यामी ही जान सकते हैं। अवस्था-चक्रमें बाहर जो-कुछ बन जाता है, संसारकी दृष्टिमें वही सत्य मालूम होता है।'

बिहारीने बातके सिलसिलेको रुकने नहीं दिया,– प्रश्न कर-करके उसे वह जगाये रखने लगा। विनोदिनीको अब तक कोई ऐसा आदमी ही नहीं मिला जो उसके मनकी ये-सब बातें इस तरह सुनता, खासकर किसी पुरुषके आगे उसने इस तरह आत्म-विस्मृत होकर स्वाभाविक-भावसे ये बातें नहीं कहीं। आज मुक्त कलकण्ठसे नितान्त सहज-सहल हृदयकी बातें कहकर उसकी सम्पूर्ण नारी-प्रकृति मानो नवीन वर्षाधारामें स्नान करके स्निग्ध और परितृप्त हो गई।

खूब सवेरे उठनेके उपद्रवसे थके-हुए महेन्द्रकी करीब पाँच बजे आँख खुली। और वह कुछ झुँझलाहटके साथ बोल उठा, "बस अब चलना चाहिए।"

विनोदिनीने कहा, "और जरा ठहरकर जायें तो क्या हर्ज है?"

महेन्द्रने कहा, "नहीं, रास्तेमें कहीं किसी मतवाले गोरेसे पाला पड़ गया तो जानको आफत हो जायगी!"

चीज-वस्त सब सम्हालकर उठाने-रखनेमें अँधेरा हो आया। इतनेमें एक नौकरने आकर खबर दी कि 'गाड़ी-वाले गाड़ी लेकर न-जाने कहाँ चले गये, दिखाई नहीं पड़ते। गाड़ियाँ बगीचेके बाहर खड़ी थीं, फौजके दो गोरे आकर जबरदस्ती उन्हें स्टेशनकी तरफ ले गये हैं।'

उस नौकरको दूसरी गाड़ी लानेके लिए भेज दिया गया।

भीतर-ही-भीतर कुढ़ा-हुआ महेन्द्र मन-ही-मन कहने लगा, 'आजका दिन ही बिलकुल मट्टी हो गया!' अपना अधैर्य अब उससे छिपाये नहीं छिप सका।

शुक्लपक्षका चन्द्रमा क्रमशः वृक्षोंकी डालियोंके पत्र-जालसे निकलकर मुक्त आकाशमें आ गया। निस्तब्ध निष्कम्प उपवन 'छाया और चाँदनी'के सङ्गमसे विचित्र सौन्दर्यसे परिपूर्ण हो उठा। आज इस माया-मण्डित पृथ्वीपर विनोदिनीने अपनेको कैसे-तो एक अपूर्व रूपमें अनुभव किया। आज जब उसने तरु-वीथिकामें आशाको अपनी छातीसे लगा लिया, तब उसमें प्रेमकी कृत्रिमता जरा भी नहीं थी। आशाने देखा कि विनोदिनीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। उसने व्यथित होकर पूछा, "क्यों बहन किरकिरी, तुम रो क्यों रही हो?"

विनोदिनीने कहा, "कुछ नहीं, बहन, कोई बात नहीं,– ठीक तो हूं मैं। आजका दिन मुझे बड़ा अच्छा लगा।"

आशाने पूछा, "सो कैसे?"

विनोदिनीने कहा, 'मुझे ऐसा लगता है कि मानो मैं मर गई हूं, मानो परलोकमें आ गई हूं, यहाँ मानो मेरा सब-कुछ मिल सकता है।"

आशा आश्चर्यके साथ सब बात सुनती गई, किन्तु समझ कुछ न सकी। मृत्युकी बात सुनकर वह बहुत दुःखित हुई, बोली, "छी, बहन किरकिरी, ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।"

गाड़ी मिल गई। बिहारी फिर कोचबक्सपर बैठा। विनोदिनी निस्तब्ध बैठी खिड़कीके बाहरकी ओर देखती रही, ज्योत्स्नासे स्तम्भित तरुश्रेणी धावमान निविड़ छाया-स्रोतकी तरह उसकी आँखोंके ऊपरसे दौड़ती चली जा रही थी। आशा गाड़ीके एक कोनेमें बैठी थी, उसकी आँख लग गई; और महेन्द्र रास्ते भर अत्यन्त विमर्ष-हुआ बैठा रहा।

१८

बगीचेवाले मनहूस दिनके बाद महेन्द्र फिर एक बार विनोदिनीको अच्छी तरह अपने वशमें लानेको उत्सुक हुआ। किन्तु उसके दूसरे ही दिन राजलक्ष्मी को इन्फ्लुएञ्जा हो गया। रोग खतरनाक न होनेपर भी तकलीफ और कमजोरी बहुत ज्यादा थी। विनोदिनी दिन-रात उनकी सेवामें लगी रही।

महेन्द्रने कहा, "दिन-रात जाग-जागकर इस तरह तीमारदारी करती रहोगी तो अन्तमें तुम भी बीमार पड़ जाओगी। माकी सेवाके लिए मैं आदमी ठीक किये देता हूं।"

बिहारीने कहा, "महेन-भइया, तुम इतने घबराते क्यों हो? ये सेवा कर रही हैं तो करने दो। ऐसी सेवा और कोई कर सकता है!"

महेन्द्रने रोगीके कमरेमें बार-बार जाना-आना शुरू कर दिया। कोई आदमी कुछ काम तो करे नहीं और कामके वक्त हमेशा साथ लगा रहे — यह बात कर्मठ विनोदिनीके लिए असह्य थी। उसने झुंझलाकर दो-तीन बार महेन्द्रसे कहा, "आप यहां बैठे-हुए क्या मदद कर रहे हैं? आप जाइये, व्यर्थ पढ़ाईका हर्ज न कीजिये।"

हालां कि विनोदिनीको इस बातमें गर्व था और आराम भी मिलता था कि महेन्द्र उसका हरवक्त अनुसरण करता रहता है, किन्तु इसके मानी यह नहीं कि इस तरहका कंगलापन किया जाय कि बीमार माकी रोगशय्या तक लुब्ध हृदयसे उसके पीछे लगे रहना! इससे विनोदिनीका धीरज जाता रहा, और महेन्द्रसे उसे घृणा होने लगी। विनोदिनीके स्वभावमें एक खास बात यह है कि किसी भी कामका भार जब उसपर आ पड़ता है तब वह और-किसी भी बातका खयाल नहीं रखती। जब तक वह खिलाना-पिलाना, रोगीकी सेवा या घरके काम-काजमें फंसी रहती है तब तक कोई भी उसे असावधान नहीं पा सकता, और वह भी कामके वक्त किसीको किसी तरहकी अनावश्यक बात करते नहीं देख सकती।

बिहारी बीच-बीचमें थोड़ी देरके लिए राजलक्ष्मीकी सेहत पूछने आता, और

कमरेमें घुसते ही समझ जाता कि 'क्या जरूरत है, कहां किस चीजकी कमी है', और चटसे सब ठीक करके चला जाता। विनोदिनी मन-ही-मन समझ जाती कि बिहारी उसकी सेवा-शुश्रूषाको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता है। इसलिए बिहारीके आगमनसे मानो उसे विशेष पुरस्कार मिल जाता।

महेन्द्र महज धिक्कारके आवेगमें अत्यन्त कड़े नियमके साथ कालेज जाने लगा। एक तो उसका मिजाज अत्यन्त रूखा हो गया, उसपर घरका सब ढांचा ही बदल गया,—कभी रसोई ठीक समयपर नहीं होती तो कभी सईस लापता है, कभी मोजेका छेद बढ़ता चला जा रहा है तो कभी कुछ। अब इन सब विश्टङ्खलाओंमें महेन्द्र पहले जैसा आमोद अनुभव नहीं करता। इधर जब जिस चीजकी जरूरत पड़ती थी तभी वह चीज हाथके पास तैयार मिलती थी, इस आरामका वह अनुभव कर चुका था ; और अब उसकी मुसीबतका अनुभव करने लगा। अब आशाकी अशिक्षित अपटुतामें महेन्द्रको जरा भी आनन्द नहीं आता।

एक दिन वह कहने लगा, "चुन्नी, मैं तुमसे कई बार कह चुका हूं कि मेरे नहानेके पहले ही तुम मेरी कमीजमें बटन लगा दिया करो, और मेरी अचकन पतलून सम्हालकर एक जगह रख दिया करो ; मगर एक भी दिन तुमसे यह नहीं होता। नहानेके बाद बटन लगाने और कपड़े ढूंढ़नेमें मेरे दो-दो घण्टे बरबाद हो जाते हैं।"

अनुतप्त आशा मारे शरमके मुरझाकर कहती, "मैंने नौकरसे कह तो दिया था।"

महेन्द्र कहता, "नौकरसे कह तो दिया था! अपने हाथसे करनेमें क्या बिगड़ जाता? तुमसे तो किसी कामकी उम्मीद ही करना फजूल है।"

यह आशाके लिए वज्रपात था। ऐसी डाट-फटकार उसे कभी नहीं सहनी पड़ी। यह जवाब उसके मन या जबानपर नहीं आया कि 'तुम्हींने तो मुझे कुछ सीखने नहीं दिया!' उसके ऐसी धारणा ही नहीं थी कि घर-गृहस्थीका काम सीखनेके लिए नियमित अभ्यास और अनुभवकी जरूरत है। वह समझती थी कि 'अपनी स्वाभाविक अयोग्यता और निर्बुद्धिताके कारण ही उससे कोई

काम ठीक तौरसे करते नहीं बनता।' महेन्द्रने आत्म-विस्मृत होकर जब-जब विनोदिनीसे आशाकी तुलना करके उसे धिक्कारा है तब-तब आशाने उसे बिना द्वेषके विनय और सरल-भावसे स्वीकार कर लिया है।

आशा बार-बार अपनी बीमार सासके कमरेके आसपास चक्कर काटती और बार-बार लज्जित होकर दरवाजेके पास जाकर खड़ी हो जाती,—भीतर जानेकी उसे हिम्मत ही नहीं पड़ती। वह घर-गृहस्थीके लिए अपनेको आवश्यक कर देना चाहती है, कुछ काम करके दिखाना चाहती है, किन्तु कोई उससे काम लेना ही नहीं चाहता। वह नहीं जानती कि किस तरह काममें प्रवेश किया जाता है और किस तरह गृहस्थीमें अपने लिए जगह बना ली जाती है। वह अपनी अक्षमता-अयोग्यताके सङ्कोचसे बाहर-ही-बाहर घूमती रहती है। उसके मनमें कैसी-तो एक तरहकी भीतरी वेदना बढ़ती ही जाती है, किन्तु अपनी उस अपरिस्फुट वेदना और अव्यक्त आशङ्काको वह स्पष्ट नहीं समझ पाती। उसे ऐसा लग रहा है कि अपने चारों तरफके सब-कुछको वह नष्ट किये डाल रही है; किन्तु वह यह नहीं जानती कि कैसे-तो वह बनकर तैयार हुआ था और कैसे नष्ट हो रहा है, और क्या करनेसे उसका प्रतिकार हो सकता है। रह-रह कर उसकी सिर्फ यही इच्छा होती रहती है कि जोरसे रो-रोकर वह कहे कि 'मैं बिलकुल ही अयोग्य हूं, बिलकुल ही असमर्थ हूं, मेरे समान मूढ़ संसारमें और कोई नहीं।'

पहले तो आशा और महेन्द्रने बहुत देर-देर तक घरमें बैठकर कभी बातें करके और कभी बातें न करके परिपूर्ण आनन्दसे सुखमय समय बिताया है; किन्तु आजकल विनोदिनीके अभावमें आशाके साथ अकेले बैठकर महेन्द्रके मुंहसे सहजमें कोई बात ही नहीं निकलना चाहती, और कुछ कहे बगैर चुपचाप बैठा रहना भी उसे कुछ ऊटपुटांग-सा मालूम होता है।

महेन्द्रने नौकरसे पूछा, "यह चिट्ठी किसकी है?"

"बिहारी-बाबूकी।"

"किसने दी?"

"बड़ी बहूजीने।"

"देखूं" – कहते-हुए महेन्द्रने चिट्ठी ले ली। विनोदिनीकी चिट्ठी, और बिहारीके नाम? उसकी इच्छा हुई कि लिफाफा फाड़कर चिट्ठी पढ़ ले। पर दो-चार बार उलट-पुलटकर देख-भालकर उसने चिट्ठी नौकरकी तरफ फेंक दी। अगर वह चिट्ठी खोलता तो देखता कि उसमें लिखा है, "बुआजी किसी भी तरह साबू-बा ले ही नहीं रही हैं। आज क्या उन्हें मूंगकी दालका पानी दिया जा सकता है?" दवा और पथ्यके सम्बन्धमें विनोदिनी महेन्द्रसे कभी कोई बात नहीं पूछती थी। इस विषयमें वह बिहारीपर ही ज्यादा भरोसा रखती है।

महेन्द्र बरामदेमें कुछ देर तक चहलकदमी करता रहा, फिर अपने कमरेमें चला गया। भीतर घुसते ही उसने देखा कि सामनेकी दीवारपर जो तसवीर लटक रही है उसकी रस्सी टूटनेमें जरा-सी कसर है और वह टेढ़ी होकर गिरना ही चाहती है। महेन्द्रने आशाको बड़े जोरसे डाटते-हुए कहा, "तुम्हारी आँखें आजकल कुछ देखती ही नहीं! इसी तरह सब-कुछ बरबाद किये दे रही हो।" दमदमके बगीचेसे कुछ फूल चुनकर विनोदिनी एक गुलदस्ता बना लाई थी और उसे पीतलकी फूलदानीमें रख दिया था। आज तक वह ज्यों-का-त्यों सूखा पड़ा है, फेंका नहीं गया। और दिन महेन्द्रका इन-सब बातोंकी तरफ ध्यान नहीं जाता, किन्तु आज उसपर उसकी दृष्टि पड़ गई। वह बिगड़ उठा, "जब तक इसे विनोदिनी आकर नहीं फेंकेगी तब तक यह योंही पड़ा रहेगा।" और फूलदानी उठाकर इतने जोरसे बाहर फेंक दी कि वह ठनठनाती-हुई जीनेकी सिढ़ियोंसे नीचे लुढ़कती चली गई।

महेन्द्र सोचने लगा, 'आशा क्यों मेरे मनकी-सी नहीं बन रही है? क्यों वह मेरे मनका-सा काम नहीं करती? क्यों वह अपनी स्वभावगत शिथिलता और दुर्बलताके कारण मुझे दाम्पत्य-सुखमें दृढ़तासे पकड़कर नहीं रख सकती? क्यों वह सर्वदा मुझे विक्षिप्त किये रहती है?' सोचते-सोचते सहसा उसकी दृष्टि आशापर जा पड़ी, देखा कि उसका चेहरा पीला पड़ गया है, वह पलंगमें लगे मच्छरदानीका एक खम्भा पकड़े खड़ी है, उसके ओठ कांप रहे हैं। और कांपती-हुई सहसा वह तेजीसे बगलके कमरेमें चली गई।

महेन्द्र तब धीरेसे जाकर फूलदानी उठा लाया, और जहाँकी तहाँ रख दी। घरके एक कोनेमें उसकी पढ़नेकी टेबिल-कुरसी थी, वह उस कुरसीपर जाकर बैठ गया ; और फिर टेबिलपर दोनों कोहनी टेककर हथेलियोंपर सिर रखे बहुत देर तक पड़ा रहा।

शाम हो गई, नौकर कमरेमें बत्ती जलाकर रख गया, किन्तु आशा नहीं आई। महेन्द्र छतपर जाकर बड़ी तेजीसे इधरसे उधर चक्कर काटने लगा। रातके नौ बज गये, महेन्द्रका जन-विरल घर निशीथ-रात्रिके समान निस्तब्ध हो गया, फिर भी आशा नहीं आई। महेन्द्रने उसे बुलवाया। आशा अत्यन्त सङ्कोचके साथ धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़कर छतके जीनेके दरवाजेके पास तक आकर खड़ी रह गई। महेन्द्रने पास जाकर उसे छातीसे लगा लिया। उसी क्षण पतिके वक्षस्थलपर उसका रोना मानो फट पड़ा, उसके रोके रुका ही नहीं। मानो उसके आँसू निबटना ही नहीं चाहते, रोनेकी आवाज मानो जोरसे निकलना चाहती है, उसके दबाये दबना नहीं चाहती। महेन्द्रने उसे अपनी छातीमें बाँधकर उसका माथा चूम लिया। आकाशके मूक तारे निस्तब्ध होकर देखते रहे।

एक दिन रातको बिस्तरपर बैठा-हुआ महेन्द्र कह उठा, "इधर कालेजमें हम लोगोंकी नाइट-ड्युटी ज्यादा पड़ रही है, इसलिए अब कुछ दिनोंके लिए मुझे कालेजके पास ही 'मेस' में रहना पड़ेगा।"

आशाने सोचा, 'अभी तक क्या गुस्सा बना ही हुआ है? ये मेरे ऊपर गुस्सा होकर चले जाना चाहते हैं? अपनी अयोग्यतासे मैं पतिको घरसे विदा किये दे रही हूं? इससे तो मेरा मर जाना ही अच्छा था।'

किन्तु महेन्द्रके व्यवहारमें नाराजीका कोई लक्षण नहीं था। उसने बहुत देर तक मुँहसे कुछ न कहकर आशाका मुँह अपनी छातीसे लगाये रक्खा, और बार-बार उसके बालोंमें उंगलियाँ डालकर उसके जूड़ेको ढीला करता रहा। पहले प्यारके दिनोंमें महेन्द्र इसी तरह आशाके बाल खोल दिया करता था, आशा इसपर आपत्ति करती थी। आज उसने कोई आपत्ति नहीं की, पुलकमें विह्वल होकर वह चुप बनी रही। अचानक उसके माथेपर आँसूकी बूंद आ पड़ी। महेन्द्रने तुरत उसका मुंह उठाकर स्नेह-रुद्ध स्वरमें कहा, "चुन्नी!" आशाने

मुंहसे कुछ उत्तर न देकर अपने कोमल हाथोंसे महेन्द्रको अपनी छातीसे दबा लिया। महेन्द्रने कहा, "कसूर हो गया है मुझसे, मुझे माफ करो।"

आशाने अपने कुसुम-सुकुमार करपल्लवोंसे महेन्द्रका मुंह बन्द करके कहा, "नहीं नहीं, ऐसी बात न कहो। तुमने कोई भी कसूर नहीं किया। सब दोष मेरा है। मुझे तुम अपनी दासीकी तरह डाटो-डपटो, दण्ड दो। मुझे तुम अपने चरणोंकी सेवा-योग्य बना लो।"

विदाके प्रभातमें बिस्तरसे उठते-हुए महेन्द्रने कहा, "चुन्नी, मेरे हृदयकी मणि, मैं तुम्हें अपने हृदयमें सबके ऊपर धारण कर रक्खूंगा,– वहाँ और कोई भी तुमसे आगे नहीं बढ़ सकता।"

तब आशाने दृढ़ चित्तसे सब तरहके आत्म-त्यागके लिए तैयार होकर पतिकी सेवामें अपनी सिर्फ एक छोटी-सी प्रर्थना पेश की, बोली, "तुम मुझे रोज एक चिट्ठी दिया करोगे?"

महेन्द्रने कहा, "तुम भी दिया करोगी?"

आशाने कहा, "मुझे क्या लिखना आता है?"

महेन्द्रने उसकी लटोंको कान तक खींचते-हुए कहा, "तुम 'चारुपाठ' के अक्षयकुमार दत्तसे अच्छा लिख सकती हो।"

आशा बोली, "चलो रहने दो, मजाक मत उड़ाओ!"

जानेके पहले आशा यथासाध्य अपने हाथसे महेन्द्रका ट्रङ्क सजाने बैठी। महेन्द्रके मोटे-मोटे जाड़ेके कपड़े ठीक तौरसे तहाना और बक्समें रखना जरा मुश्किल काम है। दोनोंने मिलकर किसी तरह दाब-दूबकर एक बक्सका सामान दो बक्सोंमें रखकर छुट्टी पाई। फिर भी गलतीसे जो बाकी रह गया उससे और भी कई गठरियां बन गई। इस विषयमें आशाको यद्यपि काफी लज्जा मालूम हुई, फिर भी दोनोंकी छीनाझपटी कौतुक और परस्पर एक दूसरेके प्रति दोषारोपसे पहले-जैसा एक आनन्दका दिन वापस आ गया; और आशा इस बातको बिलकुल भूल ही गई कि यह विदाकी तैयारियां हो रही हैं। सईसने आठ दस बार महेन्द्रको 'गाड़ी तैयार' की बात याद दिलाई, पर महेन्द्रने उधर ध्यान ही नहीं दिया, और अन्तमें झुंझलाकर बोल उठा, "जाओ, घोड़े खोल दो।"

प्रभात धीरे-धीरे अपराह्ण हो गया और अपराह्णसे सन्ध्या हो गई, और तब कहीं स्वास्थ्यका खयाल रखने और नियमित चिट्ठी लिखनेकी बार-बार हिदायत देते-हुए भाराक्रान्त हृदयसे दोनोंने किसी तरह विच्छेद-अध्याय पूरा किया।

आज दो दिन हुए राजलक्ष्मीने पथ्य लिया है। शामके वक्त मोटा गरम कपड़ा ओढ़े वे विनोदिनीके साथ ताश खेल रही थीं। आज उनके शरीरमें किसी तरहका अवसाद नहीं है। महेन्द्रने उनके कमरेमें जाकर विनोदिनीकी तरफ जरा भी न देखकर मासे कहा, "मा, कालेजमें मेरी रातकी ड्युटी पड़ी है,- यहाँ रहनेसे बड़ी दिक्कत होती है, इसलिए मैंने कालेजके पास एक 'मेस' में रहनेका इन्तजाम किया है। आजसे वहीं रहूंगा।"

राजलक्ष्मी भीतरसे रूठी-हुई-सी बोलीं, "ठीक है, जाओ। पढ़ाईका नुकसान करके यहाँ कैसे रह सकते हो!"

यद्यपि उनका रोग अच्छा हो गया है, फिर भी महेन्द्रके जानेकी बात सुन कर वे अपनेको रुग्न और दुर्बल अनुभव करने लगीं, और विनोदिनीसे बोलीं, "जरा तकिया तो बढ़ा देना, बेटी!" और तकियेका सहारा लेकर लेट रहीं। विनोदिनी धीरे-धीरे उनकी देहपर हाथ फेरने लगी।

महेन्द्रने एक बार माके माथेसे हाथ लगाकर देखा, और फिर नाड़ी देखने लगा। राजलक्ष्मीने अपना हाथ छुड़ाते-हुए कहा, "नाड़ी देखकर तो सब समझ लिया! तुझे फिकर करनेकी जरूरत नहीं, मैं बहुत अच्छी हूं।" इतना कहकर वे कमजोरीके साथ करवट लेकर पड़ रहीं।

महेन्द्र विनोदिनीसे किसी तरहका विदाईका शिष्ट-सम्भाषण किये बिना ही माको प्रणाम करके चला गया।

१९

विनोदिनी मन-ही मन सोचने लगी, 'बात क्या है? मान हुआ है या नाराजी है, या भय है? मुझे दिखाना चाहते हैं कि तुम्हारी कोई परवाह नहीं! 'मेस' में जाकर रहेंगे? देखूँ कितने दिन रहते हैं!'

किन्तु विनोदिनीके भीतर भी एक तरहका अशान्त भाव उपस्थित हुआ। महेन्द्रको वह प्रतिदिन नाना जालोंमें फँसाती और नाना बाणोंसे घायल करती रहती थी, उसका वह काम मानो इधरसे उधर करवट लेने लगा। इस घरसे उसका सारा नशा ही जाता रहा। महेन्द्र-वर्जित आशा उसके लिए नितान्त स्वादहीन हो गई। आशाके प्रति महेन्द्रका लाड़-प्यार खातिर-जतन विनोदिनीके प्रणय-वञ्चित चित्तको सर्वदा ही आलोड़ित करता रहता था, और वह आलोड़न विनोदिनीकी 'विरहिणी' की कल्पनाको जो वेदनामें जागरूक बनाये रखता था, उसमें उग्र उत्तेजना जो थी! जिस महेन्द्रने विनोदिनीको उसके सम्पूर्ण जीवनकी सार्थकतासे भ्रष्ट कर दिया है, जिस महेन्द्रने उस-जैसे स्त्री-रत्नकी उपेक्षा करके आशा-सरीखी क्षीण-बुद्धि दीन-प्रकृति बालिकाको वरण किया है उससे विनोदिनी प्रेम करे या विद्वेष करे, उसे कठोर दण्ड दे या अपना हृदय अर्पण कर दे, विनोदिनी ठीकसे कुछ समझ नहीं पा रही है। महेन्द्रने उसके मनमें एक तरहकी ज्वाला सुलगा दी है, वह ज्वाला प्रेमकी है या डाहकी, या दोनोंका संमिश्रण है— विनोदिनीसे कुछ निर्णय करते नहीं बनता। वह मन-ही-मन तीव्र हँसी हँसकर कहती है, 'किसी नारीकी क्या मुझ-जैसी ऐसी दशा हुई है! मैं मरना चाहती हूँ या मारना, इतना भी न समझ सकी!' किन्तु चाहे किसी भी कारणसे हो, दग्ध होनेके लिए हो या दग्ध करनेके लिए, महेन्द्रकी उसे सख्त जरूरत है। आखिर वह अपने विषके-बुझे अग्निवाण इस संसारमें कहाँ चलावे? जल्दी-जल्दी साँस लेते-हुए वह मन-ही-मन कहने लगी, 'वह जायगा कहाँ? उसे लौटना ही पड़ेगा। मेरा है वह।'

शीघ्र ही महेन्द्रको अपने छात्रावासमें परिचित हस्ताक्षरोंकी लिखी एक चिट्ठी मिली। दिनके कोलाहल और भीड़-भम्भड़में उसने चिट्ठी खोली नहीं, छातीके पास जेबमें रख ली। कालेजमें लेक्चर सुनते-सुनते और अस्पतालमें घूमते-घूमते अकस्मात् एक-एक बार उसे याद उठती रही कि प्यारकी एक चिड़िया उसकी छातीमें नीड़ बनाकर सो रही है; उसे जगाते ही उसका सम्पूर्ण कोमल कूजन उसके कानोंमें ध्वनित हो उठेगा।

सन्ध्याके समय महेन्द्र अपने निर्जन कमरेमें लैम्पके उजालेमें कुरसीपर आरामसे बैठ गया। जेबमेंसे अपनी देहसे तप्त चिट्ठी निकाल ली। बहुत देर तक चिट्ठी न खोलकर लिफाफेके ऊपरका पता देखता रहा। वह जानता है कि चिट्ठीमें ज्यादा कुछ नहीं है। और इसकी कोई सम्भावना भी नहीं थी कि आशा अपने मनके भावोंको ठीक तरहसे व्यक्त कर सकेगी; केवल उसकी कच्ची लिखावट और टेढ़ी-मेढ़ी लाइनोंमें उसके मनकी बातोंकी कल्पना कर लेनी होगी। आशाके हाथके कच्चे अक्षरोंमें बड़े जतनसे लिखे-हुए अपने नामको पढ़कर महेन्द्रको अपने नामके साथ मानो एक रागिनी सुनाई दी, जो साध्वी नारी-हृदयके अति निभृत वैकुण्ठलोकसे आता-हुआ निर्मल प्रेमका सङ्गीत था।

इस दो-एक दिनके विच्छेदमें महेन्द्रके मनसे दीर्घ-मिलनका सम्पूर्ण अवसाद दूर होकर सरला वधूकी नवीन प्रेमसे उद्भासित सुख-स्मृति फिर उज्ज्वल हो उठी। इधर अन्तके दिनोंमें रोजमर्राकी घर-गृहस्थीकी त्रुटि-विच्युतियोंने उसे परेशान करना शुरू कर दिया था, वह-सब दूर हो गया, और अब केवल एक कार्यहीन कारणहीन विशुद्ध प्रेमानन्दके आलोकमें आशाकी मानसी-मूर्ति उसके हृदयमें प्राण पाकर जाग उठी।

महेन्द्रने अत्यन्त धीरे-धीरे लिफाफा फाड़कर चिट्ठी निकाली, और उसे वह अपने ललाटपर कपोलोंपर फेरने लगा। किसी दिन महेन्द्रने जो एसेन्स आशाको उपहारमें दिया था उसकी सुगन्ध उतावले दीर्घ-निश्वासकी तरह चिट्ठीके कागजमेंसे निकलकर महेन्द्रके हृदयमें घुस गई।

तह खोलकर उसने चिट्ठी पढ़ी। किन्तु यह क्या! जैसी टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियाँ हैं वैसी सीधी-सादी भाषा तो नहीं है! कच्ची लिखावट है, किन्तु बातें तो उससे मेल नहीं खातीं। चिट्ठीमें लिखा है:—

"प्रियतम,

जिसे भूलनेके लिए तुम चले गये हो, इस चिट्ठीमें उसकी याद क्यों दिलाऊँ? जिस लताको तुमने तोड़कर फेंक दिया है वह अब क्या मुँह लेकर किस बिरतेके बूतेसे लिपटकर ऊपर चढ़नेकी कोशिश करे? क्यों नहीं वह मट्टीके साथ मट्टी होकर, धूलके साथ धूल बनकर धूलमें समा गई?

किन्तु इतनेसे तुम्हारी क्या हानि होगी, नाथ! क्षण-भरके लिए याद आ भी गई तो क्या हुआ? मनमें वह कितनी चोट पहुँचायेगी? और यहाँ तुम्हारी उपेक्षा जो काँटेकी तरह मेरी पसलियोंमें चुभी रह गई! वह काँटा दिन-भर, रात-भर, सब काममें, सब चिन्तामें, जहाँ भी चलती-फिरती हूं, जिधर भी हिलती-डुलती हूं, उसी तरफ मुझे चुभता रहता है। तुम जैसे भूल गये हो, मुझे भी 'भूलने'का वैसा कोई उपाय बता दो न!

नाथ, तुमने जो मुझसे प्रेम किया था, वह क्या मेरा ही अपराध था? मैंने क्या स्वप्नमें भी उतने सौभाग्यकी आशा की थी? मैं कहाँसे आई, मुझे कौन जानता था? मेरी तरफ अगर तुम आँख उठाकर न देखते, मुझे अगर तुम्हारे घर बिना वेतनकी दासी होकर रहना पड़ता, तो क्या मैं तुम्हें कोई दोष दे सकती थी? तुम अपने-आप ही न-जाने मेरे कौन-से गुणपर मुग्ध हो गये, प्रियतम, क्या देखकर तुमने मेरा इतना आदर बढ़ाया, इतना लाड़ किया? और आज यदि बिना मेघके वज्रपात ही हुआ, तो उस वज्रने केवल झुलसाकर ही क्यों छोड़ दिया? मेरे इस देह-मनको बिलकुल जलाकर भस्म क्यों नहीं कर दिया?

इन दो ही दिनोंमें बहुत सहा, बहुत सोचा, किन्तु एक बात समझमें नहीं आई कि घरमें रहते-हुए भी क्या तुम मुझे फेंक नहीं सकते थे? मेरे लिए भी क्या तुम्हें घर छोड़नेकी जरूरत थी? मैं क्या तुम्हें इस कदर घेरे-हुए हूं? मुझे तुम अपने घरके किसी एक कोनेमें अपने द्वारके बाहर डाल रखते, तब भी क्या मैं तुम्हारी नजरोंमें आती? अगर यह बात ठीक है, तो तुम क्यों गये? मेरे लिए क्या कहीं भी जानेका कोई रास्ता नहीं था? मैं तो बहकर आई हूं, बहकर चली जाती।"

यह क्या चिट्ठी है! यह भाषा किसकी है, सो महेन्द्रसे छिपा न रहा। अकस्मात् आहत मूर्च्छितकी तरह महेन्द्र इस चिट्ठीको पढ़कर स्तम्भित रह गया। जिस लाइनपर उसका मन रेलगाड़ीकी तरह पूरी रफ्तारसे दौड़ रहा था उस

लाइनकी विपरीत-दिशासे एक धक्का खाकर उसका मन लाइनके बाहर जा पड़ा और उलट-पुलटकर विकल होकर एक ढेर-सा बनकर पड़ा रहा।

बहुत देर सोचनेके बाद फिर उसने दो-तीन बार चिट्ठी पढ़ी। कुछ समय तक जो बात सुदूर आभासके समान थी, आज वह मानो प्रस्फुटित हो उठी। उसके जीवनाकाशके एक कोनेमें जो धूमकेतु छाया-सा दिखाई पड़ रहा था, आज उसकी उद्यत विशाल पूँछ अग्नि-रेखामें दीप्यमान होकर दिखाई देने लगी।

यह चिट्ठी विनोदिनीकी ही है। सरला आशाने अपनी जानकर लिख दी है। जो बातें पहले उसने कभी सोची तक नहीं, विनोदिनीके कहे-अनुसार चिट्ठी लिखते समय वे बातें उसके मनमें जाग उठने लगीं। नकल की-हुई बातें बाहरसे बद्धमूल होकर उसके लिए हार्दिक हो गईं। जो नई वेदना उसके हृदयमें पैदा हुई थी, इस तरह इतनी सुन्दरतासे आशा उसे हरगिज व्यक्त नहीं कर सकती थी। वह सोचने लगी थी, 'सखी मेरे मनकी बात ऐसी अच्छी तरह समझ कैसे गई? और कैसे वह इतनी अच्छी तरह प्रकट कर सकी?' अपनी अन्तरङ्ग सखीको आशाने मानो और भी आग्रहके साथ अपना लिया, कारण जो व्यथा उसके मनके भीतर है उसकी भाषा है उसकी सखीके पास,– वह इतनी ज्यादा निरुपाय है!

महेन्द्र कुरसी छोड़कर उठ खड़ा हुआ, और भौंहें चढ़ाकर विनोदिनीपर क्रोध करनेकी भरसक कोशिश करने लगा, किन्तु क्रोध आने लगा आशापर। 'देखो तो सही, आशाकी यह कैसी मूढ़ता है! पतिके प्रति यह कैसा अत्याचार है!'– कहता-हुआ वह कुरसीपर बैठ गया, और प्रमाण-स्वरूप फिर चिट्ठी पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते भीतर-ही-भीतर उसके हर्षका सञ्चार होने लगा। चिट्ठीको उसने आशाकी ही चिट्ठी समझकर बार-बार पढ़नेकी कोशिश की। किन्तु यह भाषा तो किसी भी तरह सरला आशाकी याद नहीं दिलाती! दो-चार लाइन पढ़ते ही एक तरहका सुखोन्मादकारी सन्देह फेनिल मदिराकी तरह उसके मनके चारों तरफ निकल-निकलकर फैलने लगा। इस प्रच्छन्न किन्तु व्यक्त, निषिद्ध किन्तु निकटागत, विषाक्त किन्तु मधुर, एक समयमें उपहृत किन्तु प्रत्याहृत

प्रेमके आभासने महेन्द्रको पागल कर दिया। उसका जी चाहने लगा कि अपने हाथ-पैरमें कहीं एक जगह छुरी भोंककर या और-कुछ करके नशा छुड़ाकर मनको और-किसी तरफ विक्षिप्त कर दे। सहसा वह टेबिलपर जोरसे मुक्का जमाकर उछल पड़ा, और बोल उठा, "हटाओ, चिट्ठीको जला डालो।" और फिर वह चिट्ठीको लैम्पके पास ले गया,– पर जलाई नहीं, फिर एक बार उसे पढ़ने लगा।

दूसरे दिन सवेरे नौकरको महेन्द्रकी टेबिलपरसे कागजकी बहुत-सी राख झाड़नी पड़ी। किन्तु वह आशाकी चिट्ठीकी राख नहीं थी, चिट्ठीके जवाबमें की-गई बहुत-सी अधूरी कोशिशोंको महेन्द्रने जलाकर खाक कर दिया था।

२०

इस बीचमें और भी एक चिट्ठी आ पहुँची। उसमें लिखा था:–

"तुमने मेरी चिट्ठीका जवाब नहीं दिया? अच्छा ही किया। ठीक बातें तो लिखनेमें नहीं आतीं, तुम्हारा जो जवाब है उसे मैं मन-ही-मन समझ लेती हूं। भक्त जब अपने देवताको पुकारता है तो देवता क्या मुँहकी बातोंसे जवाब देते हैं? आशा है दुखियाका विल्वपत्र चरणोंमें स्थान पा चुका होगा।

किन्तु भक्तकी पूजा ग्रहण करनेमें शिवका यदि तपोभङ्ग हो, तो उससे नाराज न होना, मेरे हृदय-देव! तुम वर दो या न दो, आँख उठा कर देखो या न देखो, पूजा बिना किये तो भक्तकी और-कोई गति नहीं। इसीसे आज यह छोटा-सा पत्र लिख रही हूं, हे मेरे पाषाण-देवता, तुम अविचलित बने रहना।

महेन्द्र फिर चिट्ठीका जवाब लिखने बैठा। किन्तु आशाको लिखते-लिखते विनोदिनीकी बातोंका उत्तर अपने-आप लेखनीके मुँहसे निकल पड़ता है। ढकके छिपाके कौशल करके लिखते नहीं बनता। बहुत-से पत्र लिखते और फाड़ते-फाड़ते आधीसे ज्यादा रात बीत गई। फिर एक लिखा भी, तो

उसे लिफाफेमें भरकर उसपर आशाका नाम लिखते समय सहसा उसकी पीठपर मानो चाबुक-सा आ पड़ा, मानो कोई बोल उठा, 'अरे पाखण्डी, विश्वासघातक, विश्वस्त बालिकासे ऐसी प्रतारणा, ऐसी धोखेबाजी !' महेन्द्रने उस चिट्ठीके सैकड़ों टुकड़े कर डाले, और बाकीकी रात उसने टेबिलपर अपने दोनों हाथ रखकर, उनपर अपना मुँह रखकर, अपने-आपको मानो अपनी दृष्टिसे छिपानेकी कोशिशमें बिता दी।

फिर तीसरा पत्र आया। अबकी बार लिखा है :–

"जो बिलकुल ही रूठना नहीं जानता, वह क्या प्यार करता है ? अपने प्रेमको अगर मैं अनादर-अपमानसे बचाकर न रख सकी, तो उस प्रेमको मैं तुम्हें दूंगी कैसे ?

तुम्हारे मनको शायद मैं ठीकसे समझ नहीं सकी हूं, इसीसे इतना साहस कर रही हूं। और इसीसे, जब कि तुम मुझे छोड़कर चले गये तब भी मैंने खुद आगे बढ़कर तुम्हें चिट्ठी लिखी, और जब कि तुम चुप थे तब भी मैं अपने मनकी बात कहती गई। किन्तु मैंने अगर तुम्हें गलत समझा हो, तो क्या वह सिर्फ मेरा ही दोष है ? एक बार शुरूसे आखिर तक सब बातें सोच तो देखो, मैंने जो-कुछ समझा था सो क्या तुम्हींने नहीं समझाया ?

कुछ भी हो, गलत हो या सही, जो मैं लिख चुकी हूं वह मिटाया नहीं जा सकता, जो मैं दे चुकी हूं उसे वापस नहीं ले सकती, यही मेरा पछतावा है। छी छी, ऐसी लज्जाकी बात भी नारीके भाग्यमें बदी होती है ! किन्तु इसके मानी यह मत समझ लेना कि जो प्यार करता है वह अपने प्यारको बराबर अपदस्थ करने देगा ! यदि मेरी चिट्ठियोंकी तुम्हें जरूरत न हो, तो रहने दो,–अगर तुमने उत्तर नहीं दिया, तो बस यहीं खतम है।"

इसके बाद फिर महेन्द्रसे रहा नहीं गया। उसने सोचा, 'मैं आशाकी चिट्ठियोंसे नाराज होकर ही घर लौट रहा हूं। विनोदिनीने समझा होगा कि

मैं उसे भूलनेके लिए ही घर छोड़कर भागा हूं।' विनोदिनीकी इस स्पर्धाको हाथों-हाथ अप्रमाणित करनेके लिए ही महेन्द्रको उसी वक्त घर लौटनेका सङ्कल्प करना पड़ा।

इसी समय बिहारी आ गया। बिहारीको देखते ही महेन्द्रका भीतरका पुलक सहसा मानो दूना हो उठा। इसके पहले तरह-तरहके सन्देहोंसे भीतर ही भीतर बिहारीके प्रति उसकी ईर्षा बढ़ रही थी, और दोनोंकी मित्रता क्लिष्ट होने लगी थी। पत्र पढ़नेके बाद आज उसने अपना सम्पूर्ण ईर्षाभाव छोड़कर अतिरिक्त आवेगके साथ बिहारीको ग्रहण किया। कुरसीसे उठकर उसने बिहारीकी पीठ थपथपाकर, उसका हाथ पकड़कर, उसे अपने पास कुरसीपर बिठा लिया।

किन्तु बिहारीका चेहरा आज उदास था। महेन्द्रने सोचा, 'बेचारा इस बीचमें जरूर विनोदिनीसे मिला होगा, और वहाँसे धक्का खाकर यहाँ आया होगा। महेन्द्रने पूछा, "इधर तुम हमारे घर गये थे क्या?"

बिहारीने गम्भीर मुँहसे कहा, "अभी वहींसे आ रहा हूं।"

महेन्द्रने बिहारीकी वेदनाकी कल्पना करके मन-ही-मन जरा कुतूहल अनुभव किया। उसने अपने मनमें कहा, 'अभागा बिहारी! स्त्रियोंके प्रेमसे बिलकुल ही वञ्चित रहा बेचारा!" और फिर उसने अपनी छातीके पासकी जेबपर हाथ रखकर जरा मसककर देखा, भीतरसे तीनों चिट्ठियाँ खड़खड़ा उठीं।

महेन्द्रने पूछा, "कैसा देखा सबको?"

बिहारीने उसकी बातका कोई जवाब न देकर पूछा, "घर छोड़कर तुम यहाँ कैसे?"

महेन्द्रने कहा, "आजकल जो प्रायः नाइट-ड्यु टी पड़ती है, इसलिए, घरसे आने-जानेमें बड़ी परेशानी होती थी।"

बिहारीने कहा, "इसके पहले भी तो नाइट-ड्युटी पड़ा करती थी, तब तो तुम्हें घर छोड़ते नहीं देखा?"

महेन्द्र हँस दिया, बोला, "मनमें किसी तरहका सन्देह हो रहा है क्या?"

बिहारीने कहा, "नहीं, हँसीकी बात नहीं, चलो अब घर चलो।"

महेन्द्र घर लौटनेके लिए तैयार था ; किन्तु बिहारीका अनुरोध सुनकर मुकरने लगा,–मानो घर जानेका उसे कोई आग्रह ही न हो। बोला, "यह कैसे हो सकता है, बिहारी? फिर तो मेरा यह साल ही नष्ट हो जायगा।"

बिहारीने कहा, "देखो, भाई साहब, तुम्हें मैं बचपनसे देखता आया हूं, मुझे तुम गलत समझानेकी कोशिश न करो। यह तुम अन्याय कर रहे हो।"

महेन्द्रने कहा, "किसपर अन्याय कर रहा हूं, जज साहब?"

बिहारी नाराज होकर बोल उठा, "तुम हमेशासे अपने हृदयकी बड़ाई करते आये हो,–तुम्हारा वह हृदय अब चला कहाँ गया, भाई साहब?"

महेन्द्रने कहा, "फिलहाल कालेजके अस्पतालमें।"

बिहारीने कहा, "बस अब रहने दो, भाई साहब, रहने दो। तुम यहाँ मेरे साथ हँस-हँसकर बातें कर रहे हो, और आशा वहाँ चारों तरफ रोते-रोते प्राण दिये दे रही है।"

आशाके रोनेकी बात सुनते ही महेन्द्रके मनपर सहसा एक गहरी चोट पहुँची। संसारमें और भी किसीको कोई सुख-दुःख हो सकता है, महेन्द्रके नये नशेमें इस बातके लिए जगह ही नहीं मिली थी। आज सहसा उसका हृदय-मन चौंक पड़ा, बोला, "आशा रो क्यों रही है?"

बिहारीने झुंझलाकर कहा, "यह बात तुम्हें नहीं मालूम, मुझे मालूम है?"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारे 'भाई-साहब' सर्वज्ञ नहीं, इसके लिए गुस्सा होना हो तो उनके सृष्टिकर्तापर होना चाहिए।"

बिहारीके इस प्रबल आवेगको देखकर महेन्द्रको आश्चर्य हुआ। महेन्द्र जानता था कि बिहारीके 'हृदय' नामकी कोई बला नहीं। 'तो फिर उसे यह बीमारी कबसे हो गई? जिस दिन कुमारी आशाको देखने गया था उसी दिनसे क्या? बेचारा बिहारी!' महेन्द्रने मन-ही-मन बिहारीसे बेचारा जरूर कहा, किन्तु उसे दुःखका अनुभव नहीं हुआ, बल्कि कुछ मजा ही आया। आशाका मन एकान्तरूपसे किस तरफ है, इस बातको महेन्द्र निश्चित जानता था। 'दूसरोंके लिए जो कामनाकी वस्तु है किन्तु अधिकारके बाहर होनेसे

मिल नहीं सकती, मेरे आगे उसने हमेशाके लिए अपने आपको समर्पण कर दिया है'—इस बातका अनुभव करके मारे गर्वके वह फूला नहीं समाया।

महेन्द्रने बिहारीसे कहा, "अच्छा, चलो, कोई बात नहीं। एक गाड़ी मँगवाओ।"

२१

महेन्द्रके घरमें आते ही उसका मुँह देखकर आशाके मनका सम्पूर्ण संशय क्षणभंगुर कुहरेकी तरह क्षण-भरमें दूर हो गया। अपनी चिट्ठियोंकी बात याद करके महेन्द्रके आगे आशा मानो अपना मुँह ही नहीं उठा सकी। महेन्द्रने मीठी भर्त्सनाके साथ कहा, "इस तरह लाञ्छन-सा लगाते-हुए तुमने मुझे ऐसी उलाहना-भरी चिट्ठियाँ लिखीं कैसे?" कहते-हुए उसने अपनी जेबमेंसे तीनों चिट्ठियाँ निकाल लीं।

आशाने व्याकुल होकर कहा, "मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, इन्हें तुम फाड़ फेंको।" और महेन्द्रके हाथसे चिट्ठियाँ लेनेके लिए वह छीनाझपटी करने लगी। महेन्द्रने उसे रोकते-हुए चिट्ठियाँ जेबमें रख लीं। और बोला, "मैं तो पढ़ाईकी सुविधाके लिए गया, और तुमने और-ही कुछ समझ लिया! मुझपर सन्देह किया?"

आशाकी आँखें भर आइं, उसने कहा, "अबकी बार तुम मुझे माफ कर दो, अब मुझसे ऐसा कसूर कभी नहीं होगा।"

महेन्द्रने कहा, "कभी नहीं?"

आशाने कहा, "कब्भी नहीं।"

तब महेन्द्रने आशाको अपनी तरफ खींचकर उसकी भोली सूरतपर एक चुम्बन जड़ दिया।

आशाने कहा, "चिट्ठियाँ मुझे दो, फाड़ फेंकूं।"

महेन्द्रने कहा, "नहीं रहने दो।"

आशा विनयके साथ सोचने लगी, 'मेरे कसूरकी सजाके तौरपर चिट्ठियाँ इन्होंने अपने पास रख ली हैं।'

इन चिट्ठियोंके मामलेमें विनोदिनीसे आशाका मन जरा-कुछ फिर-सा गया। पतिके आगमन-संवादको लेकर वह सखीके पास आनन्द प्रकट करने नहीं गई, बल्कि उससे कुछ बची-बची ही रही। विनोदिनी भी इस बातको ताड़ गई और काम-काजके बहाने इनलोगोंसे दूर-ही-दूर रहने लगी।

महेन्द्रने सोचा, 'यह तो बड़ी विचित्र बात है! मैंने तो सोचा था कि अबकी बार विनोदिनी खास तौरसे मेरे सामने आयेगी, किन्तु हुआ उलटा। तो फिर उन चिट्ठियोंके मानी क्या हुए?'

महेन्द्रने अपने मनको इस बातके लिए काफी मजबूत कर लिया था कि वह नारी-हृदयका रहस्य जाननेकी कतई कोशिश नहीं करेगा,— उसने सोचा था, 'विनोदिनी अगर पास आनेकी कोशिश करेगी भी, तो मैं दूर रहूंगा।' किन्तु आज मन-ही-मन बोला, 'नहीं, यह तो ठीक नहीं हो रहा। ऐसा लगता है कि मानो हमलोगोंमें सचमुच ही कोई विकार आ गया हो। विनोदिनीके साथ सहज-स्वाभाविक ढंगसे बातचीत हँसी-मजाक और आमोद-प्रमोद करके इस संशयाच्छन्न उमसकी-सी स्थितिको खतम कर देना ही चाहिए।'

महेन्द्रने आशासे कहा, "अब तो मालूम होता है मैं ही तुम्हारी सहेलीकी 'आँखकी किरकिरी' बन गया हूं। आजकल उनके तो दर्शन ही दुर्लभ हो गये है!"

आशाने उदासीनतासे उत्तर दिया, "मालूम नहीं उसे क्या हो गया है।"

इतनेमें राजलक्ष्मी चली आईं और रुँधे-हुए गलेसे बोलीं, "बिपिनकी बहूने तो जानेकी ही ठान ली है, मानती ही नहीं!"

महेन्द्रने अपने चकित-भावको सम्हालते-हुए कहा, "क्यों मा?"

राजलक्ष्मीने कहा, "मालूम नहीं क्या बात है! अबकी तो वह जानेके लिए मेरे पीछे ही पड़ गई है। तू तो किसीकी खातिर करना जानता ही नहीं। भले-घरकी लड़की पराये घर पड़ी है, उसे अपना समझकर अपनाया नहीं जाय तो वह रहेगी क्यों?"

विनोदिनी अपने सोनेके कमरेमें बैठी बिछौनेकी चादर सीं रही थी। महेन्द्रने पहुंचते ही पुकारा, "किरकिरी!"

विनोदिनी संयत होकर बैठ गई, बोली, "क्या है, महेन्द्र-बाबू ?"

महेन्द्रने कहा, "यह क्या ! महेन्द्र अब 'बाबू' कबसे हो गया ।"

विनोदिनीने सिलाईकी तरफ नत दृष्टि रखकर कहा, "तो फिर आपसे क्या कहा करूँ ?"

महेन्द्रने कहा, "अपनी सखीको जो कहती हो,—'आँखकी किरकिरी'।"

विनोदिनीने पहलेकी तरह मजाकमें इसका कोई उत्तर नहीं दिया, अपनी चादर सींनेमें ही लगी रही ।

महेन्द्रने कहा, "मालूम होता है सखीके साथ पक्का-सच्चा सम्बन्ध हो गया है, इसीसे अब उस नामसे दूसरेसे सखापा नहीं जोड़ते बनता !"

विनोदिनीने जरा ठहरकर दाँतसे बचा-हुआ सिलाईका डोरा काटते-हुए कहा, "सो मैं क्या जानूं, आप ही जानें !" इतना कहकर उसने और-सब उत्तरोंको दबाते-हुए गम्भीर मुँहसे कहा, "कालेजके 'मेस'से अचानक लौट कैसे आये ?"

महेन्द्रने कहा, "सिर्फ मुरदे चीरकर और कितने दिन काट सकता था ?"

विनोदिनीने फिर दाँतसे सूत काटा और मुँह बगैर उठाये ही कहा, "अब शायद जिन्दोंकी जरूरत है !"

महेन्द्रने तय किया था कि आज वह विनोदिनीके साथ अत्यन्त सहज स्वाभाविक भावसे हास्य-परिहास और उत्तर-प्रत्युत्तर करके बातचीतका अच्छा सिलसिला जमा लेगा, किन्तु विनोदिनीकी तरफसे ऐसा एक गाम्भीर्यका भार उसपर हावी हो गया कि कोई हलका जवाब जी-जानसे कोशिश करनेपर भी उसकी जबानपर नहीं आया । विनोदिनी आज कैसा-तो एक तरहका कठिन दूरत्व रखती-हुई चल रही है, यह देखकर महेन्द्रका मन बड़े वेगके साथ उसकी तरफ बढ़ने लगा । उसकी इच्छा होने लगी कि कोई एक जोरका धक्का देकर इस व्यवधानको वह धूलमें मिला दे । विनोदिनीके अन्तिम वाक्याघातके विरुद्ध कोई प्रतिघात न करके महेन्द्रने उसके पास बैठकर कहा, "तुम हमलोगोंको छोड़कर जाना क्यों चाहती हो ? कोई अपराध बन पड़ा है हमसे ?"

विनोदिनीने जरा पीछे हटकर सिलाईसे मुँह उठाकर अपने विशाल उज्ज्वल

नेत्रोंको महेन्द्रके मुँहपर स्थापित करते-हुए कहा, "जरूरी काम तो सभीको होता है। आप जिन सबोंको घरमें छोड़कर कालेजके 'मेस' में गये थे, सो क्या किसीके अपराधसे गये थे? मुझे भी क्या नहीं जाना चाहिए? मेरा भी क्या कोई जरूरी काम नहीं हो सकता?"

महेन्द्रको इसका कोई अच्छा जवाब बहुत देर तक ढूँढ़े न मिला। कुछ देर ठहरकर उसने पूछा, "तुम्हारे ऐसा क्या जरूरी काम आ पड़ा कि बिना गये बने ही नहीं?"

विनोदिनीने अत्यन्त सावधानीसे सुईमें डोरा पिरोते-हुए कहा, "जरूरी काम कोई है या नहीं, सो तो अपना ही मन जान सकता है। आपके सामने उसकी अब क्या सूची पेश करूं!"

महेन्द्र गम्भीर चिन्तित मुँह लिये खिड़कीके बाहर दूरके एक नारियलके पेड़की चोटीकी तरफ देखता-हुआ बहुत देर तक चुप बैठा रहा। विनोदिनी चुपचाप बैठी सींती ही रही। कमरेकी यह हालत हो गई कि सुई गिरे तो आवाज सुनाई दे।

बहुत देर बाद महेन्द्र सहसा बोल उठा।

अकस्मात् निस्तब्ध नीरवता भङ्ग होनेसे विनोदिनी चौंक पड़ी, और उसकी उगलीमें सुई चुभ गई।

महेन्द्रने कहा, "तुम्हें अब क्या अनुनय-विनय करके भी किसी तरह नहीं रोका जा सकता?"

विनोदिनीने अपनी आहत उंगलीका रक्त-बिन्दु चूसते-हुए कहा, "इतना अनुनय-विनय आखिर है किसलिए? मैं रहूं तो क्या, और न रहूं तो क्या! आपका इससे क्या बनता-बिगड़ता है?" कहते-कहते उसका गला भारी हो आया; और फिर वह बहुत ज्यादा सिर झुकाकर बड़े ध्यानसे सिलाई करने लगी। ऐसा मालूम हुआ कि शायद उसकी झुकी-हुई आँखोंमें आँसू भर आये हों।

माघका अपराह्न उस समय सन्ध्याके अन्धकारमें बिला जानेकी तैयारी कर रहा था।

महेन्द्रने उसी क्षण विनोदिनीका हाथ पकड़कर गद्गद कण्ठसे कहा, "यदि उससे मेरा बनता-बिगड़ता हो, तो तुम रह जाओगी ?"

विनोदिनी जल्दीसे हाथ छुड़ाकर पीछे हट गई। महेन्द्रका भावावेगका नशा छूट गया। अपने अन्तिम शब्द गहरे व्यङ्गकी तरह उसके अपने ही कानोंमें बार-बार प्रतिध्वनित होने लगे। अपनी अपराधिनी जीभको उसने दाँतोंसे काट लिया, उसके बाद रसना उसकी चुप हो गई।

ठीक इसी समय उस निस्तब्ध कमरेमें आशाने प्रवेश किया। विनोदिनी उसी क्षण मानो पूर्व-कथोपकथनके सिलसिलेमें हँसती-हुई बोल उठी, "आपलोग जब कि मेरी इतनी कीमत बढ़ा रहे हैं तो मेरा भी कर्तव्य है कि आपकी बात मान जाऊं। जब तक आपलोग खुशीसे विदा नहीं करते तब तक मुझे रहना ही पड़ेगा।"

आशा पतिकी सफलतापर उत्फुल्ल होकर सखीसे लिपट गई। बोली, "तो यह बात पक्की रही!" और तुरत अपना हाथ बढ़ाकर कहने लगी, "रक्खो हाथपर हाथ, तीन बार बचन दो,--जब तक हमलोग विदा नहीं करते तब तक रहोगी, रहोगी, रहोगी।"

विनोदिनीने तीन बार वचन देकर प्रतिज्ञा की। आशाने कहा, "बहन किरकिरी, तुम्हें रहना तो पड़ा ही, फिर इतने मनावने क्यों कराये ? आखिर इनसे तो तुम्हें हार माननी ही पड़ी!"

विनोदिनीने हँसकर कहा, "क्यों लालाजी, मैंने हार मानी है या तुमने ?"

महेन्द्र अब तक स्तम्भित-सा हो रहा था। उसे ऐसा लग रहा था, मानो उसके अपराधसे सारा घर भर उठा है, लांछनाने मानो उसके सारे तन-मनको घेर लिया है। आशासे वह कैसे प्रसन्न मनसे स्वाभाविक ढंगसे बात करे ? एक क्षणमें वह कैसे अपने वीभत्स असंयमको सरल सरस हास्यालापमें बदल डाले ? ऐसा पैशाचिक इन्द्रजाल रचना उसके बूतेसे बाहरकी बात है। उसने गम्भीर मुँहसे कहा, "हार तो मेरी ही हुई है।" और फिर तुरत कमरेसे निकलकर बाहर चला गया।

कुछ देर बाद महेन्द्र फिर लौट आया, और विनोदिनीसे बोला, "मुझे क्षमा करो।"

विनोदिनीने कहा, "तुमने कसूर क्या किया है, लालाजी, जो क्षमा करूं!"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हें यहाँ जबरदस्ती बाँध रखनेका हमें कोई अधिकार नहीं।"

विनोदिनीने हँसते-हुए कहा, "जबरदस्ती की कब? मैंने तो नहीं देखी। प्रेमसे अच्छी तरह ही तो रहनेके लिए कहा है। इसका नाम जबरदस्ती थोड़े ही है! बताओ तो, बहन किरिकिरी, जबरदस्ती और प्रेम क्या एक ही चीज हुई?"

आशा उससे पूरी तरह सहमत होकर कहा, "हरगिज नहीं।"

विनोदिनीने कहा, "लालाजी, तुम्हारी इच्छा है कि मैं यहाँ रहूं, मेरे चले जानेसे तुम्हें कष्ट होगा,– यह तो मेरे लिए सौभाग्यकी बात है। क्यों बहन किरकिरी, संसारमें ऐसे सहृदय कितने मिलते हैं? और, किसी तरह अगर ऐसे व्यथामें व्यथित और सुखमें सुखी होनेवाला मित्र सौभाग्यसे मिल ही जाय, तो मैं भला उसे छोड़नेके लिए क्यों व्यस्त होने लगी!"

आशा अपने पतिको झेंपकर निरुत्तर रहते देख जरा-कुछ व्यथित चित्तसे बोली, "तुम्हारे साथ बातोंमें कौन जीत सकता है, बहन! उन्होंने तो हार मान ही ली है, अब तुम तो जरा चुप रहो।"

महेन्द्र फिर तेजीसे बाहर चला गया। ठीक समय बिहारी राजलक्ष्मीसे कुछ देर गपशप करके महेन्द्रकी खोजमें आ रहा था। महेन्द्र उसे दरवाजेके सामने देखते ही बोल उठा, "भाई बिहारी, मुझ जैसा पाखण्डी संसारमें शायद ही कोई हो!" यह बात उसने आवेगमें आकर ऐसे जोरसे कही कि वह कमरेके भीतरवालोंने भी सुन ली।

कमरेके भीतरसे उसी क्षण आह्वान आया, "बिहारी-लालाजी!"

बिहारीने कहा, "जरा ठहरो, भाभी,– अभी आया।"

विनोदिनीने कहा, "एक बार सुन तो जाओ!"

बिहारीने कमरेमें घुसते ही एक क्षणके लिए एक बार आशाकी तरफ देखा, घूँघटमेंसे आशाका मुँह जितना देख सका, उसमें विषाद या वेदनाका कोई चिह्न ही दिखाई नहीं दिया। आशाने उठके जानेकी कोशिश की तो विनोदिनीने उसे जबरदस्ती पकड़के बिठा लिया, और कहने लगी, "अच्छा लालाजी, मेरी 'आँखकी किरकिरी'के साथ क्या तुम्हारा सौतका नाता है? तुम्हें देखते ही यह भागना क्यों चाहती है?"

आशाने अत्यन्त लज्जित होकर विनोदिनीको नोंचते-हुए डाट दिया।

बिहारीने हँसते-हुए जवाब दिया, "विधाताने मुझे वैसा सुन्दर नहीं बनाया न, इसीसे!"

विनोदिनी बोली, "देख लिया, किरकिरी, बिहारी-लालाजी भी बचाकर बात करना जानते हैं। तेरी रुचिको दोष न देखकर विधातापर मढ़ दिया दोष। मगर लक्ष्मण-जैसा ऐसा सुलक्षण देवर पाकर भी तैंने उसकी कदर नहीं जानी! तेरा भाग्य ही खराब है।"

बिहारीने कहा, "इससे अगर तुम्हें मुझपर दया आती हो, भाभीजी, तो फिर मुझे अफसोस ही किस बातका?"

विनोदिनीने कहा, "समुद्र तो सामने पड़ा है, फिर भी मेघकी धाराके बिना चातककी प्यास क्यों नहीं बुझती!"

आशाको पकड़के नहीं रखा जा सका। वह जबरदस्ती विनोदिनीसे अपना हाथ छुड़ाकर चली गई। बिहारी भी जाना चाहता था। इतनेमें विनोदिनी बोल उठी, "लालाजी, महेन्द्र-बाबूको हो क्या गया है, बता सकते हो?"

सुनकर बिहारी ठिठककर खड़ा हो गया। बोला, "सो तो मैं नहीं जनता। कुछ हुआ है क्या?"

विनोदिनीने कहा, "क्या मालूम, लालाजी, मुझे तो लक्षण कुछ अच्छे नहीं दिखाई देते।"

बिहारी उद्विग्न होकर चौकीपर बैठ गया। और बातको खुलासा सुननेके लिए व्यग्रभावसे विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखने लगा।

विनोदिनी कोई बात न कहकर मन लगाकर अपना चादरा सीने लगी।

कुछ देर प्रतीक्षा करनेके बाद बिहारीने कहा, "महेन-भइयाके विषयमें कोई खास बात तुम्हारे लक्ष्यमें आई है क्या ?"

विनोदिनीने अत्यन्त साधारण-भावसे कहा, "क्या मालूम, लालाजी, मुझे तो कुछ अच्छा नहीं मालूम हो रहा है। मुझे अपनी 'आँखकी किरकिरी'के लिए बड़ी चिन्ता हो रही है।"

इतना कहकर उसने एक लम्बी साँस ली, और चादरा रखकर जानेके लिए उठ खड़ी हुई।

बिहारी व्यग्रताके साथ कह उठा, "भाभी, जरा बैठो।"

विनोदिनीने कमरेके सब दरवाजे-जंगले खोलकर लैम्पकी बत्ती जरा ऊँची कर दी, और सिलाईका चादरा लेकर अपने बिछौनेपर दूर कोनेमें जाकर बैठ गई। बोली, "लालाजी, मैं तो हमेशा यहाँ रहूंगी नहीं, पर मेरे चले जानेपर मेरी 'आँखकी किरकिरी' पर तुम जरा निगाह रखना,—वह असुखी न हो।" इतना कहकर मानो उसने अपने हृदयोच्छ्वासको रोकनेके लिए दूसरी तरफ मुँह फेर लिया।

बिहारी बोल उठा, "भाभी, तुम्हें यहाँ रहना ही होगा। संसारमें तुम्हारा अपना कहनेको कोई नहीं,—इस सरला बालिकाके सुख-दुःखकी रक्षाका भार तुम ले लो। तुम इसे छोड़कर चली जाओगी तो मुझे तो फिर कोई उपाय ही नहीं दीखता।"

विनोदिनी बोली, "लालाजी, तुम तो संसारकी रीति जानते हो। यहाँ मैं हमेशा कैसे रह सकती हूं। लोग क्या कहेंगे ?"

बिहारीने कहा, "लोग जो कहें सो कहते रहें, तुम उधर कान ही मत दो। तुम देवी हो, असहाय बालिकाकी संसारके निष्ठुर आघातोंसे रक्षा करना तुम्हारे ही उपयुक्त काम है। भाभी, मैंने तुम्हें पहले नहीं पहचाना था, इसके लिए मुझे क्षमा करना। मैंने भी सङ्कीर्णहृदय साधारण नीच लोगोंकी तरह तुम्हारे सम्बन्धमें अपने मनमें नीच धारणाको स्थान दिया था। और एक बार तो ऐसा भी समझ लिया था कि तुम आशाके सुखसे ईर्षा कर रही हो, और

चाहती हो,–किन्तु उस बातको जीभसे उच्चारण करना भी पाप है। उसके बाद, मुझे तुम्हारे देवी-हृदयका परिचय मिला और तुमपर गभीर भक्ति हो गई मेरी। इसीसे आज तुम्हारे आगे अपने समस्त अपराध स्वीकार किये बिना मुझसे रहा नहीं गया।

विनोदिनीका सारा शरीर पुलकित हो उठा। यद्यपि वह छलना कर रही थी, तो भी बिहारीके इस भक्ति-उपहारको मिथ्या समझकर वह अपने मनमें भी उसे लौटा न सकी। ऐसी चीज उसे कभी भी किसीसे नहीं मिली। क्षण भरके लिए उसे ऐसा लगा कि मानो वह वास्तवमें पवित्र है, उन्नत है, और आशाके प्रति एक प्रकारकी अनिर्देश्य दयासे उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। उन आँसुओंको उसने बिहारीसे छिपाया नहीं। उस अश्रुधाराने विनोदिनीमें ऐसा एक मोह उत्पन्न कर दिया कि जिससे वह स्वयं अपने आगे अपनेको पूजनीया समझने लगी।

विनोदिनीको आँसू गिराते देख बिहारी अपने आँसू रोकनेके लिए उठकर महेन्द्रके कमरेमें चला गया। महेन्द्रने सहसा अपनेको 'पाखण्डी' क्यों घोषित किया, बिहारीको इसका कोई तात्पर्य ढूंढ़े नहीं मिला। ऊपर महेन्द्रके कमरेमें जाकर उसने देखा, महेन्द्र नहीं है। मालूम हुआ कि वह बाहर घूमने गया है। पहले महेन्द्र बिना-कारण कभी भी घर छोड़कर बाहर नहीं जाता था। सुपरिचित आदमी और सुपरिचित घरके बाहर जानेमें महेन्द्रको अत्यन्त क्लान्ति और पीड़ा अनुभव होती थी। बिहारी अपने मनमें उधेड़-बुन करता हुआ अपने घर चला गया।

विनोदिनीने आशाको अपने कमरेमें ले जाकर, उसे छातीसे लगाकर आँखोंमें आँसू भरकर कहा, "बहन किरकिरी, मैं बड़ी अभागिन हूं, मैं बड़ी कुलक्षणी हूं।"

आशाने व्यथित होकर उसने अपने बाहु-पाशमें बांध लिया और स्नेहार्द्र कण्ठसे कहा, "क्यों बहन, ऐसी बात क्यों कर रही हो?"

विनोदिनी रोदनोच्छ्वसित शिशुकी तरह आशाकी छातीमें अपना मुँह

रखकर बोली, "मैं जहाँ भी रहूंगी वहाँ सिर्फ बुरा ही बुरा होगा। छोड़ दे, बहन, मुझे छोड़ दे, मुझे अपने जंगलमें जाकर रहने दे।"

आशाने विनोदिनीकी ठोड़ीसे हाथ लगाकर उसका मुँह ऊपर उठाते-हुए कहा, "मेरी लक्ष्मी बहन है न, ऐसी बात मुँहसे न निकाल, तेरे बिना मैं नहीं रह सकती। मुझे छोड़ जानेकी बात तेरे मनमें आई कैसे!"

इतनेमें अकस्मात् बिहारी आ गया। महेन्द्रसे जब उसकी भेंट नहीं हुई तो उसने सोचा कि किसी बहानेसे विनोदिनीके पास जाकर महेन्द्र और आशाके बीच पैदा होनेवाली आशङ्काके विषयमें कुछ जानकारी हासिल कर ली जाय तो अच्छा। और वह विनोदिनीसे इस बातका अनुरोध करनेके लिए कि महेन्द्रको वे कल सवेरे उसके घर जरूर भेज दें, वहीं खाना-पीना होगा, सीधा उसके कमरेमें चला आया। बिहारीके मुँहसे "विनोदा-भाभी" निकला ही था कि उसने सहसा लैम्पके उजालेमें बाहरसे ही देखा, दोनों सखियाँ आलिङ्गनबद्ध हैं और दोनोंकी आँखोंमें आँसू चमक रहे हैं। देखते ही वह ठिठककर खड़ा हो गया।

सहसा आशाको ऐसा लगा कि जरूर बिहारीने उसकी 'आँखकी किरकिरी' को कोई अनुचित बात कही होगी या कोई निन्दा की बात कही होगी, इसीसे फिर आज उसने इस तरह चले जानेकी बात उठाई है। उसने सोचा, बिहारी बाबू यह बड़ा अन्याय करते हैं। उनका मन साफ नहीं। आशा अस तुष्ट होकर कमरेसे बाहर निकल गई। और बिहारी भी विनोदिनीके प्रति अपनी भक्तिकी मात्रा बढ़ाकर विगलित-हृदयसे जल्दीसे अपने घर चला गया।

उस दिन रातको महेन्द्रने आशासे कहा, "चुन्नी, मैं कल सवेरेकी गाड़ीसे काशी जा रहा हूं।"

आशाकी छाती धड़क उठी, बोली, "क्यों?"

महेन्द्रने कहा, "बहुत दिनोंसे चाचीको नहीं देखा, एक बार मिल आऊं।"

सुनकर आशाको बड़ी लज्जा मालूम हुई,—यह बात बहुत पहले ही उसके मनमें उदित होनी चाहिए थी। अपने सुख-दुःखके आकर्षणमें स्नेहमयी

मौसीको भूले-हुए थी वह, किन्तु महेन्द्रने उस प्रवासिनी तपस्विनीकी याद की, इससे अपनेको वह कठोर-हृदया समझकर धिक्कारने लगी।

महेन्द्रने कहा, "चाची, अपने जीवनके एकमात्र 'स्नेहके धन' को मेरे ही हाथ सौंपकर चली गई हैं, एक बार उन्हें देखे बिना मेरा मन सुस्थिर नहीं हो सकता।"

कहते-कहते महेन्द्रका गला भर आया। स्नेहपूर्ण नीरव आशीर्वाद और अव्यक्त मङ्गल-कामनाके साथ बार-बार वह आशाके ललाट और माथेपर अपना दाहना हाथ फेरने लगा। आशा इस अकस्मात्-स्नेहावेगका सम्पूर्ण मर्म न समझ सकी, सिर्फ उसका हृदय विगलित हो उठा और आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे। आज ही शामको विनोदिनीने अकारण स्नेहातिशयसे उससे जो बातें कही थीं उनकी उसे याद उठ आई। महेन्द्र और विनोदिनीकी बातोंमें कहीं कोई सम्बन्ध है या नहीं, सो भी उसकी समझमें नहीं आया। किन्तु इतना उसने अवश्य अनुभव किया कि मानो यह उसके जीवनमें किसी बातकी सूचना है। अच्छी है या बुरी, कौन जाने!

भय-व्याकुल चित्तसे उससे महेन्द्रको अपने बाहुपाशमें आबद्ध कर लिया। महेन्द्र आशाकी उस अकारण आशङ्काके आवेशका अनुभव करने लगा। बोला, "चुन्नी, तुमपर तुम्हारी पुण्यवती मौसीका आशीर्वाद है, तुम्हें कोई डर नहीं। वे तुम्हारे ही मङ्गलके लिए अपना सर्वस्व त्यागकर चली गई हैं, तुम्हारा कभी भी कोई अकल्याण नहीं हो सकता।"

आशाने तब दृढ़चित्तसे सम्पूर्ण भय दूर कर दिया। पतिके इस आशीर्वादको उसने अक्षय-कवचके रूपमें ग्रहण किया। वह मन-ही-मन बार-बार अपनी मौसीकी पवित्र पदधूलि माथेसे लगाती रही, और एकाग्र मनसे कहने लगी, 'मौसी, तुम्हारा आशीर्वाद सदा मेरे पतिकी रक्षा करता रहे।"

दूसरे दिन महेन्द्र चला गया। विनोदिनीको कुछ भी नहीं कह गया। विनोदिनीने मन-ही-मन कहा, 'खुद तो अन्याय करना और गुस्सा मेरे ऊपर! ऐसा साधु तो मैंने कहीं नहीं देखा। पर ऐसा साधुपन ज्यादा दिन टिकता नहीं।'

२२

घर-गृहस्थीकी ममतासे दूर काशी-वासिनी अन्नपूर्णाने जो महेन्द्रको आते देखा, तो एक ओर जैसे वे स्नेहके आनन्दमें फूली न समाईं, दूसरी ओर वैसे उन्हें भय भी हुआ कि आशाको लेकर मासे महेन्द्रका कोई विरोध तो नहीं उठ खड़ा हुआ, जिसकी शिकायत लेकर वह यहाँ दौड़ा आया हो सान्त्वना पानेके लिए।

महेन्द्र बचपनसे ही सब तरहके सङ्कट और सन्तापके समय अपनी चाचीकी शरण लेता आया है। पहले वह किसीसे गुस्सा हो जाता था तो अन्नपूर्णा उसे समझाकर शान्त कर देती थीं, या किसी बातसे उसके मनमें कोई दुःख बैठ जाता था तो वे महेन्द्रको उसे सह लेनेका उपदेश देती थीं, और महेन्द्र उसे मान लेता था। किन्तु ब्याहके बादसे महेन्द्रके जीवनमें जो सबसे बड़ा सङ्कटका कारण बन गया है, उसके प्रतिकारकी चेष्टा तो दूर रही, उसमें किसी प्रकारकी सान्त्वना देना भी अन्नपूर्णाके लिए बूतेके बाहरकी बात हो गई है। असलमें, अन्नपूर्णाको जब इस बातका पक्का निश्चय हो गया कि इस विषयमें वे चाहे कितनी ही सावधानीसे हस्तक्षेप क्यों न करें, उससे घरमें अशान्ति बढ़नेके सिवा घटेगी बिलकुल नहीं, तभी वे घर छोड़कर काशी चली आई थीं। बीमार बच्चा जब पानीके लिए रोता है और वैद्यकी तरफसे पानी देनेकी सख्त मनाही होती है, तब पीड़ित चित्तसे मा जैसे दूसरे कमरेमें चली जाती है, अन्नपूर्णा भी ठीक उसी तरह घरसे बहुत दूर प्रवासमें चली आई थीं। दूर तीर्थ-वासमें रहकर धर्म-कर्मके नियमित अनुष्ठानोंमें इधर कुछ दिनोंसे वे घरको बहुत-कुछ भूले-हुए थीं, — अब महेन्द्र क्या फिर उन-सब विरोधकी बातोंको छेड़कर उनके प्रच्छन्न घावमें चोट पहुंचानेके लिए यहाँ तक दौड़ा आया है?

किन्तु महेन्द्रने आशा और माके विषयमें कोई चर्चा ही नहीं की। तब अन्नपूर्णाकी आशङ्का दूसरी तरफ मुड़ी। जो महेन्द्र आशाको छोड़कर कालेज नहीं जा सकता था वह आज चाचीकी खबर लेने काशी कैसे चला आया? तो

क्या आशाके प्रति महेन्द्रका आकर्षण ढीला होता जा रहा है ? अन्तमें महेन्द्रसे उन्होंने कुछ आशङ्काके साथ पूछा, "महेन, तुझे अपनी चाचीकी सौगन्द है, सच-सच बताना, चुन्नी अच्छी तरह है ?"

महेन्द्रने कहा, "हाँ, सब अच्छी तरह हैं।"

अन्नपूर्णाने फिर पूछा, "आजकल वह रहती कैसे है ? तुमलोगोंका लड़कपन वैसी ही बना-हुआ है या काम-काज भी कुछ सम्हालने लगे हो ?"

महेन्द्रने कहा, "लड़कपन अब बिलकुल ही जाता रहा है। सब झगड़ोंकी असल जड़ वो 'चारु पाठ' किताब न-जाने कहाँ गायब हो गई, कुछ पता ही नहीं। तुम रहतीं तो देखकर खुश होतीं कि पढ़ने-लिखनेमें स्त्रियोंको जितनी लापरवाही करनी चाहिए, चुन्नीने अपने उस कर्तव्यमें जरा भी लापरवाही नहीं की।"

अन्नपूर्णाने कहा, "बिहारी क्या करता है ?"

महेन्द्रने कहा, "अपना काम छोड़कर बाकी सब करता है। नायब-गुमाश्ते जमीन-जायदादका काम देखते हैं,—किस दृष्टिसे देखते हैं, सो मैं नहीं कह सकता। उसका तो हमेशासे यही हाल है। उसका निजका काम और-लोग देखते हैं, और औरोंका काम वह खुद देखता है।"

अन्नपूर्णाने कहा, "अच्छा महेन, वो क्या ब्याह करेगा ही नहीं ?"

महेन्द्रने मुसकराते-हुए कहा, "कहाँ, कोई लक्षण तो नहीं दिखाई देता।"

सुनकर अन्नपूर्णाके हृदयके गुप्त स्थानमें चोट पहुंची। वे निश्चित जान गई हैं कि उनकी बहनौतको देखकर एक बार बिहारी बड़े आग्रहके साथ ब्याह करनेको तैयार हो गया था, किन्तु उसका वह उन्मुख आग्रह अन्याय-पूर्वक अकस्मात् दलित कर दिया गया है। बिहारीने कहा था, "चाची, मुझसे अब कभी भी ब्याह करनेका अनुरोध न करना।" व्यथित-हृदयके वे शब्द अब भी अन्नपूर्णाके कानोंमें गूंज रहे थे। अपने उस एकान्त अनुगत स्नेहपात्र बिहारीको वे ऐसी भग्न-हृदयकी दशामें छोड़कर चली आई हैं, उसे किसी तरहकी सान्त्वना भी नहीं दे आ सकीं—इससे अन्नपूर्णा अत्यन्त विमर्ष और भयभीत होकर सोचने लगीं, 'अब भी क्या बिहारीका मन आशाके प्रति आकृष्ट है' ?

महेन्द्र कभी हँसी-हँसीमें और कभी गम्भीरताके साथ घरके आधुनिकतम सभी संवाद सुनाता रहा, किन्तु विनोदिनीका उसने उल्लेख तक नहीं किया।

इस समय कालेज खुला-हुआ है, लिहाजा काशीमें उसे ज्यादा दिन नहीं ठहरना चाहिए। किन्तु कठिन रोगके बाद स्वास्थ्यकर आब-हवामें जाकर आरोग्य-लाभ करनेमें जो सुख होता है, महेन्द्र काशीमें अन्नपूर्णाके पास रहकर उसी सुखका प्रतिदिन अनुभव कर रहा था, इसलिए कलकत्ते जानेकी बात उसके मनमें ही न आई। उसके मनमें अपने साथ अपना जो एक विरोध पैदा होने लगा था, देखते-देखते वह दूर हो गया। इधर कई दिनोंसे सर्वदा धर्मपरायणा अन्नपूर्णाकी स्नेहमयी मुखच्छवि देखते-देखते घर-गृहस्थीका कर्तव्य-पालन उसे इतना सहज और सुखकर मालूम होने लगा कि उसके पहलेके आतङ्ककी याद करके उसे हँसी आने लगी। उसे ऐसा लगने लगा कि विनोदिनी कुछ भी नहीं है। यहाँ तक कि उसके चेहरेको भी वह अपने मनमें स्पष्ट रूप न दे सका। अन्तमें महेन्द्र काफी जोरके साथ मन-ही-मन कहने लगा, 'आशाको मेरे हृदयसे एक बाल-बराबर भी हटा सके, संसारमें ऐसा तो मुझे कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता।'

महेन्द्रने अन्नपूर्णासे कहा, "चाची, कालेजमें मेरी गैरहाजरी बढ़ती जा रही है, – अब मुझे जाना चाहिए। यद्यपि तुम घरकी ममता त्यागकर इतनी दूर एकान्तमें आकर रह रही हो, तो भी आज्ञा दो, कभी-कभी आकर मैं तुम्हारी चरणोंकी धूल ले जाया करूँ।"

महेन्द्रने घर आकर जब आशाको उसकी मौसीकी तरफसे दो स्नेहोपहार दिये – सिन्दूरकी डिबिया और सफेद पत्थरकी छोटी-सी घण्टी – तब उसकी आँखोंसे झरझर आँसू झरने लगे। मौसीके परम स्नेहमय धैर्य और उनपर अपने और सासके उपद्रवोंकी याद करके आशाका हृदय व्याकुल हो उठा। उसने पतिसे कहा, "मेरी बड़ी इच्छा होती है कि मैं भी एक बार मौसीके पास जाकर उनसे क्षमा माँग आऊं और उनके चरणोंकी धूल ले आऊं। तुम मेरी इतनी-सी प्रार्थनाको क्या किसी भी तरह पूरी नहीं कर सकते?"

महेन्द्र आशाकी वेदनाको समझ गया, और कुछ दिनके लिए उसे मौसीके पास काशी भेजनेको राजी भी हो गया; किन्तु फिरसे कालेजकी गैरहाजरी करके आशाको काशी पहुंचानेमें उसका मन दुबिधा करने लगा।

आशाने कहा, "मेरी ताईजी जल्दी ही काशी जानेवाली हैं, उनके साथ भेज दो तो क्या हर्ज है?"

महेन्द्रने मासे जाकर कहा, "मा, बहू एक दफे काशी जाना चाहती है, चाचीसे मिलने?"

राजलक्ष्मीने श्लेष-वाक्यमें कहा, "बहू जाना चाहती हैं तो जरूर जायेंगी, जाओ, उन्हें ले जाओ।"

महेन्द्रने फिर अन्नपूर्णाके पास जाना-आना शुरू कर दिया है, यह राजलक्ष्मी को अच्छा नहीं लगा। बहूके जानेकी बात सुनकर वे भीतर-ही-भीतर और भी नराज हो उठीं।

महेन्द्रने कहा, "मेरा कालेज चालू है, मैं नहीं जा सकूँगा। उसके ताऊ जा रहे हैं, उनके साथ चली जायगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "यह तो और भी अच्छी बात है! 'ताऊ'लोग बड़े आदमी ठहरे, हम जैसे गरीबोंकी कभी छाया तक नहीं छूते,– बहूरानी अगर उनके साथ जा सकीं, तो हमारा कितना गौरव बढ़ेगा!"

इस तरह उत्तरोत्तर माके श्लेष-वाक्य सुनते-सुनते महेन्द्रका मन सहसा कठोर होकर मुड़ खड़ा हुआ। उसने माको कोई उत्तर न देकर आशाको काशी भेजनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली, और बड़ी तेजीसे वहाँसे चल दिया।

बिहारी जब राजलक्ष्मीसे मिलने आया, तब उन्होंने उससे कहा, "सुन लिया, बिहारी, हमारी बहूरानी काशी जाना चाहरी हैं!"

बिहारीने कहा, "तुम कहती क्या हो, मा! महेन-भइया फिर कालेजका हर्ज करके काशी जायेंगे?"

राजलक्ष्मीने कहा, "नहीं नहीं, महेन क्यों जाने लगा! तब फिर बीबीका 'बीबियाना' कहाँ रहा? महेन्द्र यहीं रहेंगे, बहूरानी अपने ताऊ महाराजके साथ काशी पधारेंगी! अब क्या है, बिहारी, सब 'साहब-बीबी' बने जाते हैं!"

बिहारी भीतर-ही-भीतर उद्विग्न हो उठा, किन्तु आधुनिक साहबी-फैशनकी दुश्चिन्ता उसका कारण नहीं। बिहारी सोचने लगा, 'मामला क्या है? महेन्द्र जब काशी गया तब आशा यहीं रही, और महेन्द्र जब यहाँ आया तब आशा काशी जाना चाहती है! तो क्या दोनोंके बीच कोई जबरदस्त मनमुटाव हो गया है? किन्तु इस तरह कितने दिन चलेगा? मित्र होकर भी मैं क्या इसका कोई प्रतिकार नहीं कर सकता, दूर खड़ा तमाशा देखता रहूंगा?'

माताके व्यवहारसे अत्यन्त क्षुब्ध होकर महेन्द्र अपने सोनेके कमरेमें जाकर बैठा था। इस बीचमें विनोदिनी महेन्द्रसे मिली नहीं थी, इसलिए आशा बगलके कमरेमें बैठी विनोदिनीसे महेन्द्रके पास चलनेके लिए अनुरोध कर रही थी।

इतनेमें बिहारीने आकर महेन्द्रसे कहा, "आशा-भाभीका काशी जाना क्या तय हो चुका है?"

महेन्द्रने कहा, "होता क्यों नहीं? बाधा क्या है?"

बिहारीने कहा, "बाधाकी बात कौन कह रहा है? किन्तु अचानक ऐसी खामखयाली तुमलोगोंके दिमागमें आई कैसे?"

महेन्द्रने कहा, "मौसीसे मिलनेकी इच्छा या प्रवासी आत्मीय-जनोंके लिए व्याकुलता दिमागमें आना कोई विचित्र बात नहीं,—मानव-चरित्रमें कभी-कभी ऐसा हुआ ही करता है।"

बिहारीने कहा, "तुम साथ जा रहे हो?"

प्रश्न सुनते ही महेन्द्र ताड़ गया कि महेन्द्र शायद इसी बातकी आलोचना करने आया है कि ताऊके साथ आशाका काशी जाना उचित नहीं।' इसलिए उसने इस डरसे कि बात-बातमें बात न बढ़ जाय और उसका क्रोध उग्र न हो उठे, संक्षेपमें कह दिया, "नहीं।"

बिहारी महेन्द्रको पहचानता है। उसका भीतरी गुस्सा बिहारीसे छिपा न रहा। बिहारी यह भी जानता है कि एक बार वह जिद पकड़ ले तो फिर उसे विचलित नहीं किया जा सकता। इसलिए फिर उसने महेन्द्रके जानेकी बात नहीं छेड़ी। वह सोचने लगा, 'बेचारी आशा अगर अपनी मानसिक वेदनाका बोझ लिये-हुए ही काशी जा रही हो, तो उसे बहुत-कुछ सान्त्वना

मिल सकती है।' और फिर वह धीरेसे बोला, "साथमें विनोदा-भाभी जायें तो कैसा?"

महेन्द्र गरज उठा, बोला, "बिहारी! तुम अपने मनकी बात साफ-साफ कह डालो। मेरे साथ छल-छन्द करनेकी कोई जरूरत नहीं। मैं जानता हूं, तुम भीतर-ही-भीतर मुझपर सन्देह करते हो कि मैं विनोदिनीसे प्रेम करता हूं। मैं प्रेम नहीं करता। मेरी रक्षाके लिए तुम्हें पहरा देते-फिरनेकी जरूरत नहीं। तुम अब अपनी रक्षा करो। यदि सरल मित्रताका भाव तुम्हारे मनमें होता, तो बहुत दिन पहले तुम मुझसे अपने मनकी बात कह देते, और अपनेको मित्रके अन्तःपुरसे बहुत दूर ले जाते। मैं तुम्हारे मुँहपर साफ-साफ कहता हूं, तुम आशासे प्रेम करते हो।"

जबरदस्त चोट या दर्दके स्थानको दोनों पाँवोंसे रोंद देनेसे आहत व्यक्ति जैसे एक क्षण भी विचार न करके तुरत आघातकारीको जोरसे धक्का देकर फेंक देनेकी कोशिश करता है, रुद्धकण्ठ बिहारी भी उसी तरह अपना सफेद-फक मुँह लिये कुरसीसे उठकर महेन्द्रकी तरफ झपटा, किन्तु दूसरे ही क्षण सहसा ठिठक कर बड़ी मुश्किलसे गलेसे आवाज निकालकर बोला, "ईश्वर तुम्हें क्षमा करें, मैं जाता हूं।" और लड़खड़ाता-हुआ घरसे बाहर निकल गया।

बगलके कमरेमेंसे बाहर निकलकर विनोदिनीने पीछेसे पुकारा, "बिहारी लालाजी!"

बिहारीने दीवारके सहारे खड़े होकर जरा हँसनेकी कोशिश करते-हुए कहा, "क्या है, विनोदा-भाभी!"

विनोदिनीने कहा, "लालाजी, 'आँखकी किरकिरी' के साथ मैं भी काशी जाऊँगी।"

बिहारीने कहा, "नहीं नहीं, भाभी, सो नहीं होगा, हरगिज नहीं होगा। तुमसे मैं विनती करता हूं, मेरी बातपर तुम कुछ भी मत करना। मैं यहाँका कोई भी नहीं हूं, मैं यहाँकी किसी भी बातमें दखल नहीं देना चाहता, इससे अच्छा नहीं होगा। तुम देवी हो, तुम जो अच्छा समझो करो,— मैं चल दिया।"

इतना कहकर बिहारीने विनोदिनीको विनम्र नमस्कार किया ; और चल दिया।

विनोदिनीने उसे टोकते-हुए कहा, "मैं देवी नहीं, लालाजी, सुन जाओ। तुम्हारे चले जानेसे किसीको भी भलाई नहीं होगी। पीछे मुझे दोष न देना!"

बिहारी चला गया। महेन्द्र स्तम्भित-हुआ बैठा था। विनोदिनी उसपर अग्निमय वज्रके समान एक कठोर कटाक्ष फेंकती-हुई बगलके कमरेमें चली गई। उस कमरेमें आशा असह्य लज्जा और सङ्कोचके मारे मरी जा रही थी। बिहारी उससे प्रेम करता है—यह बात महेन्द्रके मुँहसे सुनकर उससे अपना मुँह उठाये नहीं उठ रहा था। किन्तु उसपर विनोदिनीको आज दया नहीं आई। आशा अगर उस समय आँख उठाकर विनोदिनीकी तरफ देखती तो वह डर जाती। विनोदिनीपर मानो खून सवार हो गया हो, मानो घर-भरको वह इसी क्षण भस्म कर देना चाहती हो! मानो मन-ही-मन वह कह रही हो, 'हाँ हाँ, झूठ है, सब झूठ है! मुझसे कोई नहीं प्रेम करता! सब-कोई इसी लज्जावती मोमकी गुड़ियासे प्रेम करते हैं!'

महेन्द्रने उस दिन जो आवेगमें आकर बिहारीसे कह डाला था कि "मैं पाखण्डी हूँ" उसके लिए आवेश शान्त होनेके बादसे वह बिहारीके आगे कुछ लज्जित-सा रहता था। वह समझ रहा था कि उसकी सभी बातें मानो व्यक्त हो गई हैं। वह विनोदिनीको नहीं चाहता, किन्तु बिहारी समझ गया है कि वह चाहता है, इससे बिहारीपर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा था। खासकर उस घटनाके बादसे जितनी भी बार बिहारी उसके सामने आता था उतनी ही बार उसे ऐसा लगता था कि बिहारी मानो कुतूहलके साथ उसके भीतरकी बातोंका पता लगाता फिर रहा है। उसका यह सन्देहमय क्रोध उत्तरोत्तर जमता ही चला जा रहा था,—और आज जरा-सा आघात लगते ही वह फूट पड़ा।

किन्तु विनोदिनीका बगलके कमरेमेंसे इस तरह व्याकुलताके साथ दौड़कर आना, इस तरह आर्त कण्ठसे बिहारीको रोकनेकी कोशिश करना और बिहारीके आदेशानुसार आशाके साथ काशी जानेको तैयारी हो जाना—ये सब बातें

महेन्द्रके लिए कल्पनातीत थीं। इस दृश्यने महेन्द्रको प्रबल आघातसे विह्वल कर दिया। उसने कहा था कि वह विनोदिनीको नहीं चाहता, किन्तु उसने जो कुछ सुना, जो-कुछ देखा, उसने उसे सुस्थिर नहीं रहने दिया, उसे वह चारों तरफसे विचित्र-रूपसे पीड़न करने लगा। महेन्द्र बार-बार निष्फल परितापके साथ सोचने लगा, 'विनोदिनीने मेरे मुँहसे सुन लिया कि मैं उसे नहीं चाहता!'

२३

महेन्द्र सोचने लगा कि मैंने कहा है, 'झूठ बात है,—मैं विनोदिनीको नहीं चाहता।' बहुत ही कठोरतासे कहा है। 'मैं उससे प्रेम करता हूं'—यह न सही, किन्तु 'मैं उससे प्रेम नहीं करता'—यह तो बड़ी कठोर बात है। ऐसी स्त्री कौन है जिसे इस बातसे चोट न पहुंचे? इसके विरुद्ध प्रतिवाद करनेका अवसर कब और कहां मिलेगा? यह बात ठीकसे नहीं कही जा सकती कि 'मैं उसे चाहता हूं', किन्तु 'मैं नहीं चाहता' इस बातको जरा हलकी करके नरम करके जताना जरूरी था। विनोदिनीके मनमें ऐसी एक निष्ठुर किन्तु गलत धारणा होने देना अन्याय है।

सोचते-सोचते महेन्द्र अपने बक्समेंसे फिर उन तीनों चिट्ठियोंको निकालकर पढ़ने लगा। और मन-ही-मन कहने लगा, 'विनोदिनी मुझसे प्यार करती है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु कल वह बिहारीके आगे इस तरह क्यों आ पड़ी? सिर्फ मुझे दिखानेके लिए? मैंने जब कि उससे स्पष्ट ही कह दिया था कि मैं उसे नहीं चाहता, तो वह किसी मौकेसे मेरे प्रेमको न ठुकराती तो क्या करती? इस तरह मुझसे अवमानित होकर शायद वह बिहारीसे प्रेम कर भी सकती है।'

महेन्द्रका क्षोभ इतना ज्यादा बढ़ता गया कि अपनी चञ्चलतासे वह खुद ही विस्मित और भयभीत हो उठा। मान लो, विनोदिनीने सुन ही लिया कि महेन्द्र उससे प्यार नहीं करता, तो उसमें दोष क्या हो गया? मान लो, इस बातसे अभिमानिनी विनोदिनी महेन्द्रकी तरफसे अपना मन खींच लेनेकी कोशिश करेगी, तो इससे उसका नुकसान क्या? आंधी-तूफानके समय नावकी जंजीर जैसे लंगरको जोरसे खींचे रहती है, महेन्द्र वैसी ही व्याकुलताके साथ

साथ आशाको मानो जरूरतसे ज्यादा जोर लगाकर पकड़े रहनेकी कोशिश करने लगा।

रातको महेन्द्रने आशाको अपनी छातीके पास खींचते-हुए कहा, "चुन्नी, तुम मुझे कितना प्यार करती हो, ठीक-ठीक बताना ?"

आशा सोचने लगी, 'यह कैसा सवाल ? बिहारीको लेकर जो अत्यन्त लज्जाजनक बात उठी है, उसीसे क्या उसपर ऐसी सन्देहकी छाया पड़ रही है ? उसने मारे शरमके मरकर कहा, "छी छी, आज तुम ऐसा सवाल क्यों कर रहे हो ? मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूं, तुम मुझसे खुलासा कहो, मेरे प्यारमें तुमने कब कहाँ क्या कमी पाई है ?"

महेन्द्रने आशाको पीड़ित करके उसका माधुर्य निकाल लेनेकी गरजसे कहा, "तो फिर तुम काशी क्यों जाना चाहती हो ?"

आशाने कहा, "मैं काशी नहीं जाना चाहती,– मैं कहीं भी नहीं जाना चाहती।"

महेन्द्रने कहा, "इसके पहले तो जाना चाहती थीं ?"

आशाने अत्यन्त व्यथित होकर कहा, "तुम्हें तो मालूम है, मैं क्यों जाना चाहती थी।"

महेन्द्रने कहा, "मुझे यहाँ अकेला छोड़कर अपनी मौसीके पास शायद तुम ज्यादा आरामसे रहतीं ?"

आशाने कहा, "नहीं, कभी नहीं। मैं वहाँ आरामके लिए नहीं जाना चाहती थी।"

महेन्द्रने कहा, "मैं सच कहता हूं, चुन्नी, तुम और-किसीसे ब्याह करतीं तो बहुत ज्यादा सुखी हो सकती थीं।"

इस बातको सुनते ही आशा क्षणमें महेन्द्रकी छातीके पाससे हटकर तकियेसे मुँह ढककर, पत्थरकी तरह निश्चेष्ट हो रही; और दूसरे ही क्षण अपने रोनेको वह रोके न रोक सकी। महेन्द्रने सान्त्वना देनेके लिए उसे छातीसे लगानेकी कोशिश की, किन्तु आशाने तकिया नहीं छोड़ा। पतिव्रताके इस अभिमानसे महेन्द्र सुखसे गर्वसे धिक्कारसे क्षुब्ध हो उठा।

जो बातें अब तक भीतर-ही-भीतर आभासके रूपमें थीं, उन-सबने सहसा स्पष्ट शब्दोंमें परिस्फुट होकर सबके मनमें एक तरहकी हलचल मचा दी। विनोदिनी अपने मनमें सोचने लगी, 'ऐसे स्पष्ट दोषारोपके विरुद्ध बिहारीने कोई प्रतिवाद क्यों नहीं किया? बिहारी अगर झूठा प्रतिवाद भी करता, तो भी विनोदिनी शायद कुछ खुश ही होती। अच्छा हुआ, महेन्द्रने बिहारीको जो चोट पहुँचाई है वह उसे मिलनी ही चाहिए थी। बिहारी सरीखा ऐसा महान पुरुष क्यों आशासे प्रेम करेगा? अच्छा हुआ, इस चोटने बिहारीको दूर ढकेल दिया, यह अच्छा ही हुआ।' इससे विनोदिनी मानो निश्चिन्त हो गई।

किन्तु बिहारीका वह मृत्यु-बाणाहत रक्तहीन सफेद-फक्क चेहरा विनोदिनीके सब काममें मानो उसके पीछे-पीछे फिरने लगा। विनोदिनीके भीतर जो सेवा-परायणा नारी-प्रकृति थी वह उस आर्त मुखको देख-देखकर रोने लगी। रुग्न बच्चेको मा जैसे अपनी छातीके पास हिलाती-बहलाती रहती है, उसी तरह उस आतुर मूर्तिको विनोदिनी अपने हृदयमें रखकर हिलाने-बहलाने लगी। उसे स्वस्थ करके उस चेहरेपर फिर रक्तकी झलक, प्राणोंका प्रवाह, हास्यका विकाश देखनेके लिए विनोदिनीमें एक तरहकी अधीर उत्सुकता पैदा हो गई।

दो-तीन दिन तक सब कामोंमें इस तरह उन्मना रहनेके बाद विनोदिनीसे फिर रहा नहीं गया। उसने बिहारीके नाम एक सान्त्वनाका पत्र लिखा। उसमें लिखा :—

"लालाजी, जबसे मैंने तुम्हारा उस दिनका सूखा चेहरा देखा है तबसे मैं बराबर प्राण-मनसे यही कामना कर रही हूं कि तुम स्वस्थ होओ, तुम जैसे थे वैसे ही हो जाओ। तुम्हारी वह सहज-सरल हँसी अब मैं कब देखूँगी, तुम्हारी वे उदार बातें अब मैं कब सुनूँगी? तुम कैसे हो, दो लाइन लिखकर मुझे जता देना। तुम्हारी—

विनोदा-भाभी।"

विनोदिनीने दरवानके हाथ चिट्ठी बिहारीके घर भिजवा दी।

बिहारीने कभी स्वप्नमें भी इस बातकी कल्पना नहीं की थी कि उसके और आशाके विषयमें महेन्द्र कभी भी इतना रूढ़ होकर ऐसे गर्हित ढंगसे ऐसी बात

मुँहसे निकाल सकता है कि 'आशासे बिहारी प्रेम करता है!' कारण, उसने खुद भी कभी ऐसी बातको स्पष्टतः मनमें स्थान नहीं दिया। पहले तो वह वज्राहत-सा हो गया, उसके बाद क्रोधसे घृणासे फड़फड़ाता-हुआ कहने लगा, "यह अन्याय है, असङ्गत है, बेबुनियाद है।"

किन्तु बात जब कि एक बार उच्चारित हो चुकी है तब उसे फिर पूरी तरह मारके मिटाया नहीं जा सकता। उसमें जितना-सा भी सत्यका बीज था वह देखते-देखते अंकुरित हो उठने लगा। एक दिन वह 'लड़की देखने' महेन्द्रके साथ श्यामबाजार गया था ; और वहाँ सूर्यास्तके समय बगीचेसे उच्छ्वसित पुष्प-सुगन्ध-प्रवाहमें उसने जिस लज्जिता बालिकाके सुकुमार मुखड़ेको बिलकुल अपना समझकर विगलित अनुरागके साथ देखा था, आज उसीकी उसे बार-बार याद आने लगी और अपनी छातीके पास वह कैसा-तो एक भारी बोझ-सा अनुभव करने लगा। उसे ऐसा लगा, मानो एक अत्यन्त कठिन वेदना उसके हृदयसे लेकर कण्ठ तक आलोड़ित हो रही हो। बहुत रात तक छतपर पड़े-पड़े और मकानके सामनेके रास्तेपर तेजीसे टहलते-टहलते उसके मनमें अब तक जो अव्यक्त था वह व्यक्त हो उठा। जो संयत था वह उद्दाम हो उठा। अपने आगे भी जिसका कोई प्रमाण नहीं था, महेन्द्रकी बातसे विराट प्राण पाकर वह बिहारीके भीतर-बाहर सर्वत्र व्याप्त हो गया।

तब उसने अपनेको अपराधी समझा। और मन-ही-मन कहा, 'मेरे लिए अब नाराज होना तो शोभा नहीं देता, महेन्द्रसे क्षमा माँगनेके बाद ही मुझे उससे विदा लेनी चाहिए। उस दिन मैं इस तरह चला आया, मानो महेन्द्र दोषी हो और मैं विचारक।—अपने उस अन्यायको मैं स्वीकार कर आऊँगा।'

बिहारी समझता था कि आशा काशी चली गई होगी। एक दिन शामके वक्त वह आहिस्ते-आहिस्ते टहलता-हुआ महेन्द्रके घरके सामने उपस्थित हुआ। राजलक्ष्मीके दूर-सम्पर्कके मामा साधुचरण सामने मिल गये, तो बिहारीने उनसे पूछा, "इधर कई दिनोंसे मैं आ नहीं सका,— यहाँकी खबर तो सब अच्छी है?" साधुचरणने सबका कुशल-संवाद जता दिया।

बिहारीने पूछा, "बहू काशी कब गईं?"

साधुचरणने कहा, "अभी नहीं गईं,– अब शायद जायेंगी भी नहीं।"

सुनते ही, कोई बाधा न मानकर बिहारीका मन अन्तःपुरकी तरफ दौड़ चला। पहले वह जैसे सहज-स्वाभाविक भावसे, जैसे आनन्दसे, आत्मीयकी तरह परिचित जीनेसे खटाखट सीढ़ियाँ चढ़ता-हुआ भीतर चला जाया करता था, सबके साथ स्निग्ध कौतुकसे हास्यलाप किया करता था, मनमें किसी तरहका खयाल ही नहीं उठता था, आज उन सब बातोंको अपने लिए अवैध और दुर्लभ समझकर ही उसका चित्त मानो उन्मत्त हो उठा। आज और-एक बार, अन्तिम बार उसी तरह भीतर जाकर घरके लड़केकी तरह राजलक्ष्मीसे बातचीत करके, एक बार घूँघटसे आवृत आशासे 'भाभी' कहकर दो-चार तुच्छ बातें कर आना उसके लिए परम आकांक्षाका विषय हो उठा।

साधुचरणने कहा, अँधेरेमें खड़े कैसे रह गये, भई, चलो भीतर चलो।"

मामाकी बात सुनकर बिहारी तेजीसे कदम रखता-हुआ कुछ दूर तक भीतर गया ; और फिर अकस्मात् रुककर बोला, "जाता हूं, एक जरूरी काम है मुझे।" इतना कहकर वह जल्दीसे अपने घर चला गया।

और उसी दिन रातकी गाड़ीसे वह पश्चिमकी तरफ घूमने चल दिया।

इधर जो दरवान विनोदिनीकी चिट्ठी लेकर गया था, वह बिहारी घरपर न मिलनेसे वापस लौट रहा था। महेन्द्र उस समय अपने मकानके सामनेवाले छोटे-से बगीचेमें टहल रहा था। उसने दरवानके हाथमें चिट्ठी देखकर पूछा, "किसकी चिट्ठी है?"

दरबानने सब बात बता दी। महेन्द्रने उससे चिट्ठी ले ली।

एक बार उसने सोचा कि चिट्ठी लेकर वह खुद विनोदिनीके पास जाय, और अपराधिनी विनोदिनीका लज्जित चेहरा एक बार वह खुद देख आये,– अपने मुँहसे वह कुछ कहेगा-सुनेगा नहीं। इस चिट्ठीमें विनोदिनीके लिए लज्जाकी बात होगी ही, इसमें महेन्द्रको जरा भी सन्देह नहीं था। उसे याद उठ आई, पहले भी और-एक दिन बिहारीके नाम इस तरहकी चिट्ठी गई थी। चिट्ठीमें क्या लिखा है, इस बातको जाने बगैर महेन्द्रको किसी भी तरह चैन

नहीं पड़ा। उसने मनको समझाया कि विनोदिनी उसके घरमें है, इस समय वही उसका अभिभावक है और वही उसकी भलाई-बुराईके लिए जिम्मेदार है, लिहाजा इस तरहकी सन्देह-जनक चिट्ठी खोलकर देखना उसका कर्तव्य है। विनोदिनीको बुराईके रास्ते जाने देना किसी भी हालतमें उचित नहीं।

महेन्द्रने छोटी-सी चिट्ठी खोलकर पढ़ ली। वह सहज-सरल भाषामें लिखी गई थी, इसलिए अकृत्रिम उद्वेग उसमेंसे स्पष्ट प्रकट हो रहा था। चिट्ठीको बार-बार पढ़कर और बहुत सोच-विचारकर भी महेन्द्र तय नहीं कर पाया कि विनोदिनीके मनकी गति किस तरफ है। उसे बार-बार यही आशाङ्का होने लगी कि 'मैंने जो उसका 'नहीं चाहता' कहकर अपमान किया है, उस अभिमानसे ही विनोदिनी दूसरी तरफ मन लगानेकी चेष्टा कर रही है। गुस्सेमें आकर मेरी आशा उसने बिलकुल ही छोड़ दी है।'

इस बातका खायल आते ही महेन्द्रके लिए धीरज रखना एकदम असम्भव हो उठा। जो विनोदिनी स्वयं ही उसके आगे आत्म-समर्पण करने आई थी वह क्षण-भरकी मूढ़तासे उसके अधिकारसे बिलकुल ही अलग चली जायगी, इस सम्भावनाने महेन्द्रको स्थिर नहीं रहने दिया। वह सोचने लगा, 'विनोदिनी मुझे अगर मन-ही-मन चाहती है, मुझसे प्रेम करती है, तो यह उसके लिए मङ्गलकारी है, वह एक ही जगह बँधी रहेगी। मैं अपने मनको जानता हूं, मैं उसके साथ किसी तरहका अन्याय नहीं करूँगा। वह मुझसे बेखटके प्रेम कर सकती है। मैं आशाको प्यार करता हूं, मुझसे उसे कोई डर नहीं। किन्तु वह यदि और किसी तरफ मन दे, तो उसका क्या सर्वनाश हो सकता है, कौन जाने!' अन्तमें उसने तय किया कि उसे खुद पकड़ाई न देकर विनोदिनीके मनको किसी मौकेसे और-एक बार अपनी तरफ खींचना ही पड़ेगा।

महेन्द्रने अन्तःपुरमें प्रवेश करते ही देखा कि विनोदिनी रास्तेमें खड़ी-खड़ी मानो किसीके लिए उत्कण्ठित होकर प्रतीक्षा कर रही है। देखते ही महेन्द्रके मनमें चटसे विद्वेष जल उठा। उसने कहा, "अजी, यहाँ व्यर्थ ही खड़ी हो, मुलाकात नहीं होनेकी! यह देखो तुम्हारी चिट्ठी लौट आई है।" कहते-हुए उसने चिट्ठी उसके सामने पटक दी। विनोदिनीने कहा, "खुली-हुई क्यों?"

महेन्द्र इसका जवाब दिये बिना ही चला गया। मायाने समझा कि बिहारीने चिट्ठी खोली है और पढ़कर बिना उत्तरके ही वापस कर दी है। इससे उसके एड़ीसे चोटी तक सर्वाङ्गमें आग-सी लग गई। जो दरवान चिट्ठी लेकर गया था उसे बुला भेजा। किन्तु वह दूसरे काममे चला गया था, मिला नहीं। प्रदीपके मुँहसे जैसे जलती-हुई तेलकी बूंदें टपकती हैं, ठीक वैसे ही बन्द कमरेमें विनोदिनीकी आँखोंमेंसे हृदयकी ज्वाला आँसूके रूपमें झरने लगी। अपनी चिट्ठीको फाड़कर उसने टुकड़े-टुकड़े कर डाले, फिर भी उसे सान्त्वना नहीं मिली। उस दो-चार पंक्तिके स्याहीके दागको अतीतसे वर्तमानसे बिलकुल पोंछकर साफ कर देनेका, बिलकुल 'ना' कर देनेका अब कोई उपाय ही नहीं रहा? क्रुद्धा मधुकरी जिसे सामने पाती है उसीको काट खाती है, क्षुब्धा विनोदिनी भी उसी तरह अपने चारों तरफके सब-कुछको जला डालनेके लिए तैयार हो गई। वह जो चाहती है उसीमें बाधा? क्या वह किसी बातमें ही कृतकार्य नहीं हो सकेगी? सुख यदि नहीं मिला, तो न सही,—जो उसके समस्त सुखके अन्तराय बने हैं, जिन्होंने उसे कृतार्थतासे भ्रष्ट किया है और समस्त सम्भावित सम्पदासे वञ्चित किया है उन्हें परास्त करके धूलमें मिला देनेसे ही उसके व्यर्थ जीवनका कार्य पूरा हो जायगा।

२४

उस दिन नूतन फागुनमें प्रथम-वसन्तकी हवा चलते ही आशा बहुत दिन बाद सन्ध्याके आरम्भमें छतपर चटाई बिछाकर बैठी थी। हाथमें एक मासिकपत्र लिये-हुए उस स्वल्प प्रकाशमें वह कोई धारावाहिक लम्बी कहानी खूब मन लगाकर पढ़ रही थी। कहानीका नायक तब साल-भर बाद दुर्गा-पूजाकी छुट्टियोंमें घर आते समय रास्तेमें डाकुओंके हाथ पड़ गया था,—आशाका हृदय उद्वेगसेसे काँपने लगा,—उधर अभागिनी नायिका ठीक इसी समय विपत्तिका स्वप्न देखकर रोती हुई जाग पड़ी। आशासे अपने आँसू रोके न रुके। आशा कहानी-साहित्यकी उदार समालोचक थी। वह जो भी कहानी पढ़ती थी वही उसे 'बहुत अच्छी' लगती थी। और उसी वक्त विनोदिनीको बुलाकर कहती थी, "किरकिरी, तुम्हें

मेरे गलेकी सौगन्द, जरा इस कहानीको पढ़ो। ऐसी सुन्दर है कि क्या कहूं ! पढ़ते-पढ़ते रुलाई आने लगती है।" किन्तु विनोदिनी भले-बुरेका विचार करके अपनी समालोचनासे आशाके उच्छ्वसित उत्साहको बड़ी चोट पहुंचाया करती थी।

आजकी कहानी पढ़कर आशाने यह निश्चय किया कि वह इसे महेन्द्रको पढ़ने देगी। कहानी पूरी पढ़कर ज्योंही उसने मासिकपत्र बन्द किया त्यों ही महेन्द्र आ पहुंचा। महेन्द्रका चेहरा देखते ही आशा उत्कण्ठित हो उठी। महेन्द्रने जबरदस्ती प्रफुल्लता लानेकी चेष्टा करते-हुए कहा, "अकेली छतपर बैठी किस भाग्यवानका ध्यान कर रही हो ?"

आशा नायक-नायिकाकी बात बिलकुल भूल गई, बोली, "आज तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं क्या ?"

महेन्द्रने कहा, "तबीयत तो अच्छी ही है।"

आशाने कहा, "तो फिर भीतर-ही-भीतर किसी दुश्चिन्तामें होगे। मुझे साफ-साफ बताओ न, क्या बात है ?"

महेन्द्रने आशाके पानदानसे एक पान उठाकर मुँहमें डालते-हुए कहा, "मैं सोच रहा था, तुम्हारी मौसी बेचारीने कितने दिनोंसे तुम्हें देखा नहीं है,– एक बार अचानक अगर तुम उनके पास जा खड़ी हो तो वे कितनी खुश होंगी !"

आशा कुछ उत्तर न देकर महेन्द्रके मुँहकी तरफ देखती रही। उसकी कुछ समझमें नहीं आया कि महेन्द्रके मनमें सहसा आज फिर क्यों यह बात नये रूपमें उठी !

आशाको चुप देखकर महेन्द्र बोला, "जानेको जी नहीं चाहता तुम्हारा ?"

इस बातका उत्तर देना कठिन है। मौसीको देखनेके लिए जानेकी इच्छा तो होती है, किन्तु महेन्द्रको छोड़कर जानेकी इच्छा नहीं होती।

आशाने कहा, "कालेजसे छुट्टी लेकर तुम जब जा सकोगे, तभी मैं जाऊँगी तुम्हारे साथ।

महेन्द्रने कहा, "छुट्टी तो मिल जायगी, पर मेरा जाना बिलकुल असम्भव है,– मुझे परीक्षाके लिए तैयारी करनी होगी।"

आशाने कहा, "तो जाने दो, फिर कभी देखा जायगा।"

महेन्द्रने कहा, "क्यों, जाने क्यों दो? तुम तो जाना चाहती थीं,— जाओ न, हो आओ!"

आशाने कहा, "नहीं, मेरी जानेकी इच्छा नहीं।"

महेन्द्रने कहा, "उस दिन तो इतनी इच्छा थी, आज अचानक वह इच्छा कहाँ चली गई?"

इस बातपर आशा आँखें नीची करके चुप बैठी रही। बिहारीके साथ सन्धि करनेके लिए बाधाहीन सुअवसरकी चाहमें महेन्द्र भीतर-ही-भीतर अत्यन्त अधीर हो उठा था। आशाको चुप रहते देख उसे अकारण क्रोध आ गया। बोला, "तुम मुझे भीतर-ही-भीतर सन्देह करने लगी हो क्या? इसीलिए शायद तुम मुझे अपनी आँखोंके सामने रखकर पहरा देना चाहती हो?"

आशाकी स्वाभाविक मृदुता नम्रता और धैर्य महेन्द्रके लिए सहसा अत्यन्त असह्य हो उठा। उसने अपने मनमें कहा, 'मौसीके पास जानेकी इच्छा है तो कहना चाहिए कि मैं जाऊँगी ही, जैसे भी हो मुझे भेज दो,— सो तो नहीं, कभी हाँ, कभी ना, कभी चुप,— यह क्या ढंग है!'

सहसा महेन्द्रकी इस उग्रताको देखकर आशा विस्मित और भयभीत हो उठी। बहुत कोशिश करनेपर भी उसे कोई उत्तर नहीं सूझा। उसकी कुछ समझमें नहीं आता कि महेन्द्र क्यों कभी सहसा इतना प्यार करने लगता है और क्यों अचानक ऐसा निष्ठुर हो उठता है! इस तरह महेन्द्र आशाके लिए जितना ही दुर्बोध्य होता जाता है, आशाका कम्पित चित्त भय और प्रेमसे उतना ही उसे कसकर बाँधना चाहता है।

आशा महेन्द्रपर सन्देह करके उसे अपनी आँखोंके आगे रखकर पहरा देना चाहती है! यह कठोर उपहास है या निर्दय सन्देह? सौगन्द खाकर उसे इसका प्रतिवाद करना चाहिए या बातको हँसीमें उड़ा देना चाहिए?

हतबुद्धि आशाको फिर भी चुप रहते देखकर अधीर महेन्द्र बड़ी तेजीसे वहाँसे उठकर चला गया। तब न-जाने कहाँ गया उस मासिकपत्रकी कहानीका नायक और कहाँ गई उसकी नायिका! सूर्यास्तकी आभा अन्धकारमें विलीन

हो गई, और सन्ध्यारम्भकी क्षणिक वसन्तकी हवाकी जगह हेमन्तकी हवा चलने लगी। और आशा छतपर उसी तरह चटाईपर औंधी पड़ी रही।

बहुत रात बीते आशा जब भीतर अपने कमरेमें गई तो देखा कि महेन्द्र उसे बिना बुलाये ही अकेला आकर सो गया है; और तब आशा सोचने लगी कि 'स्नेहमयी मौसीके प्रति मेरी उदासीनता देखकर ही ये मुझसे भीतर ही भीतर घृणा करने लगे हैं।' बिस्तरपर जाकर उसी क्षण वह महेन्द्रके पैरोंसे लिपटकर पड़ रही। तब महेन्द्रने करुणासे विचलित होकर उसे ऊपर खींचनेकी कोशिश की। किन्तु आशा टससे मस न हुई। बोली, "मुझसे कोई दोष बन गया हो तो मुझे क्षमा करो।"

महेन्द्रने आर्द्रचित्तसे कहा, "तुम्हारा कोई दोष नहीं, चुन्नी! मैं बहुत ही निर्दयी हूं, पाखण्डो हूं, इसीसे बेमतलब तुम्हें चोट पहुँचाया करता हूं।"

सुनते ही आशाकी आँखोंसे आँसुओंको धारा बहने लगी; और उससे महेन्द्रके चरणोंका अभिषेक शुरू हो गया। महेन्द्र तुरत उठ बैठा और आशाको अपनी बाहुओंसे उठाकर अपने पास सुला लिया।

रोनेका आवेग थमनेपर आशाने कहा, "मौसीको देखने जानेकी क्या मेरी इच्छा नहीं होती? पर, तुम्हें छोड़कर अकेले जानेको जी नहीं चाहता। इसीसे मैं नहीं गई,—तुम गुस्सा मत होओ।"

महेन्द्रने धीरे-धीरे आशाके भीगे कपोलोंको पोंछते-हुए कहा, "यह क्या गुस्सा होनेकी बात है, चुन्नी? मुझे छोड़कर नहीं जा सकतीं, इससे मैं गुस्सा होऊँगा! जाने दो, तुम्हें कहीं भी नहीं जाना होगा।"

आशाने कहा, "नहीं, मैं काशी जाऊँगी।"

महेन्द्रने कहा, "क्यों?"

आशाने कहा, "मैं तुमपर सन्देह करती हूं इसीसे नहीं जाना चाहती, यह बात जब एक बार तुम्हारे मुँहसे निकली है तो मुझे कुछ दिनके लिए यहाँसे जाना ही होगा।"

महेन्द्र बोला, "पाप किया मैंने, ओर उसका प्रायश्चित्त करोगी तुम?"

आशाने कहा, "सो मैं नहीं जानती,— पर पाप मेरे अन्दर कहीं-न-कहीं

जरूर हुआ है, नहीं-तो ऐसी-सब अनहोनी बातें उठतीं ही कैसे ? जिन-सब बातोंको मैं सपनेमें भी नहीं सोच सकती थी, वे बातें तुमसे मुझे क्यों सुननी पड़तीं ?"

महेन्द्रने कहा, "इसका कारण यह है कि मैं कितना बुरा आदमी हूं सो तुम्हारे स्वप्नके भी अगोचर है।"

आशा चंचल होकर बोली, "फिर ! ऐसी बात तुम मत कहो। पर इस बार मैं काशी जरूर जाऊँगी।"

महेन्द्र हँसता-हुआ बोला, "अच्छा, जाओ,– पर मैं अगर तुम्हारे पीछे बिगड़ गया तो क्या होगा ?"

आशाने कहा, "देखो, तुम मुझे इतना डराओ मत। हाँ-तो नहीं, जैसे मैं मारे सोचके बेचैन हुई जा रही हूं !"

महेन्द्रने कहा, "परन्तु होना तो चाहिए। अपने ऐसे पतिको अगर तुम अपनी असावधानीसे बिगड़ जाने दोगी, तो बादमें फिर किसे दोष देती फिरोगी ?"

आशा बोली, "तुम्हें नहीं दूंगी, इसके लिए तुम चिन्ता मत करो।"

महेन्द्रने कहा, "तब अपना दोष मान जाओगी न ?"

आशाने कहा, "एक बार नहीं, सौ बार।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छी बात है,– तो कल तुम्हारे ताऊसे जाकर बात तय कर आऊँगा।" और फिर वह 'बहुत रात हो गई' कहकर करवट लेकर सो गया।

कुछ देर बाद फिर अचानक करवट बदलकर बोल उठा, "चुन्नी, जाने दो, कोई जरूरत नहीं, तुम मत जाओ।"

आशाने डरते-हुए कहा, "फिर तुम मना क्यों कर रहे हो ? इस बार नहीं गई तो तुम्हारी डाट-फटकार मेरे लगी ही रह जायगी। मुझे दो-चार दिनके लिए ही भेज दो, पर भेजो जरूर।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छा।" और करवट लेकर सो गया।

काशी जानेके एक दिन पहले आशा विनोदिनीके गलेसे लिपटकर बोली, "बहन किरकिरी, मेरी देह छूकर एक बात बताओगी ?"

विनोदिनीने आशाके गाल मसकते-हुए कहा, "क्या बात, बहन? तुम्हारा अनुरोध क्या मैं नहीं रखती?"

आशाने कहा, "कौन जाने, बहन, आजकल तुम कैसी-तो हो गई हो! उनके आगे अब तो तुम निकलना ही नहीं चाहतीं!"

विनोदिनीने कहा, "क्यों नहीं निकलना चाहती, सो क्या तू नहीं जानती? उस दिन बिहारी-बाबूसे जो-कुछ उन्होंने कहा, सो क्या तैंने अपने कानोंसे नहीं सुना? जब ऐसी-ऐसी बातें उठने लगी हैं, तो तू ही बता, सबके सामने मेरा निकलना-बोलना क्या उचित है?"

उचित नहीं है, इतना तो आशा समझती है। इन-सब बातोंसे कितनी लज्जा आती है, कितनी बदनामी होती है और कितना दुःख होता है, सो भी इधरकी घटनाओंसे उसने अपने मनसे ही समझ लिया है। फिर भी वह बोली, "बात तो ऐसी न-जाने कितनी उठा करती हैं! उन-सबको अगर सह ही न सकी तो फिर प्रेम ही क्या हुआ, बहन! उस बातको भूल जाओ।"

विनोदिनीने कहा, "अच्छा, बहन, भूल जाऊँगी।"

आशाने कहा, "मैं तो, बहन; कल काशी जा रही हूं,– उन्हें किसी तरहकी तकलीफ न हो, इस बातका तुम्हें विशेष ध्यान रखना होगा। अभीकी तरह दूर-दूर रहनेसे काम नहीं चलेगा!"

विनोदिनी चुप रही। आशाने उसका हाथ मसकते-हुए कहा, "किरकिरी, तुझे मेरे गलेकी कसम है, इतना वचन तुझे देना ही पड़ेगा।"

विनोदिनीने कहा, "अच्छा।"

२५

एक तरफ चन्द्र अस्त होता है तो दूसरी तरफ सूर्यका उदय। आशा चली गई, किन्तु महेन्द्रके भाग्यसे विनोदिनी अब भी दिखाई नहीं दी। महेन्द्र घूमता-फिरता चक्कर लगाता रहता है, बीच-बीचमें किसी-न-किसी बहानेसे माके कमरेमें उपस्थित होता है, किन्तु विनोदिनी बराबर उसे चकमा देकर भाग जाती है, पकड़ाई नहीं देती।

राजलक्ष्मीने महेन्द्रके ऐसे अत्यन्त शून्य-भावको देखकर सोचा, 'बहू चली गई है, इसीसे इस घरमें अब उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।' आजकल महेन्द्रके सुख-दुःखके लिए मा जो बहूकी तुलनामें बिलकुल ही अनावश्यक हो गई है, इस बातका खयाल आते ही राजलक्ष्मीके मनमें काँटा-सा चुभने लगता, किन्तु फिर भी पुत्रका इस तरहका विमर्ष-भाव देखकर माको वेदना होने लगी। उन्होंने विनोदिनीको बुलाकर कहा, "इन्फ्लुएञ्जाके बादसे मुझे तो दमाकी-सी शिकायत होने लगी है, मुझसे तो सीढ़ी चढ़कर ऊपर जाया नहीं जाता,– सो अब तो, बेटी, तुम्हींको महेन्द्रकी पूरी देख-भार करनी होगी। जन्मकी आदत है न उसकी, बिना सेवा - जतनके उससे रहा नहीं जाता। देखो न, बहूके जानेके बादसे कैसा-तो हो गया है। बहूको भी धन्य है, चली कैसे गई!"

विनोदिनी जरा-सा सिर झुकाकर बिस्तरका चादरा खोंटने लगी।

राजलक्ष्मी बोलीं, "क्यों बहू, क्या सोच रही हो? इसमें सोचनेकी तो कोई बात नहीं। लोग कुछ कहें तो कहते रहें,– तुम तो कोई गैर नहीं हो।"

विनोदिनीने कहा, "जरूरत क्या है, बुआजी!"

राजलक्ष्मीने कहा, "अच्छा तो जाने दो। मुझसे जितना हो सकेगा, मैं ही करती रहूंगी।"

इतना कहकर वे उसी समय महेन्द्रका कमरा ठीक करनेके लिए ऊपर जाने लगीं।

विनोदिनीने घबराते-हुए कहा, "नहीं मा, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं, तुम मत जाओ, मैं जाती हूं। मुझे माफ करो, बुआजी,– जैसी तुम्हारी आज्ञा होगी, मैं वैसा ही करूँगी।"

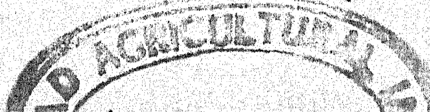
राजलक्ष्मी लोगोंकी कानाफूसीकी जरा भी परवाह नहीं करतीं। पतिकी मृत्युके बादसे घरमें और समाजमें वे महेन्द्रके सिवा और किसीको भी नहीं जानतीं। महेन्द्रके सम्बन्धमें विनोदिनीने समाजकी निन्दाका आभास दिया तो उन्हें बहुत बुरा मालूम हुआ। जन्मसे ही वे महेन्द्रको देखती आ रही हैं। उस जैसा 'अच्छा लड़का' और है कहाँ? ऐसे महेन्द्रके विषयमें भी निन्दा! अगर कोई उसकी निन्दा करेगा तो उसकी जीभ गल जायगी! स्वयं

उन्हें जो बात अच्छी लगती हो उसके सम्बन्धमें दुनियाके लोग चाहे कुछ भी कहते रहें, उसकी उपेक्षा करना राजलक्ष्मीकी एक स्वाभाविक जिद बन गई है।

आज महेन्द्र कालेजसे लौटकर जो अपने कमरेमें घुसा तो कमरा देखकर दंग रह गया। दरवाजा खोलते ही उसने देखा, धूपकी सुगन्धसे घर आमोदित हो रहा है। मशहरीके चारों तरफ गुलाबी रेशमकी झालर लटक रही है। नीचेके बिस्तरपर दूध-सी सफेद चाँदनी बिछी-हुई है और उसपर पहलेके पुराने तकियोंकी जगह नये – रेशमी और पशमी कामदार – विलायती ढंगके चौकोर तकिये लगे-हुए हैं। और उनपर जो सुन्दर शिल्पकलाका निदर्शन दीख रहा है वह विनोदिनीके सुनिपुण हाथोंके बहु-परिश्रमका ही फल है। आशा उससे पूछा करती थी, "ये सब तुम किसके लिए बना रही हो, बहन?" विनोदिनी हँसती-हुई कह देती थी, "अपनी चिताकी सेजके लिए। मरणके सिवा मेरे सुहागका और है ही कौन!"

दीवारपर महेन्द्रकी जो मढ़ी-हुई तसवीर टँगी थी, उसके फ्रेमके चारों कोनोंपर रंगीन फीतेसे सुनिपुण हाथोंकी चार गाँठें लगी-हुई थीं और उसके नीचे दीवारसे सटी-हुई एक तिपाईपर दोनों तरफ दो फूलदानियोंमें दो गुलदस्ते ऐसे रखे-हुए थे, जैसे कोई चुपकेसे आकर महेन्द्रकी प्रतिमूर्तिकी पूजा कर गया हो। कुल मिलाकर कमरेका रंग-रूप बिलकुल बदल गया था। पलंग जहाँ था वहाँसे जरा हटा-हुआ है। कमरेको मानो दो भागोंमें विभक्त कर दिया गया है। पलंगके आगे सागौनकी बनी दो अलगनियाँ लगाकर और उनपर कपड़े लटकाकर ऐसी आड़ कर दी गई है कि नीचे बैठनेका गद्दा और रातको सोनेका पलंग अपने-आप ही अलग हो गया है। जिस अलमारीमें आशाकी शौककी चीजें और चीनी-मिट्टीके खिलौने वगैरह रखे थे उसके काँचके भीतरकी तरफ लाल कपड़ेका चुन्नटदार परदा लगा दिया गया है, ताकि भीतरकी चीजें दीखें नहीं। कमरेमें उसके पूर्व-इतिहासके जितने भी चिह्न थे वे नये हाथकी नई सजावटसे बिलकुल ही ढक दिये गये हैं।

हरा-थका महेन्द्र नीचेके शुभ्र बिस्तरपर लेट गया। नये तकियेपर सिर रखते ही उसके भीतरकी एक मीठी मोहक सुगन्धने उसे विह्वल कर दिया।



तकियोंके भीतरकी रूईके साथ काफी मात्रामें नागकेशरके फूलोंकी रज और कुछ अतर मिला-हुआ था।

महेन्द्रकी आँखें अपने-आप झपक आईं। उसे ऐसा लगने लगा कि इन तकियोंपर जिसके निपुण हाथका शिल्प-चातुर्य अङ्कित है उसकी कोमल चम्पक-अंगुलियोंकी सुगन्ध भी मानो इनमें भरी-हुई है।

इतनेमें एक हाथमें चाँदीकी तश्तरीमें फल और मिठाई और दूसरे हाथमें काँचके गिलासमें बरफ-शुदा अनन्नासका शरबत लिये-हुए दासी आई और दोनों पात्र महेन्द्रके सामने रखकर चली गई। ये-सब बातें पूर्व-प्रथासे कुछ भिन्न और बड़ी निपुणतासे हो रही थीं। इन-सबके स्वाद गन्ध और दृश्यमें ऐसी नवीनता थी कि उसने महेन्द्रके सम्पूर्ण मन और इन्द्रियोंपर एक तरहका जादू-सा कर दिया।

महेन्द्र जब जलपान कर चुका, तब हाथमें चाँदीका पानदान लिये-हुए विनोदिनीने धीरे-धीरे कमरेमें प्रवेश किया; और आतेके साथ ही उसने हँसते हुए कहा, "इधर कई दिनोंसे मैं तुम्हारे खाने-पीनेके समय हाजिर नहीं हो सकी, मुझे माफ करना, लालाजी! और जो-कुछ तुम्हारे मनमें आये सो करना, पर तुम्हें मेरे सिरकी कसम है, मेरी 'आँखकी किरकिरी' को इस बातकी खबर नहीं पड़नी चाहिए कि मैंने तुम्हारी खातिर-तवज्जहमें कोई त्रुटि की है! अपनी शक्ति-भर मैं कर रही हूं,– पर क्या करूँ, घरका सब काम ही जो मेरे ऊपर आ पड़ा है।"

इतना कहकर विनोदिनीने पानदान महेन्द्रके सामने बढ़ा दिया। आजके पानोंमें भी केवड़े-पड़े कत्थेकी विशेष सुगन्ध पाई गई।

महेन्द्रने कहा, "खातिर-तवज्जहमें कभी-कभी इस तरहकी त्रुटिका होना अच्छा है।"

विनोदिनीने कहा, "क्यों भला, सुनूँ तो सही?"

महेन्द्रने कहा, "क्योंकि उसके बाद छेड़छाड़कर ब्याज-समेत सब वसूल भी कर लिया जाता है।"

विनोदिनी बोली, "महाजन बतायेंगे क्या कि ब्याज कितना हुआ?"

महेन्द्रने कहा, "खाने-पीनेके समय हाजिर नहीं थीं, अब खाने-पीनेके बाद हाजरी जोड़कर कुछ-न-कुछ तो बाकी निकलेगा ही।"

विनोदिनीने हँसते-हुए कहा, "तुम्हारा हिसाब जैसा कड़ा होता है, उसके लिहाजसे तो जो एक बार तुम्हारे जालमें फँस गया उसका उद्धार होना मुश्किल ही है!"

महेन्द्र बोला, "हिसाबकी कड़ाई तो तभी सार्थक हो सकती है जब वसूल करनेमें सफल होऊँ।"

विनोदिनीने कहा, "वसूल करने-लायक यहाँ है ही क्या! लेकिन फिर भी कैद तो कर ही रक्खा है।" इतना कहनेके बाद उसकी हँसीने तुरन्त गम्भीर रूप धारण कर लिया और वह एक गहरी साँस लेकर चुप रह गई।

महेन्द्रने भी जरा-कुछ गम्भीर होकर कहा, "किरकिरी, तो क्या तुम्हारे लिए यह जेलखाना है?"

इतनेमें नौकर आ गया और नियमानुसार तिपाईपर लैम्प रखकर चला गया।

सहसा आँखोंमें बत्तीकी रोशनी लगते ही विनोदिनीने मुँहके सामने हाथकी आड़ करते-हुए नीची निगाह करके कहा, "कौन जाने! तुम्हारे साथ बातोंमें कौन जीत सकता है भला! जाती हूं अब, काम है।"

महेन्द्रने सहसा उसका हाथ पकड़ लिया; और कहा, "बन्धन जब कि स्वीकार ही कर लिया है तो अब जा कहाँ रही हो?"

विनोदिनीने कहा, "छी छी, छोड़ो छोड़ो। जिसके लिए भागनेका कोई रास्ता ही नहीं, भला उसे बाँधनेकी कोशिश क्यों?"

विनोदिनी जबरदस्ती हाथ छुड़ाकर चली गई।

महेन्द्र उसी बिस्तरपर सुगन्धित तकियेपर सिर रखे पड़ा रहा। उसकी छातीके भीतरका खून जोरोंसे दौड़ने लगा। निस्तब्ध सन्ध्या है और निर्जन कमरा, उसपर नव-वसन्तकी हवा चल रही है। मालूम होता है, विनोदिनीका मन अब पकड़ाई देना ही चाहता है, और उन्मत्त महेन्द्र अब अपनेको रोक नहीं सकेगा। महेन्द्रने जल्दीसे लैम्प बुझाकर भीतरसे दरवाजा बन्द कर

लिया, काँचकी खिड़कियाँ भी बन्द कर लीं, और असमयमें ही पलंगपर जाकर पड़ रहा।

पलंगके बिछौने भी तो पुराने नहीं मालूम होते! नीचे चार-पाँच तोशकें और उनपर साफ-सुथरा मुलायम-चिकना चादरा बिछाकर वे बहुत ही गुलगुले और कोमल बना दिये गये हैं। और यह नई सुगन्ध काहेकी है? अगुरुकी है या खसकी, कुछ समझमें नहीं आता। महेन्द्र बार-बार इधर-उधर करवट बदलने लगा,— कहीं भी पुरातनका कोई चिह्न मिल जाय तो मानो उससे वह लिपट जाना चाहता हो। किन्तु कुछ भी हाथ न पड़ा।

रातको नौ बजे आकर बन्द दरवाजेको किसीने खटखटाया। विनोदिनीने बाहरसे कहा, "लालाजी, तुम्हारी थाली आ गई, किबाड़ खोलो।"

उसी क्षण दरवाजा खोल देनेके लिए महेन्द्र भड़भड़ाकर उठ बैठा, दरवाजेके पास पहुंचा, चटखनीपर हाथ रखा, किन्तु खोलते-खोलते रुक गया। लौटकर जमीनके गद्देपर औंधा होकर पड़ रहा; और फड़फड़ाता-हुआ बोला, "नहीं नहीं, मुझे भूख नहीं, मैं खाऊंगा नहीं।"

बाहरसे उद्विग्न कण्ठकी आवाज सुनाई दी, "तबीयत खराब तो नहीं हो गई? पानी ला दूं? और कुछ चाहिए क्या?"

महेन्द्रने कहा, "मुझे कुछ नहीं चाहिए, किसी चीजकी जरूरत नहीं मुझे।"

विनोदिनीने कहा, "तुम्हें मेरे सिरकी सौगन्द है, लालाजी, मुझसे कुछ छिपाओ मत। अच्छा, तबीयत खराब नहीं तो, एक बार दरवाजा तो खोलो जरा।"

महेन्द्र जोरसे बोल उठा, "नहीं, मैं नहीं खोलूंगा, हरगिज नहीं। तुम जाओ।"

इतना कहकर वह जल्दीसे उठकर फिर पलंगपर जा सोया, और अन्तर्हिता आशाकी स्मृतिको सूनी शय्या और चंचल हृदयके अन्धकारमें टटोलता-हुआ ढूंढ़ने लगा।

नींद जब किसी भी तरह आई ही नहीं तब महेन्द्र उठ बैठा, और बत्ती जलाकर आशाको चिट्ठी लिखने बैठ गया।

उसने लिखा, "आशा, अब और ज्यादा दिन मुझे यहाँ अकेला मत पड़ा रहने दो। मेरे जीवनकी लक्ष्मी हो तुम,–तुम पास नहीं रहतीं हो तो मेरी समस्त प्रवृत्तियां जंजीर तोड़कर मुझे कहाँ खींच ले जाती हैं, मेरी कुछ समझमें नहीं आता। रास्ता देखकर चलना चाहता हूं, किन्तु उसका उजाला कहाँ है? मेरा उजाला तो तुम्हारे विश्वासपूर्ण नेत्रोंके प्रेम-स्निग्ध दृष्टिपातमें है। तुम जल्दी आओ, मेरी शुभे, मेरी ध्रुवे, मेरी एकमात्र, तुम जल्दी आओ। आकर मुझे स्निग्ध करो, मेरी रक्षा करो, मेरा हृदय परिपूर्ण कर दो। तुम्हारे प्रति लेशमात्र अन्यायके महापापसे, तुम्हारी क्षणमात्रकी विस्मृति-विभीषिकासे मुझे बचाओ, मेरा उद्धार करो।"

इस तरह महेन्द्र अपनी ताड़ना करनेके लिए आशाकी ओर अपनेको जोर-जोरसे ढकेल-ढकेलकर बहुत रात तक बहुत-सी बातें लिखता रहा। दूरसे सुदूर तक बहुत-से गिरजोंकी घड़ियोंमें ढन-ढन-ढन तीन बजते चले गये। कलकत्तेकी सड़कोंपर गाड़ियोंकी आवाज प्रायः बन्द हो चुकी है, मुहल्लेके उस पार किसी मकानके दूसरी मंजिलके कमरेमेंसे नटीके कण्ठसे विहाग-रागिनीका जो गाना सुनाई दे रहा था, वह विश्वव्यापिनी शान्ति और निद्रामें बिलकुल डूब गया। महेन्द्रने एकाग्र मनसे आशाकी याद करके और मनके उद्वेगको लम्बे पत्रमें नानाप्रकारसे व्यक्त करके बहुत-कुछ सान्त्वना पाई, और बिस्तरपर जाकर पड़ते ही उसे नींद आ गई।

सवेरे जब महेन्द्रकी आँख खुली तब काफी अबेर हो चुकी थी, कमरेमें घाम आ गई थी। महेन्द्र जल्दीसे उठ बैठा। गहरी नींद सो लेनेके बाद पिछली रातकी सारी घटना उसके मनमें हलकी-सी हो आई। बिस्तरसे उठकर टेबिलके पास आकर उसने देखा कि पछली रातको उसने जो आशाके लिए चिट्ठी लिखी थी वह दावातके नीचे दबी रखी है। चिट्ठीको वह आद्योपान्त पढ़ गया; और मन-ही-मन बोला, 'किया क्या है मैंने! यह तो नाटकीय मामला है। अच्छा हुआ जो उसी वक्त भेज नहीं दी,–नहीं तो, आशा पढ़ती तो क्या कहती अपने मनमें! चिट्ठीकी आधी बातें तो उसकी समझमें ही नहीं आतीं।'

रातको क्षणिक कारणसे उसका हृदयावेग जो इस तरह असङ्गत-रूपसे बढ़ गया था, उसके लिए वह बहुत ही लज्जा अनुभव करने लगा। उस चिट्ठीके उसने टुकड़े-टुकड़े कर डाले, और फिर उसने सहज-सरल भाषामें आशाको एक संक्षिप्त चिट्ठी लिखी। उसमें लिखा, "तुम अब और कितनी देर लगाओगी? तुम्हारे ताऊजीका अगर जल्दी लौटनेका इरादा न हो तो मुझे लिखो, मैं खुद जाकर तुम्हें ले आऊंगा। यहाँ अकेले मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

२६

महेन्द्रके चले जानेके कुछ ही दिन बाद जब आशा काशी पहुंची, तो अन्नपूर्णाके मनमें भारी आशङ्का बैठ गई। आशासे वे नाना प्रकारसे नाना प्रश्न करने लगीं। पूछने लगीं, "क्यों री चुन्नी, तू जो अपनी सखी 'आँखकी किसकिरी'की तारीफ कर रही थी, सो क्या वह सचमुच ही बड़ी गुणवती है? तेरी बातोंसे तो मालूम होता है, ऐसी अच्छी लड़की संसारमें और-कोई है ही नहीं?"

"हाँ, मौसी, मैं बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कह रही, जैसी उसकी बुद्धि है वैसा ही रूप! और काम-काजमें भी ऐसी होशियार है कि कुछ पूछो मत!'

"तेरी सखी है, तू तो उसे सब गुणोंकी खान समझेगी ही, पर घरके और सब उसके बारेमें क्या कहते-सुनते हैं, सो तो बता?"

"मा तो उसकी तारीफ करते-करते नहीं थकतीं। 'किरकिरी' जब कभी देश जानेकी बात कहती है तो वे व्याकुल हो उठती हैं। ऐसी सेवा करना कोई नहीं जानता। घरके नौकर-चाकरोंमेंसे कभी कोई बीमार पड़ जाता है तो वह उसकी मा-बहनकी तरह देख-भाल करती है।।"

"महेन्द्रकी क्या राय है?"

"उन्हें तो तुम जानती ही हो, मौसी, कोई बहुत ही अपना आदमी हो तभी वह उन्हें रुचता है, नहीं तो नहीं। मेरी 'किरकिरी' को और तो सब अच्छा समझते हैं, प्यार करते हैं, पर उनके साथ उसकी आज तक पटरी नहीं बैठी।"

"सो कैसे ?"

"मैंने तो बड़ी कोशिश करके उनसे उसकी भेंट करा दी, बातचीत भी करा दी,– पर वे ऐसे हैं कि बात भी नहीं करते। तुम तो जानती हो उनका स्वभाव, अकेले एक कोनेमें पड़े रहेंगे, पर मिलेंगे-जुलेंगे किसीसे नहीं। लोग समझते हैं कि वे घमण्डी हैं, बड़ा मान है उन्हें, पर असलमें ऐसी कोई बात नहीं,– दो-एक आदमीके सिवा और-कोई उन्हें सहन ही नहीं होता।"

अन्तिम शब्द मुँहसे निकल जानेके बाद सहसा आशाको बड़ी लज्जा मालूम हुई, उसके गाल लाल-सुर्ख हो उठे। अन्नपूर्णा खुश होकर मन-ही-मन हँसीं, और बोलीं, "ठीक बात है, उस दिन महेन्द्र जब यहाँ आया था, तेरी 'किरकिरी'का उसने एक बार जिक्र तक नहीं किया।"

आशाने दुःखित होकर कहा, "यही तो उनमें दोष है। जिससे उनका प्रेम नहीं, उनके लिए मानो वह है ही नहीं, मानो उसे उन्होंने कभी देखा ही नहीं, उसे जानते ही नहीं, यही हाल है उनका।"

अन्नपूर्णाने शान्त स्निग्ध हास्यके साथ कहा, "और जिसे प्यार करते हैं, जन्म-जन्मान्तरमें मानो वे केवल उसीको देखते हैं, जानते हैं,– यह बात भी तो है उनमें! क्यों ठीक है न, चुन्नी ?"

आशाने कुछ जबाव न देकर नीचेको निगाह कर ली, और मन-ही-मन हँसने लगी। अन्नपूर्णाने पूछा, "बिहारीकी क्या खबर है, बेटी ? वो क्या ब्याह करेगा ही नहीं ?"

क्षणमात्रमें आशाका चेहरा गम्भीर हो गया। वह क्या जवाब दे, उसकी कुछ समझमें न आया।

आशाको निरुत्तर और गम्भीर देखकर अन्नपूर्णा डर गईं, बोलीं, "सच बता, चुन्नी, बिहारीकी तबीयत तो ठीक है, बीमार-ईमार तो नहीं पड़ गया ?"

बिहारी इस चिर-पुत्रहीना रमणीके स्नेह-सिंहासनमें पुत्रके मानस-आदर्शके रूपमें विराज रहा है। बिहारीको वे घर-संसारमें प्रतिष्ठित देखकर नहीं आ सकीं, यह दुःख दूर-प्रवासमें आकर भी उनके मनमें जाग उठता है। उनकी छोटी-सी दुनियामें और सब-कुछ एक तरहसे सम्पूर्ण हो चुका है, केवल बिहारीकी

गृहहीन-अवस्थाका स्मरण आते ही उनके परिपूर्ण वैराग्य-साधनमें व्याघात होने लगता है।

आशाने कहा, "मौसी, बिहारी-लालाजीकी बात मुझसे न पूछो।"

अन्नपूर्णा आश्चर्यसे दंग रह गईं, बोलीं, "क्यों, क्या बात है बता तो?"

आशाने कहा, "सो मैं नहीं बता सकूंगी।" इतना कहकर वह वहाँसे उठकर चल दी।

अन्नपूर्णा चुप बैठी सोचने लगीं, 'मेरा हीरा-सा लड़का बिहारी, इस बीचमें वह ऐसा क्या बदल गया कि चुन्नी आज उसका नाम सुनकर उठ गई? तकदीरका खेल है। क्यों तो उसके साथ चुन्नीके ब्याहकी बात चली, और क्यों महेन्द्रने उसके हाथसे चुन्नीको छीन लिया!'

बहुत दिन बाद आज अन्नपूर्णाकी आँखोंसे आँसू झर पड़े। वे मन ही मन कहने लगीं, 'हाय, मेरे बिहारीने अगर ऐसा कुछ किया भी हो जो उसके योग्य नहीं, तो, यों ही नहीं कर बैठा।' बिहारीके उस दुःखकी गहराईकी कल्पना करके अन्नपूर्णाकी छाती व्यथित हो उठी।

सन्ध्याके समय अन्नपूर्णा पूजा करने बैठी ही थीं कि इतनेमें सहसा घरके दरवाजेपर एक गाड़ी आकर ठहरी। सईस बन्द दरवाजेपर धक्का दे-देकर घरवालोंको पुकारने लगा।

अन्नपूर्णा पूजा-घरसे बोल उठीं, "लो, मैं तो बिलकुल भूल ही गई थी, आज कुञ्जकी सास और उसकी दो बहनौतें इलाहाबादसे आनेवाली थीं,—शायद वे आ गईं! चुन्नी, जा तो बेटी, लालटेन लेकर नीचे जाकर जरा दरवाजा तो खोल आ।"

आशा लालटेन हाथमें लेकर दरवाजा खोलने गई, और दरवाजा खोलते ही देखा, सामने बिहारी खड़ा है! बिहारी बोल उठा, "यह क्या, भाभीजी, मैंने तो सुना था कि तुम काशी नहीं आओगी!"

आशाके हाथसे लालटेन छूट गई। मानो वह सामने प्रेत-मूर्ति देखकर एक साँसमें भागी-भागी ऊपर पहुँची और आर्तस्वरमें बोली, "मौसी, मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूं, तुम उनसे अभी यहाँसे चले जानेको कह दो।"

अन्नपूर्णा पूजाके आसनसे चौंककर उठ खड़ीं हुईं, बोली, "किसे, चुन्नी, किसे ?"

आशाने कहा, "बिहारी-लालाजी यहाँ भी चले आये हैं !"

इतना कहकर वह बगलके कमरेमें चली गई; और भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये।

बिहारीने नीचेसे सभी बातें सुन लीं। वह उसी क्षण भाग जानेको उद्यत हुआ,– किन्तु अन्नपूर्णा पूजा-पाठ छोड़कर वहाँ आ पहुँचीं; और उन्होंने देखा कि बिहारी दरवाजेके पास जमीनपर ऐसे बैठा है जैसे उसके शरीरकी सारी शक्ति जाती रही हो।

अन्नपूर्णा लालटेन नहीं लाई थीं। अँधेरेमें उन्हें बिहारीके चेहरेका भाव नहीं दिखाई दिया, और बिहारी भी उन्हें न देख सका।

अन्नपूर्णाने कहा, "बिहारी !"

हाय, चिरकालका वह स्नेह-सुधा-सिक्त कण्ठस्वर कहाँ चला गया ? इस कण्ठमें तो कठोर विचारकी वज्रध्वनि छिपी-हुई है। जननी अन्नपूर्णा, आज तुम संहार-खड्ग किसपर उठा रही हो ? अभागा बिहारी तो आज अन्धकारमें तुम्हारे मङ्गल-चरणाश्रयमें अपना मस्तक रखने आया था।

बिहारीका शक्तिहीन शिथिल शरीर आपाद-मस्तक वज्राघातसे चौंक उठा, उसने कहा, "चाचीजी, अब बस करो, और कुछ न कहो। मैं चल दिया।" कहते-हुए उसने जमीनसे सिर छुआकर अन्नपूर्णाको प्रणाम किया, उनके चरणोंका स्पर्श तक नहीं किया। जननी जैसे गङ्गासागरमें सन्तान विसर्जन करती है उसी तरह अन्नपूर्णाने रात्रिके अन्धकारमें बिहारीको चुपकेसे विसर्जन कर दिया, एक बार मुड़कर उसे पुकारा तक नहीं। गाड़ी बिहारीको लेकर देखते-देखते अदृश्य हो गई।

उसी रातको आशाने महेन्द्रको चिट्ठी लिखी, "बिहारी-लालाजी अचानक आज शामको यहाँ आये थे। ताऊजी कब कलकत्ता लौटेंगे, कोई ठीक नहीं। तुम जल्दी आकर मुझे यहाँसे ले जाओ।"

२७

उस दिन अत्यधिक रात्रि-जागरण और प्रबल भावावेगके कारण सवेरे उठनेके बाद महेन्द्रके शरीर और मनमें एक तरहका अवसाद आ गया था। फागुनका महीना था और कुछ-कुछ गरमी भी पड़ने लगी थी। महेन्द्र और-और दिन सवेरे उठकर कमरेकी कोनेवाली टेबिलपर पढ़ने बैठ जाता था, किन्तु आज नीचेके बिस्तरपर तकियेके सहारे बैठ गया। काफी अबेर हो गई, किन्तु नहाने-निबटने नहीं गया। रास्तेसे फेरीवाले आवाज देते-हुए निकल गये, आफिस जानेवालोंका जाना-आना शुरू हो गया, गाड़ियोंकी आवाज उत्तरोत्तर तेज होती गई। पड़ोसमें एक नया मकान बन रहा था,—राज-मजदूरिनोंने गानेके साथ तालमें ताल मिलाकर छत पीटना शुरू कर दिया। कम-गरम दखिनी हवासे महेन्द्रका पीड़ित स्नायुजाल और भी शिथिल हुआ जा रहा था। वास्तवमें आजका यह लापरवाह शिथिल-शृङ्खल वसन्तका दिन किसी भी कठिन प्रण, दुरूह चेष्टा या मानसिक द्वन्द्वके लिए कतई उपयुक्त नहीं।

"लालाजी, आज तुम्हें हो क्या गया है? नहाओगे-निबटोगे नहीं? उधर रसोई तैयार भी हो चुकी। अरे, तुम तो पड़े सो रहे हो! बात क्या है, तबीयत खराब है क्या? सिरमें दर्द है?" —कहती-हुई विनोदिनी महेन्द्रके पास आकर बैठ गई और उसके माथेपर हाथ रखकर देखने लगी।

महेन्द्र आधी-आधी आँखें बन्द किये-हुए मोहाच्छन्न शिथिल कण्ठसे बोला, "आज कुछ ऐसी ही तबीयत है,—आज नहाऊँगा नहीं।"

विनोदिनीने कहा, "नहाओ नहीं तो, खा तो लो कमसे कम।" इतना कहकर महेन्द्रको वह कह-सुनकर किसी तरह भोजनकी जगह ले गई; और उत्कण्ठित आग्रह-यत्नके साथ उसे जिमा दिया।

भोजन करनेके बाद महेन्द्र फिर कमरेमें आकर नीचेके गद्देपर पड़ रहा। और विनोदिनी सिरहानेके पास बैठकर धीरे-धीरे उसका सिर दबाने लगी। महेन्द्र आँखें मीचे-हुए ही बोला, "सखी किरकिरी, अभी तक तुमने खाया-पीया नहीं,—अब तुम खाने जाओ।"

किन्तु विनोदिनी किसी भी तरह उठी ही नहीं। अलस मध्याह्नकी उत्तप्त हवासे घरका परदा उड़ने लगा, और चहारदीवारीके पास जो नारियलके पेड़ खड़े थे उनकी अर्थहीन मर्मरध्वनि कमरेमें प्रवेश करने लगी। महेन्द्रका हृत्पिण्ड क्रमशः द्रुतसे द्रुततर तालमें नाचने लगा, और विनोदिनीका घन-निश्वास उसी तालमें महेन्द्रके माथेके बालोंको कँपाने लगा। किसीके कण्ठसे एक शब्द भी बाहर नहीं निकला। महेन्द्र मन-ही-मन सोचने लगा, 'मैं इस असीम विश्व-संसारके अनन्त प्रवाहमें बहता चला जा रहा हूं, नाव क्षण-भरके लिए कब कहाँ ठहरती है, उससे किसीका क्या बनता-बिगड़ता है, और वह भी कितने दिनके लिए ?'

सिरहाने बैठकर महेन्द्रके माथेपर हाथ फेरते-फेरते विह्वल-यौवनके भारी भारसे धीरे-धीरे विनोदिनीका सिर झुक आया, और अन्तमें उसकी अलकोंने महेन्द्रके कपोलोंका मृदु-मृदु स्पर्श करना शुरू कर दिया, हवासे लहराते-हुए उस केश-गुच्छके मृदु स्पर्शसे महेन्द्रका शरीर बार-बार काँप-काँप उठा, और सहसा मानो विनोदिनीका निश्वास महेन्द्रकी छातीके पास आबद्ध होकर निकलनेका रास्ता भूल गया। महेन्द्र सहसा भड़भड़ाकर उठ बैठा, बोला, "नहीं नहीं, मेरा कालेज है, मैं चल दिया।" कहता-हुआ वह विनोदिनीके मुंहकी तरफ बगैर देखे ही उठ खड़ा हुआ।

विनोदिनीने कहा, "इतनी घबराहट क्यों ? ठहरो जरा, मैं तुम्हारे कपड़े निकाले देती हूं।" विनोदिनी महेन्द्रके कालेजके कपड़े निकाल लाई।

महेन्द्र जल्दीसे कालेज चला गया। किन्तु वहाँ भी वह स्थिर न रह सका। पढ़ने-लिखनेमें मन लगानेकी उसने बहुत देर तक वृथा चेष्टा की, किन्तु कुछ भी फल न हुआ। उसे जल्दी घर लौट आना पड़ा।

घर आकर अपने कमरेमें घुसते ही उसने देखा, विनोदिनी छातीके नीचे तकिया रखकर नीचेके बिस्तरपर औंधी पड़ी कोई किताब पढ़ रही है। ढेरके ढेर काले बाल उसकी पीठपर बिखरे पड़े हैं। शायद उसने महेन्द्रके जूतोंकी आवाज नहीं सुनी। महेन्द्र धीरे-धीरे दबे-पाँव उसके पास जा खड़ा हुआ। उसे स्पष्ट सुनाई दिया, विनोदिनीने किताब पढ़ते-पढ़ते एक गहरी साँस ली।

महेन्द्रने कहा, "ओ करुणामयी, काल्पनिक आदमीके लिए हृदयकी इतनी फजूलखर्ची मत करो। मुझे भी तो मालूम हो कि क्या पढ़ा जा रहा है ?"

विनोदिनी भड़भड़ाकर उठ बैठी ; और पुस्तकको उसने अपने आँचलमें छिपा लिया। महेन्द्र पुस्तक छीनकर देखनेकी कोशिश करने लगा। बहुत देर छीनाझपटी करनेके बाद पराजित विनोदिनीके आँचलसे महेन्द्रने पुस्तक छीन ली, देखा कि बङ्किमचन्द्रका 'विषवृक्ष' उपन्यास है। विनोदिनी जोरोंसे साँस लेती-हुई नाराजीसे मुंह फेरकर चुपचाप बैठी रही।

महेन्द्रका हृदय जोरोंसे धड़क रहा था। बड़ी कोशिशसे हँसते-हुए उसने कहा, "छी छी, बड़ा धोखा हुआ मुझे,, मैंने सोचा था कि कोई खास गुप्त चीज होगी! इतनी छीनाझपटीके बाद आखिर निकला क्या, न, 'विषवृक्ष' !"

विनोदिनीने कहा, "मेरे छिपानेकी और क्या चीज हो सकती थी ?"

महेन्द्र चटसे कह बैठा, "यही, मान लो, बिहारीकी कोई चिट्ठी होती।"

पल-भरमें विनोदिनीकी आँखोंमें बिजली-सी खेल गई। अब तक जो अनङ्ग घरके कोनेमें खेल रहा था, मानो वह दूसरी बार भस्म हो गया। क्षणमें प्रज्ज्वलित अग्निशिखाके समान विनोदिनी उठ खड़ी हुई। महेन्द्रने उसका हाथ पकड़कर कहा, "मुझे माफ करो, मैं मजाक कर रहा था। मुझे माफ कर दो।"

विनोदिनीने झटकेसे अपना हाथ छुड़ा लिया, और कहा, "मजाक किसका कर रहे थे ? तुम अगर बिहारीसे मित्रता करनेके योग्य होते, तो उनके साथ किये-गये मजाकको मैं सह लेती। तुम्हारा ओछा मन है, मित्रता करनेकी शक्ति नहीं उसमें,—और करने चले हो मजाक !"

विनोदिनीने जानेके लिए कदम बढ़ाया ही था कि महेन्द्र घुटने टेककर दोनों हाथोंसे उसके पैर घेर लिये।

इतनेमें सामने एक छाया आ पड़ी। महेन्द्रने विनोदिनीके पैर छोड़कर चौंककर पीछे देखा तो, बिहारी खड़ा है !

बिहारीने स्थिर दृष्टिपातसे दोनोंको दग्ध करते-हुए और धीर शान्त स्वरमें कहा, "बड़े असमयमें आ गया मैं, किन्तु ज्यादा देर ठहरूँगा नहीं। एक बात

कहने आया था। मैं काशी गया था, मुझे मालूम न था कि भाभीजी वहीं हैं। बिना जाने उनके समक्ष अपराधी हुआ, पर उनसे क्षमा माँगनेका अवसर नहीं मिला। इसीसे तुमसे क्षमा माँगने आया हूं। मेरे मनको ज्ञानमें या अज्ञानमें यदि किसी तरहके पापने स्पर्श किया हो, तो उसके लिए उन्हें किसी तरहका दुःख न सहना पड़े, बस, तुमसे मेरी इतनी-सी प्रर्थना है।"

बिहारीके सामने अकस्मात् अपनी कमजोरी जाहिर हो जानेसे महेन्द्रके मनमें आग-सी लग गई। यह उसके लिए उदारता दिखानेका समय नहीं। उसने जरा हँसते-हुए कहा, "तुम तो 'चोरकी दाढ़ीमें तिनका'-वाली मसल कर रहे हो,– 'पूजा-घरमें कौन ? न, मैंने केले नहीं खाये !' मैंने तुमसे न तो दोष स्वीकार करनेको कहा है, और न अस्वीकार करनेको,– तो फिर क्षमा माँग कर साधु बनने क्यों आये हो ?"

बिहारी कुछ देर तक काठके पुतलेकी तरह जड़-सा खड़ा रहा। उसके बाद जब बात करनेकी चेष्टामें उसके ओठ काँपने लगे, तब विनोदिनी बोल उठी, "बिहारी-लालाजी, तुम कुछ भी जवाब मत दो। कुछ भी मत कहो। इस आदमीने जो बात मुँहसे निकाली है, उससे इन्हींके मुँहपर कलङ्क लगा रहेगा। वह कलङ्क तुम्हें छू भी नहीं सकता।"

विनोदिनीकी बात बिहारीके कानमें गई या नहीं, इसमें सन्देह है। वह मानो स्वप्नाविष्टकी तरह महेन्द्रके कमरेके सामनेसे मुड़कर जीनेसे नीचे उतरने लगा।

विनोदिनी उसके पीछे-पीछे जाकर बोली, "बिहारी-लालाजी, मुझसे क्या तुम्हें कुछ भी नहीं कहना ? अगर तिरस्कार करने-योग्य कोई बात मुझसे हुई हो तो मेरा तिरस्कार तो करो।"

बिहारी जब बिना कुछ उत्तर दिये उतरता ही चला गया, विनोदिनीने तब उसके सामने जाकर अपने दोनों हाथोंसे उसका दाहना हाथ पकड़ लिया।

बिहारी अत्यन्त घृणाके साथ उसे ढकेलकर चला गया। उस धक्केसे विनोदिनी गिर पड़ी, किन्तु बिहारीको मालूम भी न पड़ा।

गिरनेका धमाका सुनकर महेन्द्र दौड़ा आया, देखा कि विनोदिनीके बायें हाथकी कोहनी छिल गई है, और उससे खून बह रहा है।

महेन्द्रने कहा, "ओह, यह तो बहुत छिल गया।" कहते-हुए उसने उसी क्षण अपने मलमलके कुरतेमेंसे धजीर फाड़कर चोटकी जगह पट्टी बाँधनी चही, किन्तु विनोदिनीसे चटसे आपना हाथ हटा लिया, और कहा, "नहीं नहीं, कुछ मत करो, गिरने दो खून।"

महेन्द्रने कहा, "पट्टी बाँधकर एक दवा डाले देता हूं,— उससे दर्द जाता रहेगा और जल्दी अच्छा भी हो जायगा।"

विनोदिनीने जरा अलग हटकर कहा, "इस दर्दको बना रहने दो,— मुझे अच्छा नहीं कराना।"

महेन्द्रने कहा, "मैंने आज अपना होश-हवास खोकर दूसरेके सामने तुम्हें लज्जित और अवमानित किया,— क्या तुम मुझे माफ कर सकोगी?"

विनोदिनी बोली, "माफी किसलिए? तुमने अच्छा ही किया है। मैं क्या दूसरोंसे डरती हूं? मैं किसीको भी नहीं मानती। जो लोग धक्के देकर चोट पहुंचाकर पड़ा छोड़ जाते हैं वे ही क्या मेरे सब-कुछ हैं, और जो पैर पकड़कर मुझे रखना चाहते हैं वे मेरे कोई भी नहीं?"

महेन्द्र उन्मत्त होकर गद्‌गद कण्ठसे कह उठा, "विनोदिनी, तो तुम मेरे प्यारको कभी नहीं ठुकराओगी?"

विनोदिनीने कहा, "नहीं, सिर-आँखोंसे लगा रक्खूँगी। अपने इस जन्ममें प्रेम मुझे इतना ज्यादा नहीं मिला कि उसे मैं 'नहीं चाहिए' कहकर लौटा दूं।"

महेन्द्रने उसी क्षण अपने दोनों हाथोंसे विनोदिनीके दोनों हाथ पकड़कर कहा, "तो चलो मेरे कमरेमें। तुम्हें आज मैंने बड़ी व्यथा पहुंचाई है, और तुम भी मुझे व्यथित करके चली आई हो, जब तक वह बिलकुल धुल-पुँछकर मिट नहीं जाय तब तक मुझे खाने-पीने सोने-उठनेमें बिलकुल चैन नहीं पड़ेगा।"

विनोदिनीने कहा, "नहीं, आज नहीं, आज मुझे छोड़ दो। मैंने अगर तुम्हारा जी दुखाया हो, तो मुझे तुम माफ करना।"

महेन्द्रने कहा, "तुम भी मुझे माफ करना,– नहीं तो मुझे रात-भर नींद नहीं आयेगी।"

विनोदिनीने कहा, "अच्छा, मैंने माफ कर दिया।"

महेन्द्र उसी क्षण अधीर होकर विनोदिनीसे हाथों-हाथ क्षमा और प्रेमका कोई निदर्शन पानेके लिए व्यग्र हो उठा। किन्तु विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखते ही वह ठिठककर खड़ा रह गया।

विनोदिनी सीढ़ियोंसे उतरती-हुई नीचे चली गई।

और, महेन्द्र भी धीरे-धीरे सीढ़ियाँ तय करके छतपर जाकर चहलकदमी करने लगा।

आज महेन्द्र बिहारीके आगे जो अकस्मात् पकड़ाई दिया, उससे वह अपने मनमें एक तरहका मुक्तिका आनन्द अनुभव करने लगा। दुबका-चोरीमें जो एक प्रकारकी घृण्यता है, एकके आगे प्रकट हो जानेसे मानो वह बहुत-कुछ दूर हो गई। महेन्द्र मन-ही-मन कहने लगा, 'मैं अपनेको अच्छा बताकर झूठा दम्भ नहीं करना चाहता,– हाँ, हाँ, मैं विनोदिनीसे प्रेम करता हूं, करता हूं, करता हूं।'

अपने प्रेमके गौरवमें महेन्द्रकी स्पर्धा यहाँ तक बढ़ गई कि अपनेको बुरा समझकर अपने मनमें वह उद्धत-रूपसे गर्व करने लगा। निस्तब्ध सन्ध्याकालमें नीरव ज्योतिष्क-मण्डलीसे सुशोभित अनन्त जगत्के प्रति एक तरहकी अवज्ञा फेंकता-हुआ वह मन-ही-मन कह उठा, 'कोई मुझे कितना ही बुरा क्यों न समझा करे,– मैं प्रेम करता हूं, प्रेम करता हूं!' उसने विनोदिनीकी मानस-मूर्तिसे समस्त आकाशको, समस्त संसारको, समस्त कर्तव्यको आच्छन्न कर डाला। बिहारीने सहसा आकर आज मानो महेन्द्रके जीवनकी डाटसे बन्द मसीमात्रको उलटकर तोड़ डाला,– विनोदिनीकी काली आँखों और काले बालोंकी स्याहीने देखते-देखते विस्तृत होकर पहलेकी सम्पूर्ण शुभ्रता और सारीकी सारी लिखावटको लीप-पोतकर मानो एकाकार कर दिया।

२८

दूसरे दिन सवेरे बिस्तरसे उठते ही एक तरहके मधुर आवेगसे महेन्द्रका हृदय भर उठा। प्रभातके सूर्यालोकने मानो उसकी चिन्ताधारापर वासनाका सोना चढ़ा दिया। कैसी सुन्दर पृथ्वी है, कैसा मधुमय आकाश है, और हवा तो मानो पुष्परेणुकी तरह सम्पूर्ण मनको उड़ाये लिये जा रही है।

सवेरे-सवेरे आज वैष्णव भिक्षुकने खंजरी बजाकर गाना शुरू कर दिया। दरवानने उसे भगाना चाहा तो महेन्द्रने दरवानको डाटते-हुए भिक्षुकको एक रुपया दे डाला। नौकर काँचका लैम्प उठाकर ले जा रहा था कि असावधानीसे वह उसके हाथसे गिरकर चकनाचूर हो गया। महेन्द्रके मुँहकी ओर देखकर मारे डरके नौकर बेचारेके प्राण सूख गये। किन्तु महेन्द्रने उसका जरा भी तिरस्कार न करके प्रसन्न मुखसे कहा, "देखता क्या है, सब अच्छी तरह साफ करके बाहर फेंक दे, नहीं तो किसीके पाँवमें काँच चुभ गया तो मुश्किल हो जायगी।" आज उसे कोई हानि ही हानि नहीं मालूम होती।

प्रेम इतने दिनोंसे नेपथ्यकी आड़में छिपा बैठा था, आज वह परदा उठा कर सामने आ खड़ा हुआ। जगत-संसारके ऊपरसे आज मानो आवरण-सा उठ गया। प्रतिदिनकी पृथ्वीकी समस्त तुच्छता आज मानो अन्तर्हित हो गई। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, चलता-फिरता जन-समुदाय, नगरका कोलाहल, सब-कुछ आज सुन्दर लग रहा है। यह विश्वव्यापी नवीनता अब तक थी कहाँ ?

महेन्द्रको ऐसा लगने लगा, मानो आज विनोदिनीके साथ और-और दिनोंकी तरह साधारण-भावसे मिलन नहीं होगा। आज तो मानो कवितामें बात करने और सङ्गीतमें भाव प्रकट करनेसे ही ठीक होता। आजके दिनको महेन्द्र ऐश्वर्यसे सौन्दर्यसे परिपूर्ण करके सृष्टि और समाजसे निराला अरबी उपन्यास 'अलिफ-लैला' का एक अद्भुत दिन बना डालना चाहता है। वह सच भी होगा और स्वप्न भी,— उसमें जगतका कोई नियम-कानून नहीं होगा, कोई दायित्व नहीं होगा, और न किसी तरहकी वास्तविकता होगी।

आज सवेरसे ही महेन्द्र चञ्चल होकर घूम-फिर रहा है। आज वह कालेज भी न जा सका, कारण मिलनका लग्न अकस्मात् कब आविर्भूत होगा, किसी पञ्चाङ्गमें तो लिखा नहीं।

घरके काम-काजमें लगा-हुई विनोदिनीका कण्ठस्वर कभी भण्डार-घरसे और कभी रसोईमेंसे आ-आकर महेन्द्रके कानोंमें प्रवेश करने लगा। किन्तु आज उसे वह अच्छा नहीं लगा। विनोदिनीको आज जो उसने संसारसे अलग बहुत दूर ले जाकर अपने कल्पना-मन्दिरमें प्रतिष्ठित किया है!

समय कटना ही नहीं चाहता। महेन्द्र नहा चुका और खा भी चुका। घरका सब काम-काज समाप्त हो चुका, और मध्याह्न भी निस्तब्ध हो आया। किन्तु फिर भी विनोदिनी नहीं दिखाई दी। दुःख और सुखसे, अधैर्य और आशासे महेन्द्रके हृदय-वीणाके सबके सब तार झंकृत होने लगे।

कलकी छीनाझपटीसे प्राप्त 'विषवृक्ष' उपन्यास नीचेके बिस्तरपर पड़ा था। उसे देखते ही कलकी उस झीनाझपटीकी स्मृतिसे महेन्द्रके मनमें पुलक-आवेश जाग उठा। विनोदिनी जिस तकियेको छातीके नीचे दबाकर लेटी थी उस तकियेको खींचकर महेन्द्र उसपर सिर रखकर लेट गया, और 'विषवृक्ष' उठाकर उसके पन्ने उलटने लगा। पन्ने उलटते-उलटते पढ़नेमें लग गया,—और कब पाँच बज गये, उसे होश ही न रहा।

इतनेमें, एक मुरादाबादी बड़े थालमें फल और मिठाईकी तश्तरियाँ और बरफ चीनी-सुगन्धि-युक्त खरबूजेका कटोरा लिये-हुए विनोदिनीने कमरेमें प्रवेश किया, और थालको महेन्द्रके सामने रखती-हुई बोली, "क्या कर रहे हो, लालाजी? तुम्हें हो क्या गया है? पाँच बज गये, अभी तक न तो हाथ-मुँह धोया, न कपड़े बदले!"

महेन्द्रके मनपर एक धक्का-सा लगा। 'महेन्द्रको क्या हुआ है'—यह क्या पूछनेकी बात है? विनोदिनीसे यह क्या छिपा रहना चाहिए? आजका दिन क्या और-और दिनके समान है? महेन्द्र इस डरसे कि कहीं ऐसा न हो कि उसने जो आशा कर रखी है उससे उलटा ही कुछ हो जाय, कलकी बातका स्मरण दिलाकर कोई दावा पेश न कर सका।

महेन्द्र जलपान करने बैठा। विनोदिनी छतपर धूपमें-पड़े महेन्द्रके कपड़े जल्दीसे उठा लाई, और अपने निपुण हाथोंसे अच्छी तरह घरी करके उन्हें अलमारीमें रखने लगी।

महेन्द्र बोला, "जरा ठहरो, जलपान करके मैं तुम्हारी सहायता करता हूं।"

बिनोदिनीने हाथ जोड़कर कहा, "दुहाई है तुम्हें, तुम और चाहे जो करो, पर सहायता न करना।"

महेन्द्र हाथ-मुंह धोकर उठ बैठा, और आगे बढ़कर बोला, "अच्छा! मुझे तुमने अकर्मण्य समझ रखा है! अच्छा तो आज परीक्षा हो जाय।" इतना कहकर वह कपड़े घरी करनेकी वृथा चेष्टा करने लगा।

विनोदिनीने महेन्द्रके हाथसे कपड़ा छीनते-हुए कहा, "अजी महाशय, आप रहने दीजिये, मेरा मान न बढ़ाइये।"

महेन्द्रने कहा, "तो तुम काम किये जाओ, मैं देख-देखकर सीखता हूं।" यह कहता-हुआ वह अलमारीके सामने विनोदिनीके पास जमीनपर पालती मारकर बैठ गया।

विनोदिनी कपड़े फटकारनेके लिए महेन्द्रकी पीठका उपयोग करने लगी, और फिर उन्हें अच्छी तरह घरी करके अलमारीमें रखने लगी।

आजका मिलन इसी तरह आरम्भ हुआ। महेन्द्रने सवेरेसे जैसी कल्पना कर रखी थी, वैसी अपूर्वताका कोई लक्षण ही नहीं पाया गया। इस तरहका मिलन न तो काव्यमें लिखने-योग्य है, और न सङ्गीतमें गाने योग्य, और तो क्या, उपन्यास रचने-योग्य भी नहीं। किन्तु फिर भी महेन्द्र दुःखित नहीं हुआ, बल्कि उसे कुछ आराम ही मिला। अपने काल्पनिक आदर्शको वह किस तरह खड़ा कर रखता, उसके लिए क्या-क्या आयोजन करता, किस तरहकी बातें करता, कैसा भाव दिखाता, सब तरहकी साधारणताको किस तरीकेसे दूर हटाये रखता – ये सब बातें महेन्द्रसे तय करते नहीं बन रही थीं, इसलिए इस कपड़े झाड़ने और घरी करनेमें हँसी-मजाक करके मानो वह स्वरचित एक असम्भव दुरूह आदर्शके हाथसे छुटकारा पाकर जी गया।

ठीक इसी समय कमरेमें राजलक्ष्मीने प्रवेश किया ; और आते ही महेन्द्रसे वे बोलीं, "महेन, बहू तो कपड़े रख रही है,–तू यहाँ बैठा-बैठा क्या कर रहा है ?"

विनोदिनीने कहा, "देखो न, बुआजी, झूठमूठको मेरा सिर्फ काम बढ़ा रहे हैं बैठे-बैठे ।"

महेन्द्र बोल उठा, "वाह रे वाह ! मैं तो उलटा काममें मदद कर रहा हूं ।"

राजलक्ष्मीने कहा, "ऐसे ही मेरे भाग्य हैं न ! तू, और काममें मदद करेगा ! जानती हो, बहू, महेनका शुरूसे ही यही हाल है । हमेशासे मा और चाचीका लाड़ पाकर ऐसा हो गया है कि जानता ही नहीं काम किसे कहते हैं ।"

इतना कहकर माता परमस्नेहसे काममें अपटु अपने पुत्रको देखने लगीं ।

राजलक्ष्मी बराबर विनोदिनीसे यही परामर्श करती रहतीं कि उनके इस अकर्मण्य और नितान्त मातृ-स्नेहापेक्षी वयस्क सन्तानको कैसे सर्व प्रकारके सुखमें रखा जाय । अपने पुत्रकी सेवाके विषयमें विनोदिनीपर निर्भर रहकर वे अत्यन्त निश्चिन्त और परम सुखी थीं । अब महेन्द्र जो विनोदिनीकी कदर करने लगा है और उसे रखनेके लिए उसमें जो आग्रह पैदा हो गया है, इससे भी राजलक्ष्मीको बड़ी खुशी होने लगी है । उन्होंने महेन्द्रको सुनाते हुए कहा, "बहू, आज तो तुमने महेन्द्रके गरम कपड़े घाममें डाल दिये,– अब कल इसके नये रूमालोंपर इसका नाम काढ़ देना । तुम्हें जबसे यहाँ लाई हूं, आराम तो कुछ दे न सकी, बेटी, सिर्फ काम कराते-कराते नाकमें दम किये दे रही हूं ।"

विनोदिनीने कहा, "बुआजी, तुम अगर ऐसे कहोगी तो मैं समझूंगी कि तुम मुझे गैर समती हो, हाँ !"

राजलक्ष्मीने बड़े लाड़से कहा, "नहीं, बेटी, ऐसी बात न कहो,–तुम सरीखी ऐसी अपनी बिटिया मुझे मिलेगी कहाँ ?"

विनोदिनी जब सब कपड़े रख चुकी तब राजलक्ष्मीने कहा, "अब क्या मैं चीनीका रस चढ़ा दूं चूल्हेपर, या तुम्हें और-कोई काम करना है ?"

विनोदिनीने कहा, "नहीं, बुआजी, और कोई काम नहीं मेरे हाथमें। चलो, मिठाई ही बना ली जाय चलके।"

महेन्द्र बोल उठा, "मा, अभी-अभी तो तुम्हें बड़ी दया आ रही थी इनपर कि काम ले-लेकर तुम इन बेचारीके नाकमें दम कर देती हो, और अब तुरत फिर काममें घसीटे लिये जा रही हो!"

राजलक्ष्मीने विनोदिनीकी ठोड़ी छूते-हुए कहा, "यह हमारी लक्ष्मी-बिटिया है न, काममें लगे रहनेमें ही प्रसन्न रहती है।"

महेन्द्रने कहा, "आज शामको मुझे कोई काम नहीं,—मैंने सोचा था कि 'किरकिरी' के साथ कोई किताब पढ़ूँगा।"

विनोदिनी बोल उठी, "बुआजी, आज शामको हम-तुम दोनों मिलकर लालाजीसे कोई पुस्तक सुनेंगी। क्यों ठीक है न?"

राजलक्ष्मीने सोचा, 'महेन बेचारा बिलकुल ही अकेला पड़ गया है, इस समय हम सबको मिलकर उसका मन बहालाना चाहिए।' और बोलीं, "हाँ, ठीक है, मिठाई और शामकी रसोई बनाकर हम दोनों आज शामको यहीं बैठ कर पुस्तक सुनेंगी। क्यों महेन, ठीक है न?"

विनोदिनीने कटाक्षके साथ एक बार महेन्द्रके मुँहकी तरफ देखा।

महेन्द्रने कहा, "अच्छा।"

किन्तु उसका सारा उत्साह जाता रहा।

विनोदिनी राजलक्ष्मीके साथ-साथ नीचे चली गई।

महेन्द्र नाराज होकर सोचने लगा, 'मैं भी आज बाहर चला जाऊंगा और देर करके घर आऊंगा।' और तुरत उसने बाहर जानेके लिए कपड़े पहन लिये। किन्तु उसका सङ्कल्प कार्यमें परिणत नहीं हुआ। बहुत देर तक वह छतपर टहलता रहा, बीच-बीचमें जीनेकी तरफ झाँकता रहा, और अन्तमें कमरेमें जाकर बैठ गया। और झुँझलाकर मन-ही-मन कहने लगा, 'आज मैं मिठाई छुऊंगा तक नहीं,—माको जता दूंगा कि इतनी देर तक चासनी बनाते रहनेसे उसमें मिठास नहीं रहती।'

आज भोजनके समय विनोदिनी राजलक्ष्मीको साथ लेती आई। राजलक्ष्मी साँस फूलनेके डरसे प्रायः ऊपर नहीं आना चाहतीं, किन्तु विनोदिनीके आग्रहसे उन्हें आना ही पड़ा। महेन्द्र अत्यन्त गम्भीर मुँह बनाकर खाने बैठा।

विनोदिनी बोली, "यह क्या, लालाजी, आज तो तुम कुछ खा ही नहीं रहे हो!"

राजलक्ष्मी व्यस्त होकर पूछने लगीं, "क्या बात है, बेटा, तबीयत तो ठीक है न?"

विनोदिनीने कहा, "इतनी मेहनत करके इतने चावसे मिठाई बनाई,—तुम्हें मेरी सौगन्द है, लालाजी, खानी ही पड़ेगी। अच्छी नहीं बनी क्या? तो रहने दो। नहीं नहीं, अनुरोधके लिहाजसे जबरदस्ती खानेमें क्या है! नहीं नहीं, रहने दो।"

महेन्द्रने कहा, "क्या मुसीबत है! मिठाई खानेकी ही सबसे ज्यादा इच्छा है, लग भी अच्छी रही है, तुम्हारे रोकेसे मैं रुक कैसे जाऊं?"

थालीकी सब मिठाई महेन्द्रने खाकर खतम कर दी, उसकी चूर तक थालीमें नहीं छोड़ी।

भोजन करनेके बाद महेन्द्र ऊपर अपने कमरेमें चला आया। और इसके कुछ देर बाद चौका उठा-उठाकर राजलक्ष्मी और बिनोदिनी भी ऊपर आकर बैठ गईं।

राजलक्ष्मीने कहा, "तू क्या तो किताब सुनानेवाला था न, सुना अब।"

महेन्द्रने कहा, "पर उसमें तो, मा, देवी-देवताओंका वर्णन नहीं है, उसका वर्णन सुननेमें तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा।"

अच्छा नहीं लगेगा राजलक्ष्मीको! आज वे इसके लिए कृतसङ्कल्प हैं, जैसे भी हो, अच्छा लगना ही है आज उन्हें। महेन्द्र अभी अगर अरबी या फारसी भाषाकी कोई पुस्तक पढ़ना शुरू कर दे तो वह भी उन्हें अच्छी लगकर रहेगी। अहा, बेचारा महेन्द्र, बहू काशी चली गई है, अकेला पड़ गया है। उसे जो अच्छा लगे, भला माको वह कैसे अच्छा न लगेगा?"

विनोदिनीने कहा, "तुम एक काम करो, लालाजी, बुआजीके कमरेमेंसे

'शान्ति-शतक' रखी है,—और कोई किताब न पढ़कर आज उसीको सुनाओ। बुआजीका भी मन लग जायगा, और शाम भी अच्छी तरह कट जायगी।"

महेन्द्रने नितान्त करुण-भावसे एक बार विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखा।

इतनेमें नौकरानीने आकर खबर दी, "माजी, कायथ-ठकुरानी आकर तुम्हारे कमरेमें बैठी हैं।"

कायथ-ठकुरानीसे राजलक्ष्मीकी अन्तरङ्ग मित्रता है। शामके बाद उनसे गप-शप करनेका प्रलोभन राजलक्ष्मी छोड़ नहीं सकती थीं, किन्तु फिर भी उन्होंने नौकरानीसे कह दिया, "उनसे जाकर कह दे कि आज महेन्द्रके कमरेमें मुझे काम है जरा,—कल वे जरूर-जरूर आवें।"

महेन्द्र जल्दीसे बोल उठा, "क्यों मा, तुम उनसे मिल ही आओ न!"

विनोदिनीने कहा, "जरूरत क्या है, बुआजी, तुम यहीं रहो, मैं जाकर उनके पास बैठती हूं।"

राजलक्ष्मी प्रलोभनको न सम्हाल सकीं, उन्होंने कहा, "बहू, तुम यहीं बैठो, मैं जाती हूं,—देखूँ दो-चार बात करके विदा कर सकी तो आ जाऊंगी। तुमलोग पढ़ना शुरू करो,—मेरी राह न देखना।"

राजलक्ष्मीके कमरेसे बाहर निकलते ही महेन्द्रसे फिर रहा नहीं गया, बोला, "क्यों तुम मुझे जान-बूझकर इस तरह झूठमूठको सताया करती हो?"

विनोदिनी मानो आश्चर्यसे दंग रह गई, बोली, "वाह जी वाह! मैंने तुमको क्या सताया? तो क्या तुम्हारे कमरेमें मेरा आना ही जुर्म है! मुझे क्या पड़ी है,—ये लो, मैं चल दी।" कहती-हुई वह अत्यन्त विमर्ष मुंह बना कर जानेको तैयार हो गई।

महेन्द्रने उसका हाथ पकड़ लिया, बोला, "इसी तरह तो तुम मुझे जलाती रहती हो।"

विनोदिनीने कहा, "चलियो सम्हालिया, कोई है! मुझे क्या मालूम था कि मुझमें इतना तेज है! तुम्हारे भी तो प्राण कुछ कम कठिन नहीं, बहुत सह लेते हैं। पर चेहरा देखकर तो यह नहीं मालूम होता कि बहुत ज्यादा झुलस गये हो?"

महेन्द्रने कहा, "चेहरेसे क्या समझोगी!" और चटसे उसने बलपूर्वक विनोदिनीका हाथ पकड़कर अपनी छातीपर धर दबाया।

विनोदिनी "ऊःफ्" कहके चीख उठी, और महेन्द्रने उसी क्षण उसका हाथ छोड़ दिया। बोला, "लग गई क्या?"

देखा कि कल विनोदिनीके जहाँ चोट लगी थी वहाँसे फिर खून गिर रहा है। महेन्द्रने अनुतप्त होकर कहा, "मैं भूल गया था,– बड़ा अन्याय हुआ मुझसे। आज लेकिन मैं अभी तुरत दवा लगाकर बैण्डेज बाँध दूंगा, छोड़ूंगी नहीं।"

विनोदिनीने कहा, "नहीं, जरूरत नहीं। मुझे दवा नहीं लगवानी।"

महेन्द्रने कहा, "क्यों, क्या बात है?"

विनोदिनीने कहा, "बात क्या होगी। तुम्हें डाक्टरी करनेकी जरूरत नहीं,– जैसा है वैसा रहने दो।"

महेन्द्र क्षणमें गम्भीर हो गया, और मन-ही-मन बोला, "कुछ समझमें नहीं आता! विचित्र है इन औरतोंका मन!'

विनोदिनी उठ खड़ी हुई। अभिमानी महेन्द्रने बाधा नहीं दी, बोला, "कहाँ जा रही हो?"

विनोदिनीने कहा, "काम है।" और फिर वह धीर-गतिसे नीचे चली गई।

मिनट-भर बैठा रहकर महेन्द्र विनोदिनीको लौटा लानेके लिए बड़ी तेजीसे उठ खड़ा हुआ, और जीनेके पास तक जाकर और फिर वापस आकर छतपर चहलकदमी करने लगा।

विनोदिनी दिन-रात उसे अपनी ओर आकर्षित भी करती है और फिर एक क्षणके लिए अपने पास भी नहीं फटकने देती,– यह रहस्य क्या है? महेन्द्रको इस बातका गर्व था कि उसे कोई जीत नहीं सकता। उसका वह गर्व जाता रहा। किन्तु, कोशिश करनेपर वह दूसरेको जीत सकता है, इस गर्वकी भी क्या वह रक्षा न कर सकेगा? आज उसे खुद हार माननी पड़ी, किन्तु दूसरेसे वह हार न मनवा सका। अपने हृदय-क्षेत्रमें महेन्द्रका मस्तक

बहुत ही ऊँचा था, दूसरे किसीको भी वह अपने समान नहीं समझता था,— आज वहीं उसे अपने मस्तकको धूलमें रुलाना पड़ा। उसने जो अपनी श्रेष्ठता खो दी, उसके बदले उसे कुछ मिला भी नहीं। भिक्षुकके समान बन्द द्वारके सामने सन्ध्याके समय उसे रीते हाथ राहमें खड़ा रहना पड़ा।

फागुन-चैतमें बिहारीकी जमींदारीसे सरसोंके फूलका शहद आया करता था ; और हर साल उसे वह राजलक्ष्मीके यहाँ भेज दिया करता था। इस साल भी भेज दिया।

विनोदिनी शहदका भाँड़ लेकर स्वयं राजलक्ष्मीके पास पहुंची, और बोली, "बुआजी, बिहारी-लालाजीके यहाँसे शहद आया है।"

राजलक्ष्मीने उसे भण्डारमें रखनेके लिए कह दिया। शहद भण्डारमें रखकर विनोदिनी उनके पास आकर बैठ गई ; और बोली, "बिहारी-लालाजी हमारे घरकी बराबर खबर-सुध लिया करते हैं, भूलते नहीं। उन बेचारेकी मा नहीं हैं, तुम्हींको वे मा समझते हैं।"

बिहारीको राजलक्ष्मी महेन्द्रकी छाया समझती थीं, और इसीलिए कभी वे उसके बारेमें विशेष-कुछ सोचती न थीं,— वह इस घरका बिना-तनखाका बिना जतनका बिना-चिन्ताका अनुगत सेवक था। विनोदिनीने जब राजलक्ष्मीको मातृहीन बिहारीकी मा बताया तब राजलक्ष्मीका हृदय अकस्मात् उसकी ममतासे विह्वल हो उठा। सहसा उन्हें खयाल आया कि 'बात तो सच है, बिहारीके मा नहीं है, मुझे ही वह मा समझता है।' याद उठ आई, रोगमें संकटमें बिहारी बराबर बिना-बुलाये बिना आड़म्बरके उनके पास दौड़ा आया है और उनकी चुपचाप निष्ठाके सेवा की है। राजलक्ष्मीने उसकी सेवाको निश्वास-प्रश्वासके समान अत्यन्त सहज-रूपमें ग्रहण किया है, और उसके लिए कभी किसीके प्रति कृतज्ञ होनेकी कोई बात ही उनके मनमें उदित नहीं हुई। किन्तु बिहारीकी खबर-सुध किसने रखी है ? जब अन्नपूर्णा थीं तब वे जरूर उसकी खबर-सुध रखती थीं। और तब राजलक्ष्मी सोचती थीं, 'बिहारीको वशमें रखनेके लिए अन्नपूर्णा स्नेहका आड़म्बर करती है।'

राजलक्ष्मीने आज एक गहरी साँस लेकर कहा, "तुम ठीक कहती हो, बहू, बिहारी मेरे लड़केके समान ही है।" कहनेके साथ ही वे सोचने लगीं, बिहारी उनके अपने लड़केसे भी बढ़कर है, और कभी भी विशेष-कुछ प्रतिदान न मिलनेपर भी उनके प्रति उसकी भक्ति बराबर एकसी बनी रही। सोचते सोचते उनके हृदयके भीतरसे एक दीर्घ-निश्वास निकल आया।

विनोदिनीने कहा, "बिहारी-लालाजीको तुम्हारे हाथकी रसोई बहुत अच्छी लगती है।"

राजलक्ष्मीने स्नेहपूर्ण गर्वसे कहा, "और-किसीके हाथका मछलीका झोर उसे रुचता ही नहीं।" कहते-कहते उन्हें खयाल आया कि बहुत दिनोंसे बिहारी आया नहीं। वे बोलीं, "अच्छा, बहू, बिहारी आजकल दिखाई क्यों नहीं पड़ता?"

विनोदिनीने कहा, "मैं भी तो यही सोच रही थी। बात यह है, बुआजी, कि तुम्हारे बेटाजी तो ब्याहके बादसे अपनी बहूको लेकर ऐसे फँसे हुए हैं कि उन्हें और कोई सूझता ही नहीं,– फिर इष्ट-मित्र कोई आकर क्या करे, बताओ?"

बात राजलक्ष्मीको बिलकुल जँच गई। अपनी बहूके पीछे महेन्द्रने अपने सभी हितैषियोंको दूर हटा दिया है। बिहारी अगर महेन्द्रसे रूठ गया हो, तो इसमें कोई बेजा बात नहीं। बिहारीको अपने पक्षमें पाकर उसके प्रति राजलक्ष्मीकी समवेदना बढ़ गई। राजलक्ष्मी विनोदिनीको विस्तारके साथ बताने लगीं कि बिहारी बचपनसे बिलकुल निःस्वार्थ-भावसे महेन्द्रका कितना उपकार करता आया है, और उसके लिए उसे कितनी बार कितने कष्ट सहने पड़े हैं। और उस वर्णनसे वे इस बातका भी समर्थन करने लगीं कि लड़केके खिलाफ उनकी निजकी जो शिकायत है वह ठीक है। और अन्तमें उन्होंने सिद्ध कर दिया कि दो-दिनकी बहूके पीछे महेन्द्र अगर अपने चिरकालके हितैषी बन्धुओंका ऐसा अनादर करता है, तो फिर संसारमें न्याय-धर्म कहनेको रह ही क्या जायगा। विनोदिनीने कहा, "कल रविवार है, बुआजी, कल तुम बिहारी लालाजीको न्योता देकर खिलाओ-पिलाओ तो वे बहुत खुश होंगे।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुमने बहुत ठीक कहा, बहू! तो मैं महेनको बुलवाती हूं, वो बिहारीको न्योता भिजवा देगा।"

विनोदिनीने कहा, "नहीं, बुआजी, तुम खुद न्योता भेजो।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मैं क्या तुमलोगोंकी तरह पढ़ी-लिखी हूं?"

विनोदिनी बोली, "इससे क्या हुआ, तुम्हारी तरफसे मैं लिख दूंगी न!"

विनोदिनीने राजलक्ष्मीके नामसे खुद ही निमन्त्रणकी चिट्ठी लिखकर भेज दी।

रविवार महेन्द्रके लिए अत्यन्त आग्रहका दिन है। शनिवारकी रातसे उसकी कल्पना उद्दाम हो उठती है। यद्यपि आज तक उसकी कल्पनाके अनुरूप कुछ भी हुआ नहीं. फिर भी प्रभातकी सूर्य-किरणें आज उसकी आँखोंमें सुधा बरसाने लगीं। जाग्रत नगरीका सम्पूर्ण कोलाहल उसके कानोंमें अपूर्व संगीतकी तरह प्रवेश करने लगा।

किन्तु बात क्या है? माका आज कोई व्रत है क्या? आज तो वे और दिनोंकी तरह विनोदिनीपर घरके काम-काजका भार सौंपकर निश्चिन्त नहीं बैठीं। आज तो वे खुद ही व्यस्तताके साथ रसोईका काम सम्हाल रही हैं।

काम-काजकी धूममें दस बज गये। किन्तु इस बीचमें महेन्द्र किसी बहानेसे विनोदिनीसे एक क्षणके लिए भी एकान्तमें मिल नहीं सका। किताब पढ़नेकी कोशिश की, किन्तु पढ़नेमें कतई मन नहीं लगा। अखबार उठाकर उसके एक अनावश्यक विज्ञापनको वह पन्द्रह मिनट तक एकटक देखता रहा। अन्तमें उससे रहा नहीं गया, उठके नीचे चल दिया।

नीचे जाकर उसने देखा कि मा अपने कमरेके सामनेवाले दालानमें बैठी सिगड़ीपर कुछ राँध रही हैं; और विनोदिनी कमरसे धोतीका पल्ला लपेटे उनकी सहायतामें जुटी-हुई है।

महेन्द्रने पूछा, "आज बात क्या है, मा? इतनी धूनधाम क्यों?"

राजलक्ष्मीने कहा, "बहूने तुमसे कहा नहीं क्या? आज मैंने बिहारीको न्योता दिया है?"

बिहारीको न्योता! महेन्द्रके नीचेसे ऊपर तक आग लग गई। उसने उसी क्षण कहा, "लेकिन, मा, मैं तो घरपर रह नहीं सकूंगा।"

"क्यों?"

"मुझे बाहर जाना है।"

"तो खा-पीकर जाना, ज्यादा देर नहीं होगी।"

"बाहर मुझे न्योतेमें तो जाना ही है।"

विनोदिनीने एक क्षणके लिए महेन्द्रकी ओर कटाक्षपात करते-हुए कहा, "इनका न्योता है तो इन्हें जाने दो न, बुआजी! हर्ज क्या है? बिहारी लालाजी आज अकेले ही खा-पी लेंगे।

किन्तु अपने हाथकी इतने जतनसे बनाई-हुई रसोई वे महेन्द्रको न खिला सकें, भला यह कैसे हो सकता है? घर ही पर खानेके लिए महेन्द्रसे वे जितना ही अनुरोध करने लगीं उतना ही महेन्द्र अकड़ता गया। कहने लगा, "बहुत ही जरूरी निमन्त्रण है, उसे टाला नहीं जा सकता। बिहारीको न्योता देनेके पहले मुझसे सलाह तो कर लेनी चाहिए थी।" इत्यादि-इत्यादि।

इस तरह नाराज होकर महेन्द्रने मन-ही-मन माको सजा देनेकी ठान ली। राजलक्ष्मीका सारा उत्साह ही जाता रहा। उनकी इच्छा होने लगी, सब फेंक-फांककर वे और-कहीं चली जायें।

विनोदिनीने कहा, "बुआजी, तुम कुछ चिन्ता मत करो,— लालाजी मुँहसे ही गरज रहे हैं, बरसेंगे नहीं। आज ये कहीं नहीं जानेके।"

राजलक्ष्मीने सिर हिलाते-हुए कहा, "नहीं, बहू, तुम जानती नहीं महेनको, एक बार कोई जिद पकड़ लेता है तो फिर वह उसे पूरी करके ही छोड़ता है।"

किन्तु बादमें यही प्रमाणित हुआ कि विनोदिनी महेन्द्रको राजलक्ष्मीसे कम नहीं जानती। महेन्द्रने समझा था कि बिहारीको विनोदिनीने ही न्योता दिलाया है। इससे, उसका हृदय ईर्षासे जितना ही जलने लगा उतना ही उसके लिए दूर जाना कठिन हो गया। बिहारी क्या करता है, विनोदिनी क्या करती है, यह बिना देखे वह जीयेगा कैसे? देख-देखकर जलेगा, किन्तु देखेगा जरूर।

बिहारीने आज बहुत दिन बाद निमन्त्रित-आत्मीयके रूपमें महेन्द्रके अन्तःपुरमें प्रवेश किया। बचपनसे जो घर उसका सुपरिचित है, और जहाँ वह शुरूसे घरके लड़केकी तरह बेरोक-टोक प्रवेश करके ऊधम मचाता रहा है, आज उसी घरके दरवाजेके पास आकर वह क्षण-भरके लिए ठिठककर खड़ा हो गया। सहसा एक अश्रु-तरङ्गने ऊपर उठनेके लिए उसके हृदय-द्वारपर आघात किया। उस आघातको जहाँका तहाँ रोककर अपनेको सम्हालते-हुए उसने स्मित हास्यके साथ भीतर प्रवेश किया, और सद्यःस्नाता राजलक्ष्मीको प्रणाम करके पाँवोंकी धूल माथेसे लगाई। इस घरमें बिहारीका जब रोजका जाना-आना था तब इनमें ऐसे अभिवादनकी प्रथा नहीं थी। आज मानो वह बहुत दूर-प्रवाससे घर लौटा हो। बिहारी ज्यों ही प्रणाम करके उठा, राजलक्ष्मीने स्नेहके साथ उसके सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

राजलक्ष्मीने आज निगूढ़ सहानुभूतिके कारण बिहारीके प्रति पहलेसे बहुत ज्यादा लाड़ और स्नेह प्रकट किया। कहा, "क्यों रे बिहारी, तू इतने दिनोंसे आया क्यों नहीं? मैं रोज सोचा करती थी कि आज जरूर आयेगा, पर तू आया ही नहीं।"

बिहारीने हँसते-हुए कहा, "रोज आनेसे तो तुम बिहारीकी रोज याद नहीं करतीं, मा! – महेन-भइया कहाँ हैं?"

राजलक्ष्मी उदास होकर बोली, "महेनका आज कहीं निमन्त्रण है, इससे वह ठहर नहीं सका।"

सुनते ही बिहारीका मन बैठ गया। बचपनसे जो प्रेम चला आ रहा है उसका क्या यही परिणाम है? एक लम्बी साँस छोड़कर, अपने मनसे सम्पूर्ण विषाद-वाष्पको कमसे कम इस समयके लिए उड़ा देनेकी चेष्टा करते-हुए बिहारीने पूछा, "आज क्या-क्या बनाया है, मा, सुनूं तो सही?" और फिर वह अपने प्रिय व्यञ्जनोंके विषयमें पूछने लगा।

बिहारीकी शुरूसे यह आदत थी कि जिस रोज राजलक्ष्मी खुद रसोई बनाती थीं, उस रोज वह कुछ अतिरिक्त आडम्बरके साथ अपनेको 'भोजनका लालची' साबित करनेकी कोशिश किया करता था, और इस तरह अपनी

लोलुपता दिखाकर वह मातृ-हृदय-शालिनी राजलक्ष्मीका स्नेह वसूल किया करता था। आज भी राजलक्ष्मीने अपने हाथके बने व्यञ्जनोंपर बिहारीका अति-लोभ देखकर हँसते-हुए अपने इस लोभातुर अतिथिको आश्वासन दिया।

इतनेमें महेन्द्र आ गया, और उसने रूखे स्वरमें बिहारीसे शिष्टताके नाते पूछा, "कहो बिहारी, कैसे हो?"

राजलक्ष्मीने आश्चर्यके साथ पूछा, "क्यों रे महेन, तू अपने निमन्त्रणमें नहीं गया?"

महेन्द्रने अपनी लज्जा ढकनेकी कोशिश करते-हुए कहा, "नहीं, उसे टाल देना पड़ा।"

इतनेमें नहा-धोकर विनोदिनी आ गई। उसे देखकर बिहारीसे कुछ कहते न बना। विनोदिनी और महेन्द्रका जो दृश्य वह उस दिन देख चुका था, उसे अब तक वह भूला नहीं था।

विनोदिनी बिहारीके पास आकर मृदु स्वरमें बोली, "क्यों लालाजी, मुझे पहचान नहीं सके क्या?"

बिहारीने कहा, "सबको क्या पहचाना जा सकता है?"

विनोदिनीने कहा, "थोड़ी समझ हो तो क्यों नहीं पहचाना जा सकता!" और फिर उसने खबर दी कि 'खाना तैयार है।'

बिहारी और महेन्द्र दोनों खाने बैठे। राजलक्ष्मी पास बैठके देखने लगीं और विनोदिनी परोसने लगी।

महेन्द्रका खानेमें ध्यान नहीं था, वह सिर्फ परोसनेवालीके पक्षपातपर लक्ष्य रखने लगा। उसे ऐसा लगने लगा कि बिहारीको परोसने-खिलानेमें विनोदिनी को एक तरहका विशेष सुख मिल रहा है। बिहारीकी थालीमें ही खास तौरसे जो ज्यादा मछलीका सिरा और दहीकी मलाई पड़ने लगी, उसकी एक खास कैफियत थी कि 'महेन्द्र घरका आदमी है और बिहारी निमन्त्रित अतिथि है', किन्तु मुँह खोलकर शिकायत करनेका कोई ठोस कारण न होनेसे ही महेन्द्र और भी ज्यादा जलने लगा। असमयमें विशेष प्रयत्न-पूर्वक तपसी-मछली जुगाड़ की गई थीं, उनमें एक अण्डेवाली भी थी, — उस मछलीको विनोदिनी

बिहारीकी थालीमें देने लगी तो बिहारीने कहा, "नहीं मुझे नहीं, महेन-भइयाको दो, इन्हें बहुत अच्छी लगती है।" महेन्द्रने तीव्र अभिमानके साथ कहा, "नहीं नहीं, मुझे नहीं चाहिए।" इसके बाद विनोदिनीने दूसरी बार अनुरोध न करके उसे बिहारीकी थालीमें डाल दिया।

भोजन करनेके बाद दोनों मित्र उठकर आँगनमें आ गये। विनोदिनीने जल्दीसे आकर कहा, "बिहारी-लालाजी, जानेकी इतनी जल्दी क्या है,—चलो, ऊपरके कमरेमें जाकर बैठो तो सही जरा।"

बिहारीने कहा, "तुम खाओगी नहीं ?"

विनोदिनीने कहा, "नहीं,—आज एकादशी है।"

निष्ठुर व्यंगकी एक सूक्ष्म हास्य-रेखा बिहारीके ओंठोंपर दिखाई देकर रह गई, उसका अर्थ यह था कि 'एकादशी भी पाली जाती है! आचार-अनुष्ठानमें कोई त्रुटि नहीं।'

यह व्यंग-भरी मुसकराहट विनोदिनीकी नजरोंसे छिपी नहीं रही। किन्तु उसने जैसे उस दिनकी चोटको सह लिया था, उसी तरह यह भी सह लिया। उसने नम्र बिनतीके स्वरमें कहा, "तुम्हें मेरे कण्ठकी सौगन्द है, लालाजी, ऊपर चलकर बैठो जरा।"

महेन्द्र सहसा असङ्गत-रूपसे उत्तेजित होकर बोल उठा, "तुमलोगोंको किसी बातका विचार ही नहीं,—किसीको कोई काम हो काज हो, इच्छा हो या न हो, फिर भी बैठना तो पड़ेगा ही! इतना ज्यादा आदर करनेके मानी क्या, मेरी तो कुछ समझमें नहीं आता।"

विनोदिनी ठहाका मारकर हँस पड़ी। बोली, "बिहारी-लालाजी, सुनो जरा, अपने भाई-साहबकी जरा बात तो सुनो। 'आदर करने' के मानी हैं आदर करना, कोशमें इसके सिवा और-कोई मानी तो लिखे नहीं।" और फिर महेन्द्रकी तरफ मुड़कर कहने लगी, "तुम कुछ भी कहो, लालाजी, 'ज्यादा आदर' के मानी बचपनसे तुम जितना साफ समझते आ रहे हो, इतना और कोई नहीं समझ सकता।" (बंगलामें 'आदर' के मानी 'लाड़-प्यार' भी हैं, और यहाँ माके 'लाड़ले बेटे' पर व्यंग है)

बिहारीने कहा, "महेन-भइया, तुमसे एक बात करनी है, जरा सुन जाओ।" इतना कहकर वह विनोदिनीके प्रति किसी प्रकारका शिष्ट-सम्भाषण किये बिना ही महेन्द्रको साथ लेकर बाहर चला गया।

विनोदिनी बरण्डेमें रेलिंगके सहारे चुपचाप खड़ी-खड़ी सूने आँगनकी शून्यताकी तरफ देखती रह गई।

बिहारीने बाहर चलकर महेन्द्रसे कहा, "महेन-भइया, मैं जानना चाहता हूं, हमारी मित्रता क्या यहीं खतम है?"

महेन्द्रकी छातीके भीतर तब आग जल रही थी, विनोदिनीका व्यंग-हास्य विद्युत-शिखाकी तरह उसके मस्तिष्कमें इधरसे उधर बार-बार चमक-चमककर उसे भस्म किये दे रहा था। उसने कहा, "समझौता हो जानेसे तुम्हारे लिए विशेष सुविधा हो सकती है, किन्तु मेरे लिए वह कामनाकी वस्तु नहीं हो सकती। अपनी गृहस्थीमें मैं बाहरी आदमीको नहीं घुसाना चाहता,—अन्तःपुरको मैं अन्तःपुर ही रखना चाहता हूं।"

बिहारी बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप चला गया।

ईर्षासे जर्जरित महेन्द्रने पहले तो प्रतिज्ञा की कि विनोदिनीसे अब वह नहीं मिलेगा, और फिर विनोदिनीसे मिलनेकी आशामें वह भीतर और बाहर, नीचे और ऊपर, इधरसे उधर भटकता-हुआ फिरने लगा।

२९

आशाने एक दिन अन्नपूर्णासे पूछा, "अच्छा, मौसी, मौसाजीकी तुम्हें याद है?"

अन्नपूर्णाने कहा, "मैं ग्यारह बरसकी उमरमें विधवा हुई थी,—पतिकी मूर्ति छाया-सी याद पड़ती है।"

आशाने पूछा, "तो फिर तुम किसका ध्यान किया करती हो, मौसी?"

अन्नपूर्णाने कहा, "मेरे पति अब जिनमें मौजूद हैं, उन्हीं भगवानका।"

आशाने कहा, "उससे तुम्हें सुख मिलता है?"

अन्नपूर्णा स्नेहके साथ आशाके सिरपर हाथ फेरती-हुई बोलीं, "मेरे मनकी बात तू क्या समझ सकेगी, बेटी ! यह तो मेरा मन जानता है या वही जानते हैं जिनका मैं ध्यान करती हूं ।"

आशा अपने मनमें सोचने लगी, 'मैं जिनकी बात रात-दिन सोचा करती हूं, वे क्या मेरे मनकी बात नहीं जानते ? मैं तो अच्छी तरह चिट्ठी नहीं लिख सकती इसलिए नहीं लिख सकी, पर उन्होंने क्यों चिट्ठी लिखना छोड़ दिया ?'

आशाको कई दिनोंसे महेन्द्रकी कोई चिट्ठी नहीं मिली । एक गहरी साँस लेकर फिर वह मन-ही-मन सोचने लगी, 'आँखकी किरकिरी अगर पासमें होती तो वह मेरे मनकी बात सब ठीक तरहसे लिख देती ।'

भद्दी लिखावटकी तुच्छ चिट्ठी पतिके पास जायगी तो वह आदर नहीं पायेगी, इस बातका खयाल करके चिट्ठी लिखनेको आशाका हाथ ही नहीं उठता। वह जितना ही सम्हाल-सम्हालकर लिखना चाहती उतने ही उसके अक्षर बिगड़ जाते । मनकी बातको वह जितना ही ज्यादा सजा-सजाकर लिखनेकी कोशिश करती उतने ही उसके वाक्य अधूरे रह जाते, हजार कोशिश करनेपर भी पूरे नहीं होते । अगर सिर्फ एक शब्द "श्रीचरणेषु" लिखकर उसके नीचे अपना नाम लिख देनेसे महेन्द्र अन्तर्यामी देवताकी तरह उसके मनकी सब बातें समझ जाता, तो आशाका चिट्ठी लिखना सार्थक हो जाता । विधाताने इतना प्रेम दिया,– जरा-सी भाषा क्यों नहीं दी ?

मन्दिरसे सन्ध्या-आरतीके बाद घर लौटकर आशा अन्नपूर्णाके पैरोंके पास बैठी धीरे-धीरे उनके पैरोंपर हाथ फेरने लगी । बहुत देर चुप रहनेके बाद वह बोली, "मौसी, तुम जो कहा करती हो, 'पतिकी देवताके समान सेवा करना स्त्रीका धर्म है'– पर जो स्त्री मूर्ख है, जिसके बुद्धि नहीं, जानती नहीं कि कैसे पतिकी सेवा की जाती है, उसे क्या करना चाहिए ?"

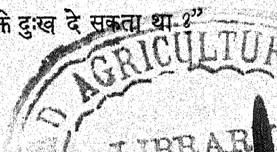
अन्नपूर्णा कुछ देर तक आशाके मुँहकी तरफ देखती रहीं, फिर एक गहरी किन्तु दबी-हुई साँस लेकर बोलीं, "बेटी, मैं भी तो मूर्ख हूं, फिर भी तो मैं भगवानकी सेवा किया करती हूं ।"

आशाने कहा, "वे जो तुम्हारे मनको जानते हैं, इसीसे प्रसन्न होते हैं। पर, मान लो, पति अगर मूर्खाकी सेवासे प्रसन्न न हों?"

अन्नपूर्णाने कहा, "सबको प्रसन्न करनेकी शक्ति सबमें नहीं होती, बेटी! स्त्री अगर आन्तरिक श्रद्धा-भक्तिसे पतिकी सेवा और गृहस्थीका काम करे, तो पति उसे तुच्छ समझकर भले ही ठुकरा दे, स्वयं जगदीश्वर उसे जरूर अपना लेते हैं।"

आशा बिना कुछ उत्तर दिये चुपचाप बैठी रही। मौसीकी इस बातसे सान्त्वना पानेके लिए उसने बहुत चेष्टा की, पर यह बात उसके मनमें किसी तरह बैठी ही नहीं कि पति जिसे तुच्छ समझकर ठुकरा देगा, जगदीश्वर उसे कैसे सार्थकता दे सकते हैं। वह नीचेको दृष्टि किये अपनी मौसीके पैरोंपर हाथ फेरने लगी।

अन्नपूर्णाने तब आशाका हाथ पकड़कर उसे और भी अपने पास खींच लिया, और उसका माथा चूमकर रुद्ध कण्ठको दृढ़ चेष्टासे बाधा-मुक्त करके वे कहने लगीं, "चुन्नी, दुःख-कष्टसे जो शिक्षा मिलती है, सिर्फ कानसे सुन लेनेसे वह नहीं मिल सकती। तेरी इस मौसीने भी एक दिन तेरी-सी उमरमें तेरी ही तरह घर-संसारके साथ बड़ा-भारी लेन-देनका सम्बन्ध जोड़ा था। तब मैं भी तेरी ही तरह सोचा करती थी कि 'जिसकी सेवा करूंगी उसे सन्तोष क्यों नहीं होगा? जिसकी पूजा करूँगी उसका प्रसाद क्यों नहीं पाऊँगी? जिसके लिए मैं भलाईकी चेष्टा करूंगी वह मेरी चेष्टाको भला क्यों नहीं समझेगा?' किन्तु मैंने पग-पगपर देखा कि ऐसा नहीं होता। अन्तमें एक दिन असह्य मालूम हुआ, देखा कि संसारमें मेरा सब-कुछ व्यर्थ हो गया है, उसी दिन मैं घर-संसार त्यागकर चली आई। आज देख रही हूं कि मेरा कुछ भी निष्फल नहीं गया। अरी बिटिया, जिनके साथ असल लेन-देनका सम्बन्ध है, जो इस संसार-हाटके मूल महाजन हैं, वे ही मेरा सब-कुछ ग्रहण कर रहे थे,— हृदयमें बैठकर आज वे इस बातको स्वीकार कर रहे हैं। तब अगर मैं ऐसा जानती! अगर उनका काम समझकर संसारका काम करती, 'उन्हींको दे रही हूं' समझकर संसारको अपना हृदय दे देती, तो कौन मुझे दुःख दे सकता था?"



आशा बिस्तरपर पड़ी-पड़ी बहुत रात तक बहुत बातें सोचती रही, तो भी, अच्छी तरह वह कुछ समझ न सकी। किन्तु पुण्यवती मौसीके प्रति उसीकी असीम भक्ति थी, उस मौसीकी बातको, पूरी तरह समझें न आनेपर भी, उसने एक प्रकारसे शिरोधार्य कर लिया। मौसीने समस्त संसारसे ऊपर जिन्हें हृदयमें स्थान दिया है उनके लिए उसने अन्धकारमें बिस्तरसे उठकर बैठकर ढोक देकर प्रणाम किया। और कहा, "मैं बालिका हूं, मैं तुम्हें नहीं जानती, मैं केवल अपने पतिको जानती हूँ, इसके लिए मेरा कोई अपराध न लेना, प्रभु ! अपने पतिको मैं जो पूजा चढ़ाती हूं, भगवान, तुम उनसे उसे ग्रहण करनेके लिए कहना। वे यदि उसे पैरोंसे ठुकरा दें, तो फिर मैं जी नहीं सकती। मैं अपनी मौसी जैसी पुण्यवती नहीं हूं, एकमात्र तुम्हारा ही आश्रय लेकर मैं नहीं बच सकती।" इतना कहकर आशा बार-बार ढोक देकर नमस्कार करने लगी।

आशाके ताऊका कलकत्ते लौटनेका समय आ गया। विदा होनेके पहले दिन शामको अन्नपूर्णाने आशाको अपनी गोदमें बिठाकर कहा, "चुन्नी, बिटिया मेरी, दुःख-शोक-अमङ्गलसे हमेशा तेरी रक्षा करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। मेरा यही उपदेश है कि कहींसे भी कितना ही कष्ट क्यों न मिलता रहे, अपने विश्वासको अपनी भक्तिको तू हमेशा स्थिर रखना, अपने धर्मको तू सदा अटल बनाये रखना।"

आशाने उनके पांवकी धूल माथेसे लगाते-हुए कहा, "मुझे आशीर्वाद दो, मौसी, भगवान करें ऐसा ही हो।"

३०

आशा कलकत्ता लौट आई। विनोदिनीने उसपर अभिमान करके कहा, "क्यों, किरकिरी, इतने दिन परदेश रह आई, एक चिट्ठी तक नहीं दी?"

आशाने कहा, "तुमने भी तो नहीं दी, बहन!"

विनोदिनीने कहा, "पहले मैं क्यों देती? तुम्हारी ही तो पहले देनेकी बात थी।"

अन्तमें आशाने सखीके गलेसे लिपटकर अपना कसूर मंजूर कर लिया। उसने कहा, "तुम तो जानती हो, बहन, मुझे ठीकसे लिखना नहीं आता। खासकर तुम जैसी पढ़ी-लिखी पण्डितानीको चिट्ठी लिखनेमें मुझे बड़ी शरम आती थी।"

देखते-देखते दोनों सखियोंका मानाभिमानका विवाद मिट गया, और फिर प्रेम उमड़ पड़ा।

विनोदिनीने कहा, "रात-दिन साथ दे-देकर तुमने अपने पतिकी आदत बिलकुल ही खराब कर दी है। हरवक्त उनके पास कोई-न-कोई बना ही रहना चाहिए, इसके बिना उनसे रहा ही नहीं जाता।"

आशाने कहा, "इसीलिए तो मैं तुमपर उनका भार सौंप गई थी। कैसे साथ दिया जाता है, यह तुम मुझसे कहीं अच्छा जानती हो!"

"दिनको तो किसी तरह कालेज भेज-भाजकर निश्चिन्त हो जाती थी, पर शामके बाद फिर छोड़ना किसे कहते हैं! बैठके गप-शप करो तो किताब पढ़के सुनाओ,– फरमाइशोंकी कोई हद ही नहीं!"

"आखिर अकल ठिकाने आई न! तुम जो लोगोंका मन बहला सकती हो, मोहित कर सकती हो,– भला तुम्हें आसानीसे कौन छोड़ने लगा!"

"सावधान रहना, किरकिरी! लालाजीने जैसी ज्यादती शुरू कर दी है, कभी-कभी तो मुझे अपनेपर सन्देह होने लगता है कि शायद वशीकरण-विद्या आती है मुझे!"

आशा हँसती-हुई बोली, "तुम्हें नहीं आयेगी तो और किसे आयेगी! तुम्हारी-सी विद्या अगर मुझे जरा-सी मिल जाती न, किरकिरी, तो मैं जी जाती।"

विनोदिनीने कहा, "क्यों, किसका सर्वनाश करनेको मन चला है? घरमें जो है, पहले उसीकी रक्षा कर,– दूसरोंको मोहित करनेकी कोशिश मत कर री किरकिरी! उसमें बड़ा झंझट है।"

आशाने विनोदिनीको हाथके इशारेसे डाटते-हुए कहा, "अरी तू चुप भी रह, क्या बकती है!"

काशीसे लौटनेके बाद पहली ही मुलाकातमें महेन्द्रने आशासे कहा, "तुम्हारी तबीयत तो बहुत अच्छी रही, मालूम होता है! खूब मजेकी मोटी ताजी हो आई हो!"

आशाको बड़ी शरम मालूम होने लगी। किसी भी हालतमें उसकी तबीयत ठीक नहीं रहनी चाहिए थी। किन्तु मूढ़ आशाका कुछ भी तो ठीक रास्तेसे नहीं चलता,—उसका मन जब कि इतना खराब रहता था, उसका खाक शरीर तब मोटा-ताजा हो रहा था! एक तो वैसे ही उसके पास मनकी बात प्रकट करनेको भाषा नहीं, उसपर उसका यह शरीर भी उलटी बातें करता रहता है।

आशाने मृदु-स्वरमें कहा, "तुम कैसे थे?"

पहलेके दिन होते तो महेन्द्र कुछ मजाक और कुछ मनसे कह देता, "मैं तो मर रहा था।" किन्तु आज उससे मजाक करते न बना, वह गलेके पास तक आकर रुक गया। बोला, "अच्छा ही था, बुरा क्या!"

आशाने महेन्द्रकी तरफ गौरसे देखा, पहलेसे वह दुबला हो गया है, चेहरा उसका पीला पड़ गया है, आँखोंमें एक तरहकी तीव्र दीप्ति दिखाई पड़ती है। मानो कोई आभ्यन्तरिक क्षुधा अपनी अग्नि-जिह्वासे उसे चाटे जा रही हो। आशा अपने मनमें वेदना अनुभव करने लगी, सोचने लगी, 'हाय हाय, मेरे पीछे इन्हें इतना कष्ट था, क्यों मैं इन्हें अकेला छोड़कर काशी गई!' पति दुबले हो गये और वह खुद मोटी हो गई, इससे अपने स्वास्थ्यपर उसे बड़ा धिक्कार पैदा होने लगा।

महेन्द्र सोचने लगा, अब और क्या बात छेड़ी जाय, और सोचते-सोचते थोड़ी देर बाद वह पूछ उठा, "चाचीजी अच्छी तरह हैं?"

इस प्रश्नके उत्तरमें कुशल-संवाद पानेके बाद, आगे कोई दूसरी बात करना उसके लिए दुःसाध्य हो गया। पास ही एक फटा-पुराना अखबार पड़ा था, उसे उठाकर वह अन्यमनस्क-भावसे पढ़ने लगा। और आशा नीची निगाह किये-हुए सोचने लगी, 'इतने दिन बाद भेंट हुई, पर ये मुझसे अच्छी तरह बोले क्यों नहीं? और तो क्या, मेरे मुँहकी तरफ अच्छी तरह देख भी न सके, यह बात क्या है? मैं तीन-चार दिन चिट्ठी नहीं लिख सकी, क्या इसीलिए

ये नाराज हैं ? या मौसीके कहनेसे ज्यादा दिन काशीमें बनी रही, इसलिए नाराज हैं ?' इस तरह आशा अत्यन्त व्यथित चित्तसे अपने अपराधका कारण ढूँढ़ने लगी ।

महेन्द्र कालेजसे लौट आया । तीसरे पहर जब वह जल-पान करने बैठा तब वहाँ राजलक्ष्मी थीं, और कुछ दूरीपर दरवाजेके सहारे आशा भी खड़ी थी घूँघट काढ़े । और कोई नहीं था । राजलक्ष्मीने उद्विग्न होकर पूछा, "आज क्या तेरी कुछ तबीयत खराब है ?"

महेन्द्रने झुँझलाकर कहा, "नहीं तो, तबीयत क्यों खराब होने लगी !"

राजलक्ष्मीने कहा, "तो फिर तू कुछ खा क्यों नहीं रहा है ?"

महेन्द्र फिर झुँझला उठा, बोला, "खा नहीं रहा तो क्या कर रहा हूं ?"

कुछ-कुछ गरमी पड़ने लगी थी । महेन्द्र शामके वक्त एक पतली चादर ओढ़े छतपर टहलने लगा । उसे बड़ी आशा थी कि आज भी उनलोगोंकी पढ़ाई चालू रहेगी । 'आनन्द-मठ' करीब-करीब खतम हो चला है, सिर्फ दो तीन परिच्छेद और बाकी रह गये हैं । विनोदिनी चाहे जितनी निष्ठुर हो, बाकीके परिच्छेद वह उसे आज जरूर सुना जायगी । किन्तु शाम बीत गई, समय उत्तीर्ण हो गया, और अन्तमें भारी निराशाके साथ उसे बिस्तरकी शरण लेनी पड़ी ।

सुसज्जित और लज्जान्वित आशाने धीरे-धीरे कमरेमें प्रवेश किया । देखा कि महेन्द्र पलंगपर सो गया है । अब वह कैसे आगे बढ़े, उसकी कुछ समझमें न आया । विच्छेदके बाद पुनर्मिलनमें कुछ देरके लिए एक नई लज्जा आ घेरती है,— जिस जगह परस्पर एक दूसरेसे अलग होते हैं ठीक उस जगह मिलनेके पहले प्रेमी-प्रेमिका परस्पर एक दूसरेसे नये प्रेमालापकी प्रत्याशा करते हैं । आशा अपनी उस चिर-परिचित आनन्द-शय्यापर आज बिना बुलाये कैसे जाय ?

दरवाजेके पास वह बहुत देर तक खड़ी रही ; किन्तु महेन्द्रकी तरफसे आह्वानका कोई लक्षण ही नहीं दिखाई दिया । आखिर, बहुत धीरे-धीरे वह

एक-एक कदम आगे बढ़ने लगी। यदि असावधानीसे अचानक कोई गहना बज उठे, तो मारे शरमके वह मर मिटेगी। कम्पित-हृदयसे आशा मशहरीके पास पहुंची, मालूम हुआ कि महेन्द्र सो रहा है। और तब उसका अपना ही साज-सिंगार उसके सर्वाङ्गको वेष्टित करके विद्रूपकी हँसी हँसने लगा। उसका जी चाहने लगा कि वह विद्युत्वेगसे कमरेमेंसे निकलकर और-कहीं भाग जाय।

आशा बहुत ही सङ्कोचके साथ अत्यन्त सावधानीसे चुपचाप पलंगपर जाकर बैठ गई। फिर भी उससे इतना शब्द हुआ और पलंग भी इतना हिला-डुला कि महेन्द्र अगर सचमुच सोता होता, तो भी जाग जाता। किन्तु आज उसकी आँख नहीं खुली, क्योंकि वह सो नहीं रहा था। महेन्द्र पलंगके उस किनारेसे करवट लिये पड़ा था। इसलिए आशा उसकी पीठकी तरफ चुपचाप सो रही। आशा चुपचाप पड़ी-हुई आँसू बहा रही है, इतना तो महेन्द्र उस-करवट लेटे-हुए भी स्पष्ट समझ रहा था। उसकी अपनी निष्ठुरता उसके हृत्पिण्डको चक्कीकी तरह पीसकर व्यथित करने लगी। किन्तु वह क्या बात करे, कैसे प्यार करे, उसकी कुछ समझमें न आया। मन-ही-मन वह अपने पर कशाघात करने लगा, उससे उसे चोट तो लगी किन्तु उपाय नहीं सूझा। सोचने लगा, 'सवेरे तो नींदका बहाना टिक न सकेगा, तब फिर मुकाबिला होनेपर आशाको क्या जवाब दूंगा ?'

किन्तु सवेरा हो भी न पाया कि आशाने खुद ही महेन्द्रका सङ्कट दूर कर दिया। वह बहुत तड़के ही अपने अपमानित साज-सिंगारको लिये-हुए पलंगसे उठकर चली गई,—वह भी महेन्द्रको मुँह न दिखा सकी।

३१

आशा सोचने लगी, 'ऐसा क्यों हुआ ? आखिर मैंने किया क्या ? किन्तु जिस जगह असल विपत्ति छिपी बैठी थी वहाँ उसकी दृष्टि ही नहीं पड़ी। ऐसी सम्भावना भी कभी उसके मनमें उदित नहीं हुई कि महेन्द्र विनोदिनीसे प्रेम कर सकता है। संसारका अनुभव उसे कुछ भी नहीं था। इसके सिवा, यह

बात भी कभी उसकी कल्पनामें नहीं आई कि विवाहके बादसे महेन्द्रको वह निश्चित-रूपसे जैसा समझती आई है, उसके सिवा महेन्द्र और भी कुछ हो सकता है।

महेन्द्र आज कुछ जल्दी ही कालेज चला गया। कालेज जाते समय आशा बराबर खिड़कीके पास खड़ी होकर महेन्द्रकी गाड़ीकी तरफ देखा करती थी, और महेन्द्र भी एक बार मुँह उठाकर आशाकी ओर देख लिया करता था, यह इनलोगोंका नित्यका नियम था। इस अभ्यासके अनुसार गाड़ीका शब्द सुनते ही आशा खिड़कीके पास जा खड़ी हुई। और महेन्द्रने भी आदतके अनुसार क्षण-भरके लिए एक बार आँख उठाकर ऊपरको देखा। देखा कि आशा खड़ी है,-- अभी तक वह नहाई-धोई नहीं, मैले कपड़े पहने है, बाल बिखर रहे हैं, चेहरा सूखा-हुआ है। देखते ही उसी क्षण उसने निगाह नीची कर ली, और हाथकी किताब खोलकर देखने लगा। कहाँ गया वह चार आँखोंका नीरव सम्भाषण, और कहाँ गई वह भाव-भाषापूर्ण मधुर हँसी?

गाड़ी चली गई। आशा जहाँकी तहाँ जमीनपर बैठ गई। सारा जगत उसे फीका लगने लगा, — मानो उसके जीवनका स्वाद ही बिगड़ गया हो। कलकत्तेके दैनन्दिन कर्म-प्रवाहमें यह ज्वार आनेका समय है। साड़े-दस बजे हैं, आफिस जानेवाली गाड़ियोंका ताँता बँधा-हुआ है, ट्रामके पीछे ट्राम दौड़ती चली जा रही हैं; और उस व्यस्तताके वेगवान कर्म-कल्लोलके पास यह एक वेदनासे निस्तब्ध मुरझाया-हुआ हृदय अत्यन्त विसदृश मालूम होने लगा।

सहसा आशाके मनमें एक विचार उठ आया; वह मन-ही-मन कह उठी, 'अच्छा, अब समझी! बिहारी-लालाजी काशी गये थे, उसी बातपर ये नाराज हुए हैं। इसके सिवा इधर और कोई नाराजीकी बात तो हुई नहीं। पर इसमें मेरा क्या दोष था?'

सोचते-सोचते अकस्मात् एक क्षणके लिए मानो आशाके हृदयका स्पन्दन बन्द हो गया। सहसा उसे ऐसी आशङ्का हुई कि 'शायद उसके पतिको सन्देह हुआ है कि बिहारीके काशी जानेके साथ उसका भी कुछ सम्बन्ध है; दोनोंकी सलाहसे यह काम हुआ है।' छी छी, ऐसा सन्देह! कैसी लज्जाकी बात है!

एक तो बिहारीके साथ उसका नाम आना ही धिक्कारका कारण है, उसपर महेन्द्रको अगर सन्देह हुआ हो तो फिर उससे प्राण कैसे रखे जायेंगे ? किन्तु सचमुच ही अगर सन्देहका कोई कारण हो, उससे अगर अपराध बन पड़ा हो, तो महेन्द्र उसे स्पष्टतासे कहता क्यों नहीं ? उसका न्याय-विचार करके वह उसे दण्ड क्यों नहीं देता ? किन्तु महेन्द्र तो स्पष्ट कुछ न कहकर बराबर उससे कतराता ही फिरता है। इससे आशाके मनमें बार-बार यही बात उठ रही है कि महेन्द्रके मनमें जरूर ऐसा कोई सन्देह हो रहा है जिसे वह खुद अन्याय समझता है, किन्तु आशाके आगे स्पष्ट-रूपसे स्वीकार करनेमें भी लज्जा अनुभव कर रहा है। नहीं-तो उसका चेहरा ऐसा अपराधी-जैसा क्यों होता ? क्रुद्ध विचारकका ऐसा कुण्ठित भाव होनेका और तो कोई कारण नहीं दिखाई देता।

महेन्द्र गाड़ीसे क्षणमात्रके लिए आशाका जो म्लान करुण मुख देख गया था उसे वह दिन-भर अपने मनसे न मिटा सका। कालेजके प्रत्येक लेक्चरमें और श्रेणीबद्ध छात्रमण्डलीमें उसे बार-बार वही वातायन, आशाका वही चेहरा, वही बिखरे-हुए रूखे बाल, वही मलिन वस्त्र और वही व्यथित-व्याकुल चितवन सुस्पष्ट रेखाओंमें अङ्कित दिखाई देने लगी।

कालेजका काम पूरा करके वह गोलदिग्घीके किनारे घूमने लगा। घूमते घूमते शाम हो आई, किन्तु फिर भी वह किसी तरह निर्णय न कर सका कि आशाके साथ उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए,— सदय छल करे या अकपट निष्ठुरता, क्या करे ? यह विचार ही नहीं उठा उसके मनमें कि विनोदिनीको छोड़ देना चाहिए या नहीं। दया और प्रेम, दोनोंकी माँगको वह कैसे निभाये ?

अन्तमें महेन्द्रने अपने मनको समझाना शुरू किया कि 'आशासे अब भी मेरा जितना प्रेम है उतना बहुत कम स्त्रियोंके भाग्यमें होता है। उस स्नेह और प्रेमको पाकर आशा क्यों नहीं सन्तुष्ट रहेगी ? विनोदिनी और आशा दोनोंको ही स्थान देने-लायक प्रशस्त हृदय मेरे पास है। विनोदिनीके साथ मेरा जो पवित्र प्रेमका सम्बन्ध है, उससे दाम्पत्य-नीतिमें किसी तरहका व्याघात नहीं होगा।'

इस तरह अपनेको समझाकर महेन्द्रने मनसे एक भारी बोझ उतार दिया। और यह सोचकर कि विनोदिनी और आशा दोनोंमेंसे किसीको बिना छोड़े ही दो चन्द्रोंसे सेवित ग्रहके समान वह अपना जीवन इसी तरह बिता देगा, उसका मन प्रफुल्लित हो उठा। और यह निश्चय करके कि आज रातको वह जल्दीसे बिस्तरपर जाकर अपने लाड़-प्यार और स्निग्ध आलापसे आशाके मनसे सारी वेदनाको क्षण-भरमें दूर कर देगा, बड़ी तेजीसे घरकी ओर चल दिया।

भोजनके समय आशा उपस्थित नहीं थी, फिर भी महेन्द्र यह सोचकर कि आखिर सोने तो आयेगी ही, अपने कमरेमें जाकर पलंगपर लेट गया। किन्तु निस्तब्ध कमरेमें सूनी शय्यापर यह कौन-सी स्मृति उसके हृदयमें जाग उठी? क्या यह आशाके साथ नव-परिणयकी नित्य-नूतन प्रेम-लीलाकी स्मृति है? नहीं नहीं। वे स्मृतियाँ तो उसी तरह क्षीण हो चली हैं जैसे सूर्योदयके साथ-साथ ज्योत्स्ना क्षीण और विलीन हो जाती है। अब तो वहाँ, उस सरला बालिकाकी सलज्ज स्निग्ध छविको न-जाने कहाँ छिपाकर, एक तीव्र-उज्ज्वल तरुणी-मूर्ति दीप्यमान हो उठी है।

महेन्द्रको विनोदिनीके साथ 'विषवृक्ष' की छीनाझपटी याद आने लगी। और फिर उन दिनोंकी याद आने लगी जब शामके बाद विनोदिनी 'कपाल-कुण्डला' पढ़कर सुनाते-सुनाते बहुत रात कर देती, घरके सब सो जाते, और रातको उस निभृत कमरेको निस्तब्ध निर्जनतामें विनोदिनीका कण्ठस्वर मानो आवेशमें मृदु-मधुर और रुद्धप्राय हो आता, और तब वह सहसा अपनेको सम्हाल कर पुस्तक पटककर उठ खड़ी होती। फिर महेन्द्र कहता, "मैं तुम्हें नीचे तक पहुंचा आऊँ।" इन सब बातोंकी बार-बार याद करते-करते महेन्द्रका शरीर-मन पुलकित होने लगा। रात होती गई, महेन्द्रके मनमें आशङ्का-सी होने लगी, आशा शायद आ ही रही होगी, किन्तु आशा नहीं आई।

महेन्द्र सोचने लगा, 'मैं तो कर्तव्य-पालनके लिए तैयार ही था; किन्तु आशा अगर फजूल नाराज होकर न आये तो मैं क्या करूँ!' सोचते-सोचते निशीथ रात्रिमें अपने मनमें वह विनोदिनीके ध्यानको ही घनीभूत करने लगा।

घड़ीमें जब एक बजा, तब फिर महेन्द्रसे न रहा गया; वह मशहरी उठाकर

पलंगसे नीचे उतर आया। कमरेसे निकलकर छतपर चला गया। चारों तरफ नजर फैलाकर उसने देखा, ग्रीष्मऋतुकी चाँदनी रात अत्यन्त रमणीय हो उठी है। कलकत्ता-नगरीकी विशाल निःशब्दता और सुषुप्ति मानो स्तब्ध समुद्रकी जलराशिके समान स्पर्शगम्य-सी मालूम होने लगी,– निशीथ-रात्रिका मृदु-मन्द पवन मानो असंख्य अट्टालिकाओंके ऊपरसे महानगरीकी निद्राको और भी निविड़ करता-हुआ धीर-गतिसे टहलता-हुआ चला आ रहा हो।

महेन्द्रकी बहुत दिनोंकी रुकी-हुई आकांक्षा अब अपनेको सम्हाल न सकी। आशाके काशीसे लौटनेके बादसे विनोदिनी उसके सामने नहीं आई। ज्योत्स्ना-मद-विह्वल निर्जन निशीथ-रात्रि महेन्द्रको मोहाविष्ट करके विनोदिनीकी ओर ढकेलती-हुई ले चली। महेन्द्र जीनेसे उतरकर नीचे पहुंच गया। विनोदिनीके कमरेके सामनेवाले बरामदेमें जाकर उसने देखा, कमरेका दरवाजा अब तक बन्द नहीं हुआ है। कमरेके भीतर जाकर देखा, बिस्तर बिछे-हुए हैं, किन्तु उसपर कोई सोया नहीं है। कमरेमें किसीके आनेकी आहट सुनकर दक्षिणकी तरफके खुले-हुए बरण्डेसे विनोदिनी बोल उठी, "कौन!"

महेन्द्रने विह्वल आर्द्र कण्ठसे उत्तर दिया, "विनोद, मैं हूं।" कहता-हुआ एकदम सीधा वह बरण्डेमें पहुंच गया।

गरमियोंकी रात होनेसे राजलक्ष्मी भी वहीं विनोदिनीके साथ चटाईपर लेटी हुई थीं, वे पूछ उठीं, "महेन, इतनी रातमें तू यहाँ कैसे?"

विनोदिनीने अपनी घनी भौंहोंके नीचेसे महेन्द्रपर वज्र-वाण छोड़ा, और चुप रह गई। महेन्द्र कुछ जवाब न देकर बड़ी तेजीसे वहाँसे चलता बना।

३२

दूसरे दिन सवेरेसे ही घनघटा छा गई। कुछ दिन असह्य गरम पड़नेके बाद आज स्निग्ध-श्यामल मेघोंसे तपा-हुआ आकाश शीतल हो गया। आज समय होनेके पहले ही महेन्द्र कालेज चला गया। उसके उतरे-हुए कपड़े जमीन पर पड़े थे। और आशा मैले कपड़े गिन-गिनकर उनका हिसाब लिखकर धोबीको सम्हला रही थी।

महेन्द्र स्वभावतः भुलक्कड़ और असावधान-प्रकृतिका आदमी ठहरा, इसलिए आशासे उसने कह रखा था कि धोबीको कपड़े डालनेके पहले उन-सबकी जेब वगैरह वह खूब अच्छी तरह देख लिया करे। देखते-देखते एक कुरतेकी जेबमें हाथ डालते ही आशाको एक चिट्ठी मिली।

यह चिट्ठी यदि विषधर सर्पकी मूर्ति धारण करके उसी क्षण आशाके पोटुए डस लेती तो बहुत अच्छा होता, कारण उग्र विष शरीरमें प्रवेश करनेसे मिनटोंमें उसका चरम फल मिल जाता है, किन्तु यदि वह किसीके मनमें प्रवेश कर जाय तो केवल मृत्यु-यन्त्रणा ही देता है, मृत्यु नहीं लाता।

बिना फिफाफेकी खुली-हुई चिट्ठी निकालते ही उसने देखा, विनोदिनीके हस्ताक्षर हैं! क्षणमात्रमें उसका चेहरा पीला पड़ गया। चिट्ठी हाथमें लेकर वह बगलके कमरेमें चली गई, और पढ़ने लगी :—

उसमें लिखा था :—

"कल रातको तुमने जो करतूत कर डाली, उससे भी क्या तुम्हारा पेट नहीं भरा? आज फिर क्यों तुमने मुझे खेमी-नौकरानीके हाथ गुप्त चिट्ठी भेजी? छी छी, वह अपने मनमें क्या सोचती होगी! मुझे क्या तुम संसारमें किसीके आगे मुँह दिखाने-लायक नहीं रहने दोगे?

संसारमें मेरे लिए प्रेम करने और प्रेम पानेकी कहीं भी कोई जगह नहीं। इसीसे मैं खेल खेलकर प्रेमका खेद मिटा लिया करती हूं। जब तुम्हारे पास अवसर था तब उस झूठे खेलमें तुम भी शामिल हुए थे। किन्तु 'खेलकी छुट्टी' क्या खतम नहीं होती? तुम्हारे अपने घरमें तुम्हारी पुकार हुई है,—अब फिर मेरे खेल-घरमें तुम क्यों ताक-झाँक रहे हो? अब धूल झाड़कर अपने घर जाओ। मेरे तो घर नहीं है, मैं मन-ही-मन अकेली बैठकर खेलती रहूंगी, तुम्हें नहीं बुलाऊँगी।

तुमने लिखा है, तुम मुझसे प्रेम करते हो। खेलके वक्त ऐसी बात सुनी जा सकती है, किन्तु अगर सच कहूं तो कहना पड़ेगा कि मैं ऐसी बातोंपर विश्वास नहीं करती। एक समय था जब तुम समझते थे कि तुम आशासे प्रेम कर रहे हो,—वह भी झूठा था; और आज तुम समझ

रहे हो कि तुम मुझसे प्रेम करते हो,– यह भी झूठ है। असलमें तुम सिर्फ अपनेको प्यार करते हो।

प्रेमकी प्याससे मेरा तो हृदयसे लेकर छाती तक सब सूख उठा है, उस प्यासको बुझानेकी पूंजी तुम्हारे पास नहीं है, इस बातको मैं बहुत अच्छी तरह देख चुकी हूं। मैं तुमसे बार-बार कह रही हूं, तुम मुझे छोड़ दो, मेरे पीछे-पीछे न फिरो,– खुद निर्लज्ज होकर मुझे लज्जित न करो। अब तो मेरा खेलका शौक भी मिट चुका है,– अब पुकारनेपर भी मेरी तरफसे उत्तर नहीं मिलेगा।

अपनी चिट्ठीमें तुमने मुझे 'निष्ठुर' कहा है, बात सच हो सकती है, किन्तु मेरे अन्दर कुछ दया भी है, इसीसे आज मैं तुम्हें दया करके छोड़ रही हूं। इस चिट्ठीका अगर उत्तर दो, तो समझूँगी कि बिना यहाँसे भागे तुम्हारे हाथसे मेरा छुटकारा नहीं।"

चिट्ठी पढ़ते ही आशाके समस्त अवलम्बन मानो अलग जा गिरे, और शरीरकी समस्त स्नायुपेशियाँ मानो शिथिल हो गईं, निश्वास लेनेके लिए मानो कहीं हवा तक बाकी नहीं रही, और सूर्यने उसकी आँखोंके आगेसे मानो सारा प्रकाश उठा लिया। आशा पहले दीवार, फिर अलमारी, फिर चौकीका सहारा लेते-लेते अन्तमें जमीनपर गिर पड़ी। क्षण-भर बाद सचेतन होकर फिर उसने चिट्ठी पढ़नेकी कोशीश की, किन्तु उसका उद्भ्रान्त चित्त किसी भी तरह उसका अर्थ न समझ सका,– काले-काले अक्षर उसकी आँखोंके आगे नाचने लगे। यह क्या! आखिर हुआ क्या? क्यों ऐसा हुआ? यह क्या सम्पूर्ण सर्वनाश है? अब वह क्या करे, किसे बुलावे, कहाँ जाये, कुछ भी उसकी समझमें नहीं आ रहा। पानीके बाहर मछली जैसे फड़फड़ाने लगती है, उसकी छातीके भीतर उसी तरहकी बेचैनी फड़फड़ाने लगी। डूबता-हुआ आदमी जैसे किसी चीजका सहारा पानेके लिए पानीपर हाथ फैला-फैलाकर आकाश ढूँढ़ता रहता है, उसी तरह आशा अपने मनके भीतर कोई-एक सहारा पानेके लिए भटकने लगी; और अन्तमें छाती पीटकर हाँफती-हुई पुकार उठी, "मौसी!"

इस स्नेह-सम्भाषणके उच्छ्वसित होते ही उसकी आंखोंसे झरझर आँसू झरने लगे। जमीनपर बैठी-बैठी वह बहुत देर तक बार-बार रोती रही, और अन्तमें जब रोना कुछ थमा तो सोचने लगी, 'इस चिट्ठीका मैं क्या करूँ? वे अगर जान गये कि यह चिट्ठी मेरे हाथ पड़ गई है, तो इसके लिए वे बहुत ज्यादा लज्जित होंगे।' और इस कल्पनासे वह अत्यन्त संकुचित हो उठी। अन्तमें उसने तय किया कि चिट्ठीको वह उसी कुरतेकी जेबमें रखकर कुरता जहाँका तहाँ टाँग देगी, धोबीको नहीं देगी।

यह सोचकर वह चिट्ठी हाथमें लिये अपने सोनेके कमरेमें लौट आई। इस बीचमें धोबी मैले कपड़ोंकी गठरीपर सिर रखकर सो गया था। आशा कुरता उठाकर उसकी जेबमें चिट्ठी रख रही थी कि इतनेमें आवाज आई, "किरकिरी!"

इतना सुनते ही आशा जल्दीसे चिट्ठी और कुरता पलंगपर डालकर चटसे उसके ऊपर बैठ गई। विनोदिनीने भीतर आकर कहा, "धोबी बहुत कपड़े बदलने लगा है। जिन कपड़ोंमें निशान नहीं लगा उन्हें मैं लिये जाती हूं, सबपर निशान लगाना है।"

आशासे विनोदिनीके मुंहकी तरफ देखा नहीं गया। वह इस डरसे कि कहीं मुंहके भावसे मनकी बात प्रकट न हो जाय, खिड़कीकी तरफ मुँह फेरकर आकाशकी ओर देखती रही, और ओठसे ओठ दबाये रही, ताकि आँखोंसे आंसू न निकल पड़ें।

विनोदिनी ठिठककर खड़ी हो गई, और आशाको एक बार उसने अच्छी तरह देख लिया। मन-ही-मन बोली, 'अच्छा, समझ गई! कल रातकी बातका इसे पता लग गया मालूम होता है। हुं:, सारा गुस्सा मेरे ही ऊपर! जैसे मेरा ही कसूर हो!'

विनोदिनीने आशासे बात करनेकी कोई कोशिश नहीं की। उसने कुछ कपड़े छाँट लिये, और तेजीके साथ कमरेसे वह बाहर चली गई।

विनोदिनीके साथ आशा अब तक जो सरल चित्तसे मित्रता निभाती रही है, उसकी लज्जा इस निदारुण दुःखमें भी उसके हृदयमें पुञ्जीभूत हो उठी।

उसके मनमें सखीका जो आदर्श अङ्कित था उस आदर्शके साथ इस निष्ठुर पत्रको और एक बार मिला देखनेकी उसकी इच्छा होने लगी।

आशा फिरसे चिट्ठी खोलकर देख रही थी कि इतनेमें बड़ी तेजीसे महेन्द्र आ पहुँचा कमरेमें।

अचानक किसी बातकी याद उठ आनेसे वह लेक्चरके बीचमेंसे ही उठकर कालेजसे सीधा घर दौड़ा आ रहा है।

आशाने चिट्ठी अपने आँचलमें छिपा ली। महेन्द्र भी कमरेमें आशाको देखकर जरा ठिठककर खड़ा रह गया। और फिर व्यग्र दृष्टिसे कमरेमें इधर उधर देखने लगा। आशा समझ गई थी कि महेन्द्र क्या ढूँढ़ रहा है, किन्तु उसकी कुछ समझमें न आया कि कैसे वह हाथकी चिट्ठीको यथास्थान रखकर वहाँसे भाग जाय।

महेन्द्र एक-एक करके मैले कपड़े उठा-उठाकर देखने लगा। उसके इस निष्फल प्रयासको देखकर आशासे रहा नहीं गया; उसने चिट्ठी और कुरता जमीनपर फेंक दिया, और दाहने हाथसे मशहरीका खम्भा थामकर उसी हाथसे अपना मुंह छिपा लिया।

महेन्द्रने बड़ी तेजीसे लपककर चिट्ठी उठा ली; और फिर क्षण-भरके लिए स्तब्ध होकर आशाकी तरफ देखा। इसके बाद, आशाको जीनेमें महेन्द्रके जल्दी-जल्दी उतरनेकी आवाज सुनाई दी।

ठीक इसी समय धोबी पुकार उठा, "बहूजी, कपड़े देनेमें अब और कितनी देर लगाओगी? बहुत अबेर हो गई है। बहुत दूर जाना है मुझे।"

३२

राजलक्ष्मीने आज सवेरेसे विनोदिनीको नहीं बुलाया। विनोदिनी नियमानुसार भण्डारमें गई, किन्तु राजलक्ष्मीने उसकी तरफ देखा तक नहीं। फिर भी उसने कहा, "बुआजी, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं मालूम होती। ठीक रहे भी कैसे,—कल रातको लालाजी ऐसी करतूत कर बैठे कि जिसका ठीक नहीं! एकदम पागलकी तरह चले आये। मुझे तो फिर नींद ही नहीं आई।"

राजलक्ष्मी मुँह भारी किये बैठी रहीं, 'हाँ' या 'ना' कुछ जवाब ही नहीं दिया उन्होंने ।

विनोदिनी बोली, "शायद किरकिरीके साथ कुछ खटपट हो गई होगी, बस, फिर खैर कहाँ ! उसी वक्त नालिश और फैसलेके लिए भाभीपर धावा बोल दिया, सवेरे तक वहाँ सब्र किसको है ! कुछ भी कहो, बुआजी, तुम नाराज न होना, तुम्हारे लड़केमें और चाहे हजार गुण हों, पर धीरज तो रत्ती भर भी नहीं है । इसीलिए मुझसे उनकी नहीं बनती ।"

राजलक्ष्मीने कहा, "बहू, तुम झूठ बक रही हो,—आज मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा ।"

विनोदिनी बोली, "मुझे भी कुछ अच्छा नहीं लग रहा, बुआजी ! तुम्हारे मनको चोट पहुँचेगी, इस डरसे झूठी बातोंसे तुम्हारे लड़केके दोष ढकनेकी कोशिश कर रही थी मैं । पर बात ऐसी है कि ढकी नहीं जा सकती ।"

राजलक्ष्मीने कहा, "अपने लड़केके दोष-गुण मुझे सब मालूम हैं,—पर तुम ऐसी मायाविनी हो, यह मैं नहीं जानती थी ।"

विनोदिनी कुछ कहनेके लिए उद्यत हुई और उसी क्षण अपनेको संयत करके बोली, "सो तो बात ठीक है, बुआजी, कोई भी किसीको नहीं जानता । अपने मनको भी क्या सब जानते हैं ? तुमने क्या कभी अपनी बहूसे द्वेष करके इस मायाविनीके जरिये अपने लड़केका मन बहलाना नहीं चाहा था ? एक बार जरा सोचकर देखो !"

राजलक्ष्मी सहसा आगकी तरह उद्दीप्त हो उठीं, बोलीं, "अभागिन कहींकी, लड़केके सम्बन्धमें माको तू इस तरह बदनाम करती है ! तेरी जीभ क्यों नहीं गल जाती !"

विनोदिनीने अविचलित-भावसे कहा, "हम-औरतोंकी जात ही मायाविनीकी जात है । मेरे अन्दर क्या माया थी सो मैं नहीं जान सकी, पर तुम जान गईं,—और तुम्हारे अन्दर क्या माया थी सो तुम नहीं जान सकीं, मैं जान गई । पर माया थी जरूर, नहीं-तो ऐसी घटना हरगिज नहीं हो सकती थी । जाल मैंने भी कुछ जानकर और कुछ बिना-जाने बिछाया था,—और जाल

तुमने भी कुछ जानकर और कुछ बिना-जाने बिछाया था। हमारी जातका धर्म ही ऐसा है, हम लोग सब मायाविनी हैं।"

मारे क्रोधके राजलक्ष्मीका कण्ठ रुक आया, उनके मुँहसे कोई बात ही नहीं निकली। जल्दीसे वे वहाँसे उठकर चली गईं।

विनोदिनी उस निर्जन कोठरीमें बहुत देर तक स्थिर खड़ी रही, उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ-सी छूटने लगीं।

सवेरेका घरका काम-धन्धा हो चुकनेके बाद राजलक्ष्मीने महेन्द्रको बुलवा भेजा। महेन्द्र समझ गया कि कल रातकी घटनाके विषयमें उससे पूछताछ की जायगी। इसके पहले विनोदिनीसे उसे अपने पत्रका उत्तर मिल चुका था, और उससे उसका मन अत्यन्त विकल हो उठा था। उस आघातके प्रतिघात-स्वरूप उसका सम्पूर्ण तरङ्गित हृदय विनोदिनीकी ओर जोरसे दौड़ा चला जा रहा था। उसपर फिर माके साथ उत्तर-प्रत्युत्तर करना उसके लिए असाध्य था। इसलिए, इस समय उसके लिए यह आवश्यक हो गया कि वह घरसे कहीं दूर जाकर सब बातोंपर ठीकसे विचार कर देखे। उसने नौकरसे कह दिया, "मासे जाकर कहना, आज कालेजमें मुझे एक जरूरी काम है, अभी जाना है, लौटूँगा तब मिल लूँगा उनसे।" इतना कहकर वह भगोड़ेकी तरह उसी वक्त कपड़े पहनकर बिना खाये-पीये घरसे भाग खड़ा हुआ। विनोदिनीकी जिस निष्ठुर निदारुण चिट्ठीको आज सवेरेसे वह बार-बार पढ़ता रहा है और जेबमें लिये लिये फिरा है, उस चिट्ठीको वह भगानेकी जल्दीमें कुरतेमें ही धरी छोड़ गया।

कुछ देर पहले एक बार जोरकी वर्षा हुई और बन्द हो गई। अब दिन बदलीका-सा हो रहा है। विनोदिनीका मन आज बहुत ही उदास है। मनमें किसी तरहकी अशान्ति या दुःख होता है तो विनोदिनी कामकी मात्रा बढ़ा देती है। इसीसे उसने आज दुनिया-भरके कपड़े इकट्ठे करके उनमें निशान लगाना शुरू कर दिया है। आशाके पास जब कपड़े लेने गई तो आशाका मुँह देखकर उसका और भी मिजाज बिगड़ गया। संसारमें अगर अपराधी ही होना है, तो अपराधकी सिर्फ लाञ्छना ही क्यों भोगी जाय, उसका जो सुख है उसे क्यों नहीं भोगा जाय?

फिर झमझम वर्षा होने लगी। विनोदिनी अपने कमरेमें जमीनपर बैठी है। उसके सामने कपड़ोंका ढेर पड़ा है। खेमी नौकरानी एक-एक कपड़ा आगे बढ़ाती जाती है और विनोदिनी उसमें निशान डालनेकी स्याहीसे निशान डालती जाती है।

इतनेमें बिना कुछ कहे-सुने सहसा दरवाजा खोलकर महेन्द्र एकदम भीतर चला आया। खेमी दासी हाथका काम छोड़कर सिर ढकती-हुई बाहर भाग गई।

विनोदिनी हाथका कपड़ा फेंककर बिजलीकी-सी तेजीसे उठ खड़ी हुई। बोली, "जाओ, मेरे इस कमरेसे तुरत चले जाओ तुम।"

महेन्द्रने कहा, "क्यों, क्या किया है मैंने ?"

विनोदिनीने कहा, "क्या किया है! डरपोक, कायर! क्या करनेका सामर्थ है तुममें ? न तो तुम प्रेम करना जानते हो और न कर्तव्य करना। फिर फजूलमें मुझे क्यों इस तरह बदनाम कराते हो ?"

महेन्द्रने कहा "मैं तुमसे प्रेम नहीं करता, यह बात तुम कहती हो ?"

विनोदिनीने कहा, "हां, मैं कहती हूं। दुबकाचोरी, दबाना-ढकना, एक बार इधर तो एक बार उधर,—तुम्हारी इन चोरकी-सी प्रवृत्तियोंको देखकर मुझे तुमसे घृणा हो गई है। अब यह-सब अच्छा नहीं लगता मुझे। तुम जाओ यहाँसे।"

महेन्द्र एकदम मुरझा-सा गया। बोला, "तुम मुझसे घृणा करती हो, विनोद ?"

विनोदिनीने कहा, "हाँ, घृणा करती हूं।"

महेन्द्रने कहा, "अब भी प्रायश्चित्त करनेका समय है, विनोद! मैं अगर अब दुविधा न करूं, सब-कुछ छोड़-छाड़कर चलनेको तैयार हो जाऊं, तो तुम मेरे साथ चलनेको तैयार हो ?" इतना कहकर महेन्द्रने विनोदिनीके दोनों हाथ पकड़ लिये और जबरदस्ती उसे अपनी ओर खींच लिया।

विनोदिनीने कहा, "छोड़ो, मेरे लग रही है।"

महेन्द्रसे कहा, "लगने दो। बताओ, तुम मेरे साथ चलोगी ?"

विनोदिनीने कहा, "नहीं, मैं नहीं जाऊंगी। हरगिज नहीं।"

महेन्द्रने कहा, "क्यों नहीं जाओगी? तुम ही मुझे सर्वनाशके मुँह तक खींच लाई हो,—अब तुम मुझे छोड़ नहीं सकोगी। तुम्हें मेरे साथ जाना ही होगा।" कहते-कहते उसने बल-पूर्वक विनोदिनीको अपनी छातीके पास खींच लिया; और जबरदस्ती छातीसे लगाये रखनेकी कोशिश करता-हुआ बोला, "तुम्हारी घृणा भी अब मुझे पीछे नहीं हटा सकती, विनोद! मैं तुम्हें ले ही जाऊंगा, और जैसे भी हो, तुम्हें मुझसे प्यार करना ही होगा!"

विनोदिनीने काफी जोर लगाकर अपनेको अलग कर लिया।

महेन्द्र बोला, "चारों तरफ तुमने आग जला रखी है,—अब न तो तुम उसे बुझा सकती हो और न निकलकर भाग ही सकती हो।" कहते-कहते महेन्द्रका कण्ठस्वर ऊँचा हो उठा, उसने जोरसे कहा, "ऐसा खेल खेला ही क्यों तुमने, विनोद? अब तुम इसे खेल समझकर छुटकारा नहीं पा सकतीं। अब तो दोनोंकी एक ही गति है, दोनोंको एकसाथ मरना होगा।"

इतनेमें राजलक्ष्मी चली आईं, बोलीं, "यह क्या कर रहा है, महेन?"

महेन्द्रकी उन्मत्त दृष्टि एक क्षणके लिए माकी तरफ फिरी, और फिर दूसरे ही क्षण विनोदिनीकी तरफ हो गई; महेन्द्रने कहा, "मैं अपना सब-कुछ छोड़ कर चल दूंगा, बोलो, तुम मेरे साथ चलोगी?"

विनोदिनीने क्रुद्धा राजलक्ष्मीके मुँहकी ओर एक बार देखा। उसके बाद आगे बढ़कर अविचलित-भावसे महेन्द्रका हाथ पकड़ते-हुए उसने कहा, "हाँ, चलूँगी।"

महेन्द्रने कहा, "तो आज-भरके लिए तुम ठहर जाओ। मैं चल दिया। कलसे तुम्हारे सिवा मेरा और कोई भी न होगा।"

इतना कहकर महेन्द्र चला गया।

इतनेमें धोबी आकर विनोदिनीसे बोला, "बहूजी, अब तो नहीं ठहर सकूँगा। आज फुरसत न हो तो रहने दीजिये,—कपड़े मैं कल आकर ले जाऊंगा।"

खेमीने आकर कहा, "बहूजी, सईस कहता है कि दाना नहीं है।"

विनोदिनी हर हफ्ते सात दिनका दाना तुलवाकर अस्तबल भिजवा दिया करती थी ; और रोज खुद खिड़कीके पास खड़ी होकर घोड़ेका दाना खाना देखा करती थी।

इतनेमें, गोपाल नौकर आ गया और कहने लगा, "बहूजी, झण्डू आज साधु-दादाजीसे लड़ पड़ा। कहता है, उससे मिट्टीके तेलका हिसाब ले लिया जाय और उसे नौकरीसे छुट्टी दे दी जाय।"

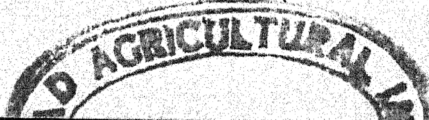
घर-गृहस्थीका सब काम पहले-जैसा ही चल रहा है।

३४

बिहारी अब तक मेडिकल-कालेजमें पढ़ रहा था। ठीक परीक्षाके पहले ही उसने कालेज छोड़ दिया। इसपर कोई आश्चर्य प्रकट करता, तो वह कहता, "दूसरोंका स्वास्थ्य पीछे देखूंगा, फिलहाल अपना स्वास्थ्य तो ठीक कर लूं।"

असल बात यह है कि बिहारीके उद्यमोंका शेष नहीं ; कुछ-न-कुछ किये बिना उससे रहा नहीं जाता ; और मजा यह कि यशकी भूख, रुपयेका लोभ या आजीविकाके लिए उपार्जन करना उसके लिए बिलकुल निष्प्रयोजन था। कालेजसे डिग्री पाकर पहले तो वह शिवपुर-इञ्जीनियरिंग-कालेजमें भरती हुआ, और फिर वहाँसे जितना ज्ञान प्राप्त करनेकी उसके इच्छा थी उतना ज्ञान और दक्षता प्राप्त करके वह मेडिकल-कालेजमें भारती हो गया। और महेन्द्र उससे साल-भर पहले डिग्री लेकर मेडिकल-कालेजमें भरती हुआ था।

कालेजके विद्यार्थियोंमें इस दोनोंकी मित्रता प्रसिद्ध थी। वे हँसी-हँसीमे इन्हें 'श्यामदेशकी जुड़वाँ-जोड़ी' कहा करते थे। पिछले साल महेन्द्र परीक्षामें फेल हो गया, और तबसे दोनों एक श्रेणीमें आकर मिल गये। इस बीचमें सहसा इन दोनोंका जोड़ क्यों अलग हो गया, सो विद्यार्थियोंकी कुछ समझमें न आया। रोज जहाँ महेन्द्रसे भेंट होगी ही, किन्तु पहले-जैसी नहीं होगी, वहाँ बिहारीसे किसी भी तरह जाते नहीं बना। सभी जानते थे कि बिहारी अच्छी तरह पास करके अवश्य ही सम्मान और पुरस्कार प्राप्त करेगा, किन्तु हुआ यह कि उसने परीक्षाके पहले ही कालेज छोड़ दिया।



बिहारीके घरके पास एक कच्चे झोंपड़ेमें राजेन्द्र चक्रवर्ती नामका एक गरीब ब्राह्मण रहता था। वह छापेखानेमें बारह रुपये महीनेपर कम्पोजिटरीका काम करके अपनी गुजर करता था। एक दिन बिहारीने उससे कहा, "तुम अपने लड़केको मेरे पास रखो, मैं उसे खुद पढ़ा-लिखाकर आदमी बना दूंगा।"

ब्राह्मण मानो जी गया। बड़ी खुशीसे उसने अपने आठ सालके लड़के बसन्तको बिहारीके हाथ सौंप दिया।

बिहारी उसे अपनी पद्धतिसे शिक्षा देने लगा। अपने मनमें उसने तय किया कि 'दस सालकी उमर तक इसे कोई किताब नहीं पढ़ाऊँगा, केवल मौखिक शिक्षा देता रहूंगा।' बिहारी बसन्तको साथ लेकर कभी किलेके मैदानमें घूमने जाता, कभी उसके साथ खेलता रहता, कभी उसे अजायब-घर दिखलाता, कभी अलीपुर-पशुशाला ले जाता, और कभी शिवपुरका बगीचा दिखलाता। इस तरह उसके दिन कटने लगे। बसन्तको वह मुँह-जबानी अंग्रेजी सिखाता, और कहानीके रूपमें इतिहास सुनाया करता,– नानाप्रकारसे बालककी चित्तवृत्तिकी परीक्षा करना और उसकी परिणतिके लिए उपयुक्त साधन उपस्थित करना, यह उसका दिन-भरका काम था, अपनेको वह क्षण-भरके लिए भी छुट्टी नहीं देता।

उस दिन शामको बाहर निकलना मुश्किल हो गया। दोपहरको वर्षा जरा बन्द रही, फिर तीसरे पैहर जोरसे पानी बरसने लगा। बिहारी अपने ऊपरवाले बड़े कमरेमें बत्ती जलाकर बसन्तके साथ अपनी नई पद्धतिसे खेल खेल रहा था।

अकस्मात् बिहारी बसन्तसे पूछ बैठा, "बसन्त, इस कमरेमें कितनी कड़ियाँ हैं, चटपट बताओ? नहीं, गिन नहीं पाओगे।"

बसन्तने कहा, "बीस।"

बिहारीने कहा, "तुम हार गये,– अठारह हैं।"

इसके बाद चटसे किबाड़की झिलमिली खोलकर बिहारीने पूछा, "अच्छा बताओ, इस झिलमिलीमें कतनी पट्टियाँ हैं?" और तुरत झिलमिली बन्द कर दी।

बसन्तने कहा, "आठ।"

बिहारीने कहा, "अबकी जीत गये। और फिर पूछने लगा, "अच्छा, बताओ, इस बेञ्चकी लम्बाई कितनी है?" "इस किताबका वजन क्या है?" इस तरह बिहारी बसन्तके इन्द्रिय-ज्ञानका विकाश कर रहा था कि इतनेमें नौकरने आकर कहा, "बाबू सा'ब, एक औरत –"

नौकरकी बात खतम भी न हो पाई कि विनोदिनी कमरेके भीतर आ गई।

बिहारी दंग रह गया, बोला, "यह क्या, भाभी! बात क्या है?"

विनोदिनीने कहा, "तुम्हारे यहाँ घरकी स्त्रियोंमेंसे कोई नहीं है?"

बिहारीने कहा, "न तो घरकी कोई है, न बाहरकी। एक बुआ हैं, सो देशमें रहती हैं।"

विनोदिनीने कहा, "तो तुम मुझे वहीं अपनी बुआके पास छोड़ आओ।"

बिहारीने कहा, "वहाँ मैं तुम्हें क्या कहके छोड़ आऊँ?"

विनोदिनीने कहा, "दासी कहके। मैं वहाँ घरका सब काम-काज किया करूँगी।"

बिहारीने कहा, "बुआजीको लेकिन कुछ आश्चर्य होगा,– उन्होंने आज तक कभी मुझसे दासीके अभावकी चर्चा नहीं की। पहले यह तो सुनूं कि ऐसा विचार मनमें उठा क्यों?– बसन्त, जाओ तुम, सो जाओ।"

बसन्त चला गया।

विनोदिनीने कहा, "बाहरकी घटना सुनकर तुम भीतरकी बात कुछ भी नहीं समझ सकोगे।"

बिहारीने कहा, "न समझ सका तो न सही,– और गलत भी समझा तो उससे नुकसान क्या?"

"अच्छा, न-हो-तो गलत ही समझ लेना। महेन्द्र मुझसे प्रेम करता है।"

"यह बात तो नई नहीं, और ऐसी भी नहीं कि दुबारा सुननेकी इच्छा हो।"

"बार-बार सुनानेकी इच्छा मेरी भी नहीं है,– इसीलिए तुम्हारे पास आई हूं,– मुझे शरण दो।"

"तुम्हारी इच्छा नहीं तो आजका यह सङ्कट लाया कौन? महेन्द्र जिस रास्तेसे जा रहा था उस रास्तेसे उसे भ्रष्ट किसने किया?"

"मैंने किया। तुमसे कोई बात मैं छिपाऊँगी नहीं,– यह सब-कुछ मेरी ही करतूत है। मैं बुरी होऊँ या जैसी भी होऊँ. एक बार तुम मेरी स्थितिमें आकर मेरी तरह मेरे हृदयकी बात समझनेकी कोशिश करो। अपने हृदयकी ज्वालासे मैंने महेन्द्रका घर जलाया है। एक बार मैंने समझ लिया था कि मैं महेन्द्रसे प्यार करती हूं, किन्तु गलत, भूल थी वह मेरी।"

"जो प्यार करता है, सो क्या इस तरह आग लगा सकता है?"

"लालाजी, यह तुम्हारे शास्त्रोंकी बात है। अभी मेरी वह अवस्था नहीं आई जब शास्त्रादेश पालन करनेकी सुमति पैदा हो जाती है। लालाजी, तुम अपनी पोथी रखकर अन्तर्यामीकी तरह एक बार मेरे हृदयपर दृष्टि डालो। अपनी भलाई-बुराई सब आज मैं तुम्हारे सामने खोलकर कह देना चाहती हूं।"

"पोथी क्या मैं यों ही खोले रखता हूं, भाभी! हृदयको हृदयके ही नियमानुसार समझनेका भार अन्तर्यामीपर ही रहने दो,– हमलोग अगर पोथीके नियमानुसार न चलें तो अन्तमें ठोकर खाकर गड्ढेमें गिरनेसे रोकेगा कौन हमें?"

"सुनो लालाजी, मैं निर्लज्ज होकर कह रही हूं, तुम मुझे बचा सकते थे। महेन्द्र मुझे चाहता जरूर है, किन्तु वह ठोस अन्धा है, मुझे समझता नहीं। एक बार मुझे ऐसा लगा था कि तुम मुझे समझ गये हो,– और एक बार शायद तुमने मुझपर श्रद्धा भी की थी। सच-सच कहना। उस बातको छिपानेकी कोशिश मत करना।"

"सच ही कहता हूं, मैं तुम्हें श्रद्धा करने लगा था।"

"उसमें तुमने गलती नहीं की थी, लालाजी! किन्तु यदि समझ ही लिया था, यदि श्रद्धा ही करने लगे थे, तो वहीं रुक क्यों गये? मुझसे प्रेम करनेमें तुम्हारे लिए बाधा क्या थी? मैं आज निर्लज्ज होकर तुम्हारे पास आई हूं, और निर्लज्ज होकर ही आज तुमसे कहती हूं,– तुमने मुझे क्यों नहीं चाहा, क्यों नहीं मुझसे प्रेम किया? मेरी फूटी तकदीर! तुम भी क्या आशाके प्रेममें डूबे-हुए थे? नहीं, तुम नाराज नहीं हो सकते। बैठो लालाजी, मैं कोई भी बात ढकके नहीं कहूंगी। तुम आशासे प्रेम करते हो, इस बातको

जब तुम खुद भी नहीं जानते थे, तब भी मैं जानती थी। किन्तु आशाके भीतर तुमलोगोंने ऐसी कौन-सी बात पाई है, उसमें क्या देखा है, मेरी कुछ समझमें नहीं आता। अच्छाई कहो या बुराई, उसमें है क्या? विधाताने क्या पुरुषोंकी दृष्टिके साथ अन्तर्दृष्टि जरा भी नहीं दी? पता नहीं, तुमलोग क्या देखकर कितना-सा देखकर ऐसे मोहित हो जाते हो? निर्बोध हो तुमलोग, अन्धे, बिलकुल अन्धे!"

बिहारी उठके खड़ा हो गया, बोला, "आज तुम मुझे जितना भी सुनाना चाहो, सुनाओ, मैं सब सुनूंगा। किन्तु जो बात कहनेकी नहीं उसे मत कहो, तुमसे इतनी ही मेरी प्रार्थना है।"

विनोदिनीने कहा, "लालाजी, कहाँ तुम्हारे चोट पहुंच रही है, मैं जानती हूं,- किन्तु जिसकी श्रद्धा मिली थी मुझे, और जिसका प्रेम पानेसे मेरा जीवन सार्थक हो जाता, उसके पास रातके समय मैं जो अपना सब-कुछ विसर्जन देकर दौड़ी आई हूं, सो कितनी बड़ी वेदनासे, उसका खयाल करके जरा धैर्यसे काम लो। मैं सच कहती हूं, तुम यदि आशासे प्यार न करते होते, तो मेरे द्वारा आशाका आज ऐसा सर्वनाश हरगिज न होता।"

बिहारीका चेहरा सफेद-फक पड़ गया। उसने कहा, "आशाका क्या हो गया? तुमने उसका क्या कर डाला?"

विनोदिनी बोली, "महेन्द्र अपना सर्वस्व त्यागकर कल ही मुझे लेकर घरसे निकल जानेकी तैयारी कर चुका है।"

बिहारी सहसा गरज उठा, बोला, "यह हरगिज नहीं हो सकता। हरगिज नहीं।"

विनोदिनीने कहा, "हुं:, हरगिज नहीं! किन्तु महेन्द्रको आज रोक कौन सकता है?"

बिहारीने कहा, "तुम रोक सकती हो।"

विनोदिनी कुछ देर तक चुप रही, फिर बिहारीकी आँखोंमें आँखें डालकर बोली, "किसके लिए रोकूं मैं? तुम्हारी आशाके लिए? मेरा अपना सुख-दुःख क्या कुछ भी नहीं? तुम्हारी आशाका भला हो, महेन्द्रके दाम्पत्य और घर-

गृहस्थीका भला हो, बस इसीके लिए मैं अपनी इहलोककी सारी माँगोंको मिटा दूं? इतनी अच्छी मैं नहीं हूं, धर्मशास्त्रकी पोथियाँ मैंने इतनी ज्यादा नहीं पढ़ीं। मैं जो-कुछ छोड़ूंगी उसके बदलेमें मैं क्या पाऊँगी?"

बिहारीके चेहरेका भाव क्रमशः अत्यन्त कठिन हो उठा, वह बोला, "तुमने बहुत-सी स्पष्ट बातें कहनेकी कोशिश की है, अब मैं भी एक स्पष्ट बात कहता हूं, सुनो। तुमने आज जो काण्ड कर डाला है, और तुम जो बातें कह रही हो, उसका अधिकांश तुमने जो साहित्य पढ़ा है उससे चुराया-हुआ है, उसका बारह-आना हिस्सा नाटक-उपन्यासका है, तुम्हारा अपना नहीं।"

विनोदिनीने कहा, "नाटक! उपन्यास!"

बिहारीने कहा, "हाँ, नाटक उपन्यास। सो भी बहुत ऊँचे दरजेके नहीं, तुम समझती हो, यह-सब तुम्हारी अपनी बातें हैं,—यह गलत है। यह-सब छापेखानेकी प्रतिध्वनि है। तुम अगर नितान्त निर्बोध मूर्ख सरला बालिका होतीं, तो भी तुम संसारमें प्रेमसे वञ्चित न रहतीं। किन्तु नाटककी नायिका स्टेजपर शोभा देती है, घरमें उससे काम नहीं चलता।"

कहाँ गया विनोदिनीका वह तीव्र तेज, कहाँ गया उसका वह दुःसह दर्प? मन्त्राहत फणिनीकी तरह वह स्तब्ध होकर झुक गई। और बहुत देर बाद बिहारीके मुंहकी तरफ बगैर देखे उसने शान्त-नम्र स्वरमें कहा, "तुम मुझे क्या करनेको कहते हो?"

बिहारीने कहा, "असाधारण कुछ करनेकी कोशिश मत करो। साधारण स्त्रीकी शुभबुद्धि जो कहे, वही करो। देश चली जाओ।"

विनोदिनी बोली, "कैसे जाऊँ?"

बिहारीने कहा, "मैं तुम्हें जनाने-डब्बेमें बिठाकर तुम्हारे गाँवके स्टेशन तक पहुंचा आऊँगा।"

विनोदिनीने कहा, "तो आज रातको मैं यहीं रह जाऊँ?"

बिहारीने कहा, "नहीं, अपने ऊपर मुझे इतना विश्वास नहीं है।"

सुनते ही उसी क्षण विनोदिनी चौकीसे उठकर बिहारीके पैरोंके पास लोट गई, और उसके पाँवोंको अपनी छातीसे चुपटाकर बोली, "कमसे कम इतनी

कमजोरी रखना, लालाजी ! एकदम पत्थरके देवताकी तरह पवित्र न बन जाना। बुरेसे प्यार करके थोड़े बुरे बने रहो।" इतना कहकर विनोदिनी बार-बार उसके पाँव चूमने लगी।

बिहारी विनोदिनीके इस आकस्मिक और अकल्पनीय व्यवहारसे क्षण-भरके लिए मानो अपनेको सम्हाल न सका। उसके शरीर-मनकी ग्रन्थियाँ मानो शिथिल हो आईं। विनोदिनी बिहारीके इस स्तब्ध-विह्वल भावका अनुभव करके उसके पाँव छोड़कर घुटनोंके बल उन्नत हो उठी और चौकीपर बैठे-हुए बिहारीके गलेमें अपनी बाहें डालकर बोली, "मेरे जीवनसर्वस्व, मैं जातनी हूं, तुम मेरे चिरकालके नहीं हो, किन्तु आज एक क्षणके लिए तुम मुझे प्यार करो। उसके बाद मैं अपने उसी वन-जंगलमें चली जाऊँगी। किसीसे कुछ भी नहीं चाहूंगी। मरने तक याद रखने-लायक तुम मुझे कुछ तो दो आज!" कहते-हुए विनोदिनीने आँख मीचकर अपने ओष्ठाधर बिहारीके मुँहकी ओर बढ़ा दिये।

क्षण-भरके लिए दोनों जने निश्चल, और सारा कमरा निस्तब्ध हो रहा। इसके बाद एक गहरी साँस लेकर बिहारीने धीरे-धीरे विनोदिनीके हाथ अलग कर दिये, और उठकर वह दूसरी चौकीपर जा बैठा। और फिर उसने अपने रुद्ध कण्ठको साफ करते-हुए कहा, "रातको एक बजे एक पैसेञ्जर-ट्रेन है।"

विनोदिनी कुछ देर स्तब्ध बैठी रही, फिर अस्फुट स्वरमें बोली, "मैं उसी गाड़ीसे चली जाऊँगी।"

इतनेमें, नंगे-पाँव उघड़े-बदन बसन्त, अपना पुरिपुष्ट गोरा सुन्दर शरीर लिये, विनोदिनीकी चौकीके पास आ खड़ा हुआ ; और विनोदिनीकी तरफ देखने लगा।

बिहारीने पूछा, "सोने नहीं गया तू?"

बसन्त कुछ जवाब न देकर अपना गम्भीर चेहरा लिये खड़ा रहा।

विनोदिनीने उसकी तरफ दोनों हाथ बढ़ा दिये। बसन्त पहले तो कुछ दुबिधामें पड़ गया, और फिर वह धीरे-धीरे विनोदिनीके पास पहुँच गया। विनोदिनीने दोनों हाथोंसे उसे अपनी छातीसे लगा लिया,—उसकी आँखोंसे झरझर आँसू बहने लगे।

३५

जो असम्भव है वह भी सम्भव हो जाता है, और जो असह्य है वह भी सह्य हो जाता है,– नहीं-तो महेन्द्रके घर उस दिनकी रात ही नहीं कटती। विनोदिनीको तैयार रहनेका परामर्श देते-हुए महेन्द्रने उसी रातको एक पत्र लिखकर डाकमें डाल दिया था, जो दूसरे दिन सवेरे महेन्द्रके घर पहुँचा।

आशा उस समय पलंगपर लेटी-हुई थी। नौकर चिट्ठी लेकर ऊपर पहुँचा, और बोला, "बहूजी चिट्ठी।"

आशाके हृत्पिण्डके रक्तने धक-से उसके हृदयको धक्का मारा। पल-भरमें हजारों आश्वासन और आशङ्काएँ उसके मनमें एकसाथ जाग उठीं। झटपट सिर उठाकर उसने चिट्ठी हाथमें ले ली। महेन्द्रके हाथकी लिखावट है, विनोदिनी का नाम लिखा है। उसी क्षण उसका सिर तकियेपर गिर पड़ा,– कोई बात न कहकर उसने चिट्ठी नौकरको लौटा दी।

नौकरने पूछा, "चिट्ठी किनको देनी होगी, बहूजी?"

आशाने कहा, "मुझे नहीं मालूम।"

रातके करीब आठ बजे होंगे। महेन्द्र बड़ी तेजीसे आँधीकी तरह सीधा विनोदिनीके कमरेके सामने जा खड़ा हुआ। देखा, कमरेमें बत्ती नहीं जल रही, चारों तरफ अँधेरा है। जेबमेंसे दिआसलाई निकालकर जलाकर देखा, कमरा सूना है। विनोदिनी नहीं है; और न घरमें उसका कोई सामान ही है। दक्षिणकी तरफके बरण्डेमें जाकर देखा, बरण्डा सूना है। फिर भी उसने पुकारा, "विनोद!" किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला।

फिर वह अपने मनमें कहने लगा, 'निर्बोध हूं, मूर्ख हूं मैं। उसे तो उसी समय मुझे अपने साथ ले जाना चाहिए था। जरूर माने उसे ऐसा डाटा-फटकारा होगा कि उसके लिए घरमें रहना असम्भव हो गया होगा।' और यह कल्पना मनमें आते ही उसपर उसे दृढ़ विश्वास भी हो गया।

उसी क्षण वह अधीर होकर माके पास पहुंचा। वहाँ भी बत्ती नहीं जल

रही थी, किन्तु उस अँधेरेमें भी मालूम हुआ कि राजलक्ष्मी बिस्तरपर लेटी-हुई हैं। महेन्द्र तेजीसे उनके पास जाकर रुष्ट-कण्ठसे बोल उठा, "मा, तुमलोगोंने विनोदिनीसे क्या कहा-सुना है ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "कुछ नहीं कहा।"

"तो फिर वो कहाँ गई ?"

"मैं क्या जानूं !"

महेन्द्र अविश्वासके स्वरमें बोल उठा, "तुम नहीं जानतीं ! अच्छा, मैं उसकी खोजमें चल दिया। वह कहीं भी हो, मैं उसका पता लगाकर ही रहूंगा।"

इतना कहकर महेन्द्र वहाँसे चल दिया।

राजलक्ष्मी झटपट बिस्तरसे उठकर उसके पीछे-पीछे दौड़ती-हुई कहने लगीं, "महेन, मत जा महेन ! लौट आ, मेरी एक बात सुन जा।"

किन्तु महेन्द्र एक साँसमें दौड़ता-हुआ घरसे बाहर निकल गया।

क्षण-भर बाद ही फिर लौटकर उसने दरवानसे पूछा, "बड़ी-बहूजी कहाँ गई हैं, मालूम है ?"

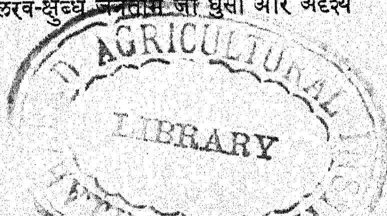
दरवानने कहा, "हमलोगोंसे तो वे कुछ कह नहीं गईं, बाबू साहब,—हम लोगोंको कुछ नहीं मालूम।"

महेन्द्र जोरसे गरजकर बोला, "नहीं मालूम !"

दरवान हाथ जोड़कर बोला, "नहीं, बाबू साहब, हमलोगोंको कुच्छ नहीं मालूम।"

महेन्द्रने अपने मनमें सोचा कि 'माने सबको सिखा-पढ़ा दिया है', और बोला, "अच्छा, कोई बात नहीं।"

महानगरीके राजपथमें उस समय गैसके प्रकाश-वाणसे बिद्ध सन्ध्यान्धकारमें बरफवाले मलाई-बरफ और मछलीवाले तपसी-मछलीकी फेरी लगा रहे थे। महेन्द्र घरसे निकलकर राजपथकी कलरव-क्षुब्ध जनतामें जा घुसा और अदृश्य हो गया।



३६

बिहारी कभी भी अँधेरी रातमें अकेला घरमें बैठा किसीका ध्यान नहीं करता। आज तक कभी भी उसने अपनेको अपना आलोच्य-विषय नहीं बनाया। वह हमेशा अपनी पढ़ाई-लिखाई, काम-काज या बन्धु-बान्धवोंमें व्यस्त रहता था। अपनी अपेक्षा अपने चारों तरफके संसारको प्राधान्य देनेमें ही उसे अधिक आनन्द आता था। किन्तु सहसा एक दिन प्रबल आघातसे उसके चारों तरफका सब-कुछ मानो विच्छिन्न-विक्षिप्त हो गया ; और तब, प्रलयके अन्धकारमें अभ्रभेदी वेदनाके गिरि-श‍ृङ्गपर उसे अकेला ही खड़ा होना पड़ा। तभीसे वह अपने निर्जन सङ्गसे डरने लगा है। जबरदस्ती अपने सरपर काम लादकर उस सङ्गसे वह किसी भी तरह अवकाश नहीं लेना चाहता।

किन्तु आज अपने उस अन्तरवासीको बिहारी किसी भी हालतमें बाधा देकर अलग न रख सका। कल विनोदिनीको वह देश पहुंचा आया है, उसके बादसे वह जिस किसी काममें या जिस किसी आदमीके साथ रहा, बराबर उसका गुहा-शायी वेदनातुर हृदय उसे अपनी निगूढ़ निर्जनताकी ओर आकर्षित करता रहा है।

श्रान्ति और अवसादने बिहारीको आज परास्त कर दिया। रातके करीब नौ बजे होंगे। बिहारीके कमरेकी सामनेवाली दक्षिणकी छतपर दिनान्तमें रमनेवाली ग्रीष्मकी हवा अत्यन्त उतावली होकर घूम-फिर रही है। बिहारी चन्द्रोदय-हीन अन्धकारमें छतपर आराम-कुरसी डाले बैठा है।

आज शामको उसने बालक बसन्तको नहीं पढ़ाया, उसे जल्दी छुट्टी दे दी। आज उसका हृदय मानो माके त्यागे-हुए बच्चेकी तरह सान्त्वनाके लिए, सङ्गके लिए, अपने चिराभ्यस्त प्रीति-सुधासे स्निग्ध पूर्व-जीवनके लिए विश्व-जगतके अन्धकारमें दोनों हाथ उठाकर न-जाने किसे ढूंढ़ रहा है! आज उसकी दृढ़ता और कठोर संयमका बाँध टूटकर न-जाने कहाँ बह गया है! उसने जिनके विषयमें कुछ भी न सोचनेका प्रण किया था, आज उसका सम्पूर्ण हृदय उन्हींकी ओर दौड़ा जा रहा है, आज उसमें उसे रोकनेकी रत्ती-भर भी शक्ति नहीं।

महेन्द्रके साथ अपने बचपनके प्रेमसे लेकर उस प्रेमके अवसान तकके सम्पूर्ण चित्रको – जिसकी लम्बी कहानी नाना वर्णोंसे चित्रित और जल-स्थल पर्वत-नदियोंसे विभक्त मानचित्रकी तरह उसके मनमें लिपटी-हुई थी – बिहारीने अपने सामने खोलकर रख लिया और उसे गौरसे देखने लगा। देखने लगा, जिस क्षुद्र जगतपर उसने अपने जीवनकी प्रतिष्ठा की थी, वह किस जगह किस दुर्ग्रहके संघातसे विच्छिन्न हो गया ? पहले उसमें बाहरसे कौन घुसा ? सूर्यास्त-कालकी रक्तिम छटासे आभासित आशाका लज्जा-मण्डित तरुण मुखड़ा उस अँधेरेमें उसके सामने अङ्कित हो उठा, और उसके साथ-साथ मङ्गल-उत्सवकी पुण्य-शङ्खध्वनि उसके कानोंमें बजने लगी। यही शुभग्रह अदृष्टाकाशके अज्ञात प्रान्तसे आकर दोनों मित्रोंके बीचमें खड़ा हो गया था, और थोड़ा-सा विच्छेद ले आया था। कहाँसे वह ऐसी गूढ़ वेदना ले आया जिसे मुँहसे कहा भी नहीं जा सकता ? किन्तु फिर भी यह विच्छेद, यह वेदना अपूर्व स्नेहसे अनुरंजित और माधुर्य-रश्मिसे आच्छन्न और परिपूर्ण होकर बिहारीके हृदयमें बनी ही रही।

उसके बाद जिस शनि-ग्रहका उदय हुआ, उसने बन्धुओंके प्रेमको, दम्पतिके प्रेमको, घरकी शान्ति और पवित्राको एकदम नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। बिहारीने प्रबल घृणासे उस विनोदिनीको सम्पूर्ण अन्तःकरणसे बहुत दूर ढकेल-फेंकनेकी चेष्टा की ; किन्तु कैसा आश्चर्य है, आघात उसके लिए मानो अत्यन्त मृदु हो गया, उसे छू तक नहीं सका ! वह परमा सुन्दरी प्रहेलिका अपनी दुर्भेद्य रहस्य-पूर्ण घनकृष्ण अनिमेष दृष्टि लिये-हुए कृष्णपक्षके अन्धकारमें बिहारीके सामने स्थिर होकर खड़ी रही। ग्रीष्म-रात्रिकी उच्छ्वसित दखिनी हवा उसके घने निश्वासकी तरह बिहारीके तन-मनमें आकर टकराने लगी। धीरे-धीरे उन पलक-हीन नेत्रोंकी ज्वालामयी दीप्ति म्लान हो आई, देखते-देखते तृषासे शुष्क वह खर-दृष्टि आँसुओंसे सिक्त और स्निग्ध होकर गभीर भाव-रसमें परिप्लुत हो उठी ; और पल-भरमें उस मूर्तिने बिहारीके पैरोंके आगे पड़कर उसके दोनों पैरोंको प्राण-पण शक्तिसे अपनी छातीसे लगा लिया। और फिर उसने सुन्दर-सुहावनी माया-लताकी तरह बिहारीको वेष्टित करके प्रतिक्षण बढ़ बढ़कर सद्य-विकसित सुगन्धमय पुष्पमंजरीके समान अपना एक चुम्बनोन्मुख मुख

बिहारीके ओठोंके आगे बढ़ा दिया। बिहारी आँख मीचकर उस कल्प-मूर्तिको अपने स्मृति-लोकसे निर्वासित कर देनेकी चेष्टा करने लगा; किन्तु किसी भी तरह उसपर आघात करनेके लिए मानो उसका हाथ ही नहीं उठा, एक असम्पूर्ण व्याकुल चुम्बन उसके मुंहके आगे आसन्न बना रहा, और अपने पुलकसे उसने उसे भावाविष्ट कर दिया।

बिहारीसे फिर छतके उस निर्जन-अन्धकारमें न रहा गया। और-किसी तरफ मन लगानेके लिए वह जल्दीसे अपने दीपालोकित कमरेमें चला आया।

कोनेवाली तिपाईपर रेशमी वस्त्रके आवरणसे ढका एक मढ़ा-हुआ फोटोग्राफ रखा था। बिहारी उस चित्रको उठाकर बीच कमरेमें बत्तीके पास जाकर बैठ गया, और फिर उसे अपनी गोदमें रखकर ध्यानसे देखने लगा।

ब्याहके बाद ली-हुई महेन्द्र और आशाकी युगल-मूर्तिकी तसवीर थी। उसपर महेन्द्रके हाथसे 'महेन-भइया' और आशाके हाथसे 'आशा' लिखा-हुआ था। चित्रमें नव-परिणयका मधुर दिन ज्यों-का-त्यों बना-हुआ है। महेन्द्र कुरसीपर बैठा है, और उसके चेहरेपर नव-विवाहका सरस नवीन भावावेश स्पष्ट दिखाई दे रहा है; उसके पास ही आशा खड़ी है, फोटो उतारनेवालेने उसे घूंघट नहीं काढ़ने दिया, किन्तु उसके चेहरेपरसे वह लज्जा नहीं हटा सका। आज महेन्द्र अपनी पार्श्वचरी आशाको रुलाकर कितनी दूर चला जा रहा है! किन्तु जड़ चित्रने महेन्द्रके चेहरेसे नवीन प्रेमकी एक रेखा तक नहीं बदलने दी, कुछ भी न समझते-हुए भी उसने मूढ़की तरह मानो अदृष्टके परिहासको स्थायी कर रखा है।

उस तसवीरको गोदमें लिये-हुए बिहारीने विनोदिनीको धिक्कारके द्वारा बहुत दूर निर्वासित करना चाहा। किन्तु विनोदिनीके प्रेमसे विह्वल और यौवनसे कोमल दोनों हाथ बिहारीके पैर पकड़े हो रहे। बिहारी मन-ही-मन बोला, 'ऐसा सुन्दर प्रेमका जीवन तूने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया!' किन्तु विनोदिनीका उस दिनका वह ऊर्ध्वोन्मुख व्याकुल चुम्बन-निवेदन मौन-भाषामें बार-बार उससे यही कहने लगा कि 'मैं तुमसे प्रेम करती हूं। सारे संसारमें एकमात्र तुम्हींको मैंने वरण किया है।'

किन्तु, बिहारीकी बातका क्या यही जवाब है ? बस इतनी-सी बात क्या एक बरबाद घरके निदारुण आर्त-नादको दबा देगी ? बिहारीका अन्तःकरण बोल उठा, 'नहीं, पिशाची, नहीं।'

'पिशाची!' बिहारीने यह क्या पूरे तिरस्कारके साथ कहा है, या इसके साथ कुछ प्यारका स्वर भी आ मिला है ? जिस समय बिहारी अपने सम्पूर्ण जीवनके सम्पूर्ण प्रेमके अधिकारसे वञ्चित होकर एकदम खाली-हाथ भिखारीकी तरह गली-गली भटक रहा हो, उस समय क्या वह ऐसे अयाचित अपरिमित प्रेमके उपहारको सम्पूर्ण हृदयसे उपेक्षा करके ठुकरा सकता है? इसकी तुलनामें उसे मिला क्या है ? इतने दिनोंसे अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पण करके प्रेम-भण्डारसे वह तो केवल किनकी-भुसीकी भिक्षा माँग रहा था। प्रेमकी अन्नपूर्णाने सोनेके थालमें भरकर आज एकमात्र उसीके लिए जो नैवेद्य-भोग भेजा है, अभागा बिहारी किस दुबिधामें पड़कर उससे अपनेको बञ्चित कर दे ?

तसवीरको गोदमें लिये-हुए ऐसी-ऐसी नाना बातें वह एकाग्र चित्तसे सोच रहा था, इतनेमें किसीके पैरोंकी आहट सुनकर वह चौंक पड़ा। आँख उठाकर देखता है तो, महेन्द्र खड़ा है। चौंककर उठते ही उसकी गोदमेंसे तसवीर नीचे कारपेटपर गिर पड़ी,—उसपर उसका ध्यान ही नहीं गया।

महेन्द्र एकदम पूछ उठा, "विनोदिनी कहाँ है ?"

बिहारीने आगे बढ़कर महेन्द्रका हाथ पकड़ते-हुए कहा, "जरा बैठो, भाई साहब,—मैं सब बता दूंगा।"

महेन्द्रने कहा, "बैठकर बातें करनेका मेरे पास समय नहीं है। बताओ, विनोदिनी कहाँ है ?"

बिहारीने कहा, "तुम जो बात पूछ रहे हो, उसका एक बातमें जवाब नहीं दिया जा सकता। तुम्हें जरा स्थिर होकर बैठना पड़ेगा।"

महेन्द्रने कहा, "उपदेश दोगे ? उपदेशकी बातें मैंने बचपनमें बहुत पढ़ ली हैं।"

बिहारीने कहा, "नहीं, उपदेश देनेका मुझे अधिकार भी नहीं और शक्ति भी नहीं।"

महेन्द्रने कहा, "तो क्या तिरस्कार करोगे? मैं जानता हूं कि मैं पाखण्डी हूं, नराधम हूं, और भी तुम जो-कुछ कहना चाहो, मैं सब-कुछ हूं। किन्तु तुम यह बताओ कि तुम जानते हो या नहीं, विनोदिनी कहाँ है?"

"जानता हूं।"

"मुझे नहीं बताओगे?"

"नहीं।"

"तुम्हें बताना ही होगा। तुमने उसे चुराकर छिपा रक्खा है। वह मेरी है, उसे लौटा दो मुझे।"

बिहारी क्षण-भर स्तब्ध रहा, फिर दृढ़स्वरसे बोला, "वह तुम्हारी नहीं है। मैं उसे चुराकर नहीं लाया, वह खुद मेरे पास आकर पकड़ाई दी है।"

महेन्द्र गरज उठा, "झूठी बात है।" और फिर बगलके बन्द कमरेके दरवाजेपर जोर-जोरसे मुक्का मारता-हुआ चिल्लाने लगा, "विनोद! विनोद!"

भीतरसे रोनेकी आवाज सुनकर वह बोल उठा, "डरो मत, विनोद! मैं महेन्द्र हूं, मैं तुम्हें उद्धार करके ले जाऊंगा,— कोई तुम्हें बन्द करके नहीं रख सकता।"

इतना कहकर महेन्द्रने ज्योंही जोरसे एक धक्का मारा, दरवाजा खुल गया। महेन्द्र बड़ी तेजीसे भीतर घुसा, देखा कि बिलकुल अँधेरा है। अस्फुट छायाकी तरह उसे ऐसा दिखाई दिया कि बिस्तरपर मानो कोई डरके मारे सिकुड़कर सिसकता-हुआ तकियेसे चिपट गया है।

बिहारीने जल्दीसे उस कमरेमें जाकर बसन्तको गोदमें उठा लिया, और सान्त्वनाके स्वरमें कहने लगा, "कोई डर नहीं, बसन्त, कोई डर नहीं,— तुम डरो मत।"

महेन्द्र बड़ी तेजीसे बाहर निकल आया, और फिर ऊपर-नीचे इधर-उधर चारों तरफ विनोदिनीको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान हो गया। जब वह लौटकर बिहारीके पास आया, तब भी बसन्त भयके आवेगसे रह-रहकर रो रहा था, और बिहारी उसके कमरेमें बत्ती जलाकर, उसे बिछौनेपर लिटाकर, देहपर हाथ फेरकर उसे सुलानेकी कोशिश कर रहा था।

महेन्द्रने कहा, "विनोदिनीको कहाँ छिपा रक्खा है?"

बिहारीने कहा, "भाई साहब, इस तरह शोर मत मचाओ तुम। तुमने बेमतलब इस बच्चेको इतना डरा दिया है कि यह बीमार पड़ सकता है। मैं कहता हूं, विनोदिनीकी खबरसे तुम्हें कोई मतलब नहीं।"

महेन्द्र बोल उठा, "साधु, महात्मा! अब तुम मेरे सामने धर्मका आदर्श मत खड़ा करो। मेरी स्त्रीकी इस तसवीरको गोदमें रखकर आधी रातको तुम किस देवताके ध्यानमें कौन-सा पुण्य-मन्त्र जप रहे थे? पाखण्डी!"

इनता कहकर उसने हाथकी तसवीर उठाकर जमीनसे दे मारी, और उसे जूते-शुदा पैरोंसे कुचलकर उसका काँच चूर-चूर कर दिया; और फ्रेममेंसे फोटो निकालकर, उसके टुकड़े-टुकड़े करके, बिहारीके मुंहपर फेंक दिया।

महेन्द्रकी उन्मत्त दशा देखकर बसन्त फिर डर गया, और रोने लगा। बिहारीका कण्ठ रुक आया,—उसने दरवाजेकी तरफ हाथका इशारा करके कहा, "जाओ!"

महेन्द्र आँधीकी तरह प्रबल वेगसे बाहर चला गया।

३७

विनोदिनी जब यात्री-शून्य जनाने-डब्बेमें बैठी-बैठी खिड़कीमेंसे जुते-हुए खेत और बीच-बीचमें छाया-वेष्टित एक-एक गाँव देखने लगी तब उसके मनमें स्निग्ध-निभृत ग्राम्य-जीवनका चित्र जाग उठा। सोचने लगी, अब वह गाँवके तरु-छाया-वेष्टित स्वरचित कल्पना-नीड़में—नगर-वासके सारे दुःख-दाह और क्षत-वेदनासे छुटकारा पाकर—अपनी प्रिय पुस्तकोंके साथ शान्तिसे रहेगी। और फिर ग्रीष्मऋतुके शस्य-शून्य दिगन्त-प्रसारित धूसर खेतोंके पीछे सूर्यास्तका दृश्य देखकर सोचने लगी, 'अब मुझे किसीकी भी जरूरत नहीं।' उसका मन मानो सूर्यास्त-कालकी सुवर्ण-रञ्जित स्तब्ध-विस्तीर्ण शान्तिमें सब-कुछ भूलकर आँखें मीच लेना चाहता है और तरङ्गोंसे विक्षुब्ध सुख-दुःख-सागरसे अपनी जीवन-तरीको किनारे लगाकर निःशब्द सन्ध्यामें किसी निष्कम्प वटवृक्षके नीचे बाँध रखना चाहता है,—और किसी चीजकी उसे जरूरत ही नहीं।

चलती गाड़ीमें किसी-किसी जगह आम्र-कुञ्जसे आम्र-मंजरियोंकी सुगन्ध आती और वह अपनी स्निग्ध शान्तिसे विनोदिनीका मन भर जाती, उसे विह्वल कर देती। मन-ही-मन वह कहने लगती, 'अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ; अपनेको लेकर अब मैं खींचातानी नहीं कर सकती,—अब मैं, सब भूल जाऊँगी; और सोऊँगी निश्चिन्त होकर। गँवई-गाँवकी लड़की हूं मैं, घरका और गाँवका काम-काज करके सन्तोषके साथ आरामसे अपना जीवन बिता दूंगी।

इस तरह अपने तृषित हृदयमें शान्तिकी आशा लिये-हुए विनोदिनीने गाँवमें जाकर अपनी कुटियामें प्रवेश किया। किन्तु हाय, शान्ति है कहाँ! यहाँ तो केवल शून्यता है, दारिद्रता है। चारों तरफ जो-कुछ भी है, सब जीर्ण है, मलिन है, अनादृत है, श्रीहीन है। बहुत दिनोंसे बन्द सीड़-शुदा घरकी भमकसे मानो उसका दम घुटने लगा। घरमें थोड़ी-बहुत जो चीज-बस्त थी वह भी कीटोंके दंशनसे, चूहोंके उत्पातसे और धूल-मिट्टीके आक्रमणसे बरबाद हो गई थी।

विनोदिनी जब घर पहुँची तब शाम हो रही थी। घर निरानन्द और अन्धकारमय हो रहा था। किसी तरह उसने बत्ती बटकर और तेल डालकर मिट्टीका दिया जलाया तो उसके धुएँ और क्षीण प्रकाशसे घरकी दीनता और भी ज्यादा परिस्फुट हो उठी। पहले जो अवस्था उसे पीड़ा नहीं देती थी, आज वह उसे असह्य मालूम होने लगी, और उसका सम्पूर्ण अन्तःकरण विद्रोही होकर जोरसे बोल उठा, 'यहाँ तो एक घड़ी भी नहीं कट सकती।' आलेमें पहलेकी दो-एक धूलसे भरी पुस्तकें और मासिकपत्रिकाएँ पड़ी थीं, किन्तु उन्हें छूने तककी उसकी इच्छा नहीं हुई। बाहर अन्धकारमय वायु-हीन आमके बागमें झींगुरोंकी झनकार और मच्छड़ोंकी भनभनाहट सुनाई दे रही थी।

विनोदिनीकी जो वृद्धा अभिभाविका थीं, वे घरमें ताला बन्द करके अपनी लड़कीको देखने उसकी ससुराल दूर-गाँव चली गई थीं। विनोदिनी पड़ोसिनोंके घर गई। वे उसे देखकर मानो चौंक पड़ीं। परस्पर एक दूसरेसे कानाफूसी करने लगीं, 'देखा, विनोदका रूप-रंग कैसा निखर गया है! कपड़े-लत्ते कैसे चुस्त-दुरुस्त रखने लगी है, जैसे मेमसाहब हो! और न-जाने क्या-क्या इशारे

करके कभी विनोदिनीकी तरफ और कभी आपसमें एक-दूसरेके मुँहकी तरफ देखने लगीं। मानो जो बात इधर कुछ दिनोंसे फैली-हुई थी, उन्हें उसके अब लक्षण मिल रहे हों।

विनोदिनी पद-पदपर अनुभव करने लगी कि वह सब तरहसे अपने गाँवसे बहुत दूर चली गई है। अपने ही घरमें वह निर्वासित-सी हो गई है। संसारमें कहीं भी उसके लिए ऐसी कोई जगह नहीं रह गई है जहाँ वह क्षण-भर भी आरामसे रह सके।

डाकघरका एक बूढ़ा डाकिया विनोदिनीका बचपनका परिचित था। दूसरे दिन विनोदिनी जब तालाबमें नहाने जा रही थी तब रास्तेमें चिट्ठियोंका बैग लिये-हुए डाकिया मिल गया। उसे देखकर विनोदिनीसे रहा न गया, वह जल्दीसे उसके पास जाकर पूछने लगी, "पंचू-दादा, मेरी कोई चिट्ठी है क्या?"

बूढ़ेने कहा, "नहीं तो।"

विनोदिनी व्यग्र होकर बोली, "हो भी सकती है। दिखाना जरा।"

कहते-हुए उसने जल्दी-जल्दी बहुत-सी चिट्ठियाँ उलट डालीं, किन्तु उसकी कोई नहीं निकली। उदास मुँह लिये-हुए वह नहाने चली गई। तालाबके घाटपर पहुँचते ही उसकी एक सखीने सकौतुक कटाक्षके साथ कहा, "क्यों री बिन्दी, चिट्ठीके लिए तू इतनी फड़फड़ा क्यों रही थी?"

एक दूसरी प्रगल्भाने कहा, "वाह री वाह, तू भी खूब है! डाकसे चिट्ठी आवे ऐसे भाग्य भी तो होने चाहिए! हमारे तो पति, देवर, भाई सब परदेसमें काम करते हैं,—पर डाकियाकी कभी हमपर दया ही नहीं होती!"

इस तरह बात-बातमें परिहास स्पष्ट और कटाक्ष तीव्र होने लगा।

विनोदिनी बिहारीसे अनुनय कर आई थी कि वह रोज नहीं तो कमसे कम हफ्तेमें दो बार, ज्यादा नहीं-तो दो-चार लाइनकी चिट्ठी उसे जरूर डाल दिया करे। किन्तु आज ही चिट्ठी पानेकी सम्भावना अत्यन्त कम थी, फिर भी विनोदिनीकी आकांक्षा इतनी प्रबल हो उठी कि दूर-सम्भावनाकी आशा भी वह न छोड़ सकी। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि मानो कलकत्ता छोड़े उसे बहुत दिन हो गये।

शत्रु और मित्रोंकी कृपासे विनोदिनीसे यह छिपा न रहा कि महेन्द्रके साथ उसके अनुचित सम्बन्धकी निन्दा गाँवमें घर-घर फैल गई है। उसके लिए यहाँ शान्ति कहाँ है?

विनोदिनी गाँववालोंसे अपनेको निर्लिप्त रखनेकी कोशिश करने लगी। इससे गाँववाले उसपर और भी ज्यादा नाराज हो गये। उनके लिए यह वाञ्छनीय नहीं कि पातकिनी उनसे अलग रहकर उन्हें घृणा और निन्दा करनेके विलास-सुखसे भी वञ्चित रखे।

छोटे-से गाँवमें अपनेको सबकी दृष्टिसे छिपा रखनेकी चेष्टा वृथा है। यहाँ आहत हृदयको लेकर किसी कोनेमें जाकर एकान्त-अन्धकारमें उसकी सेवा करनेका अवकाश नहीं,– इधर-उधरसे सबकी तीक्ष्ण कुतूहल-दृष्टि आकर क्षत-स्थानपर पड़ती ही है। विनोदिनीकी अन्तःप्रकृति टोकनीके भीतरकी सजीव मछलीकी तरह जितनी ही छटपटाने लगी, उतनी ही चारों तरफकी सङ्कीर्णतासे टकराकर अपनेको वह बार-बार आहत करने लगी। वह समझ गई कि यहाँ स्वतन्त्रतासे पूरी तरह वेदना सहनेका भी स्थान नहीं।

दूसरे दिन चिट्ठी पानेका समय उत्तीर्ण होते ही विनोदिनी घरका दरवाजा बन्द करके चिट्ठी लिखने बैठ गई। उसने लिखा :–

"लालाजी, डरनेकी कोई बात नहीं, मैं तुम्हें प्रेमकी चिट्ठी लिखने नहीं बैठी। तुम मेरे विचारक हो, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूं। मैंने जो पाप किया है, तुमने उसका कठिन दण्ड दिया है। तुम्हारा आदेश पाते ही मैंने उसे शिरोधार्य कर लिया है। दुःख सिर्फ इतना ही है कि दण्ड कितना कठोर है सो तुम देख न सके। अगर तुम देखते या जान पाते तो तुम्हारे मनमें दया आ जाती। किन्तु मैं उससे भी वञ्चित रह गई। तुम्हारा स्मरण करके और मन-ही-मन तुम्हारे चरणोंके पास सिर रखके मैं इसे भी सह लूंगी। किन्तु प्रभु, जेलखानेके कैदीको क्या खाने-पीनेको भी नहीं मिलता? शौककी खुराक नहीं, जीनेके लिए जितनेकी जरूरत होती है उतनी खुराक तो उसे मिलती ही है। तुम्हारी दो-चार पंक्तिकी चिट्ठी मेरे इस निर्वासनकी खुराक है,– वह भी अगर न मिले, तब तो

यह मेरा केवल निर्वासन-दण्ड ही नहीं, प्राणदण्ड है। मेरी इतनी ज्यादा परीक्षा मत करो, मेरे दण्डदाता! मेरे इस पापी मनके अहङ्कारकी सीमा नहीं थी,— मैंने कभी यह स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि किसीके भी आगे मुझे इस तरह सिर झुकाना पड़ेगा। तुम्हारी जय हुई है, प्रभु, मैं विद्रोह नहीं करूँगी। किन्तु तुम मुझपर दया करो, मुझे जीने दो। इस वनवासमें जीनेके लिए थोड़ी-बहुत पूँजी तो मुझे भेज दिया करो। फिर तुम्हारे शासनसे मुझे कोई भी किसी भी तरह टला नहीं सकता। बस, इतनी-सी दुःखकी बात तुम्हें जता दी है। और जो-जो बातें मनमें जमा हो रही हैं उन्हें कहनेके लिए छाती फटी जा रही है,— किन्तु उन्हें न कहनेके लिए मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूं, और उस प्रतिज्ञाकी मैं रक्षा कर रही हूं।

तुम्हारी —
विनोदा-भाभी।"

विनोदिनी चिट्ठी डाकखानेमें छोड़ आई। गाँवके लोग 'छी छी' करने लगे। कहने लगे, 'अब तो घरका दरवाजा बन्द किये रहती है, चिट्ठी लिखा करती है, चिट्ठी पानेके लिए डाकियापर टूट पड़ती है,— दो दिन कलकत्ते क्या रह आई, लज्जा-धर्म सब-कुछ खो आई।'

इसके दूसरे दिन भी कोई चिट्ठी नहीं आई। विनोदिनी दिन-भर चुपचाप बैठी रही, उसका चेहरा कठोर हो उठा। भीतर-बाहर चारों तरफके आघात और अपमानके मन्थनसे उसके हृदयके अन्धकार-समुद्रके नीचेसे निष्ठुर संहारक शक्ति कठोर मूर्ति धारण करके बाहर निकलनेको उद्यत हो गई। उस निदारुण निष्ठुरताके आविर्भावका अनुभव करके विनोदिनीने मारे डरके घरका दरवाजा बन्द कर लिया।

उसके पास बिहारीकी कोई भी निशानी नहीं थी,— न तसवीर थी और न चिट्ठी, कुछ भी नहीं था। फिर भी उस शून्यतामें मानो वह कुछ ढूँढ़ने लगी। बिहारीके किसी-एक चिह्नको छातीसे लगाकर वह अपनी सूखी-आँखोंमें पानी लाना चाहती है। और उस अश्रु-जलसे हृदयकी सम्पूर्ण कठिनताको गलाकर विद्रोह-वह्निको बुझाकर वह बिहारीके कठोर आदेशको अपने हृदयके

कोमलतम सिंहासनपर बिठाये रखना चाहती है। किन्तु अनावृष्टिके मध्याह्न-आकाशकी तरह उसका हृदय केवल जलने ही लगा, दिग-दिगन्तमें कहीं भी उसे एक बूँद आँसूके लक्षण नहीं दिखाई दिये।

विनोदिनीने सुना था कि एकाग्र मनसे ध्यान करते-हुए जिसे पुकारा जाता है वह बिना आये नहीं रह सकता। इसलिए वह हाथ जोड़कर और आँखें मीचकर बिहारीको पुकारने लगी, 'मेरा जीवन शून्य है, मेरा हृदय शून्य है, मेरे चारों तरफ सब-कुछ शून्य है,—इस शून्यतामें एक बार तुम आ जाओ, एक क्षणके लिए आओ, तुम्हें आना ही होगा, मैं किसी भी तरह तुम्हें नहीं छोड़ सकती।'

यह बात प्राण-मनसे कहते-कहते विनोदिनीको मानो वास्तवमें बल मिल गया। उसे ऐसा लगा कि मानो यह प्रेमका बल, आह्वानका बल, व्यर्थ नहीं जायगा। केवल स्मरण करके दुराशाकी जड़में हृदयका रक्त सींचनेसे हृदय केवल अवसन्न हो जाता है। किन्तु इस तरह एकाग्र मनसे ध्यान करके सम्पूर्ण शक्तिसे कामना करते रहनेसे अपने विषयमें मानो समर्थताका अनुभव होने लगता है, और प्रबल इच्छासे जगतके और सब-कुछको छोड़कर केवल वाञ्छित को आकर्षित करते रहनेसे प्रतिक्षण क्रमशः धीरे-धीरे वह निकवर्ती ही होता रहता है।

बिहारीके ध्यानमें जब सन्ध्याके दीप-शून्य अन्धकारसे घर निविड़-रूपसे परिपूर्ण हो उठा और जब समाज-संसार, गाँव-शहर, समस्त त्रिभुवन प्रलयमें विलीन हो गया, तब बिनोदिनी सहसा बाहरसे किसीके दरवाजा खटखटानेकी आवाज सुनकर बड़ी फुरतीसे उठ खड़ी हुई; और संशय-हीन विश्वासके साथ दौड़कर दरवाजा खोलकर बोली, "आ गये, प्रभु!" उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि इन क्षणोंमें इस संसारका और कोई भी उसके द्वारपर नहीं आ सकता।

महेन्द्रने कहा, "आ गया, विनोद।"

विनोदिनी असीम विराग और प्रचण्ड धिक्कारके साथ बोल उठी, "जाओ, जाओ तुम यहाँसे। अभी तुरत चले जाओ!"

महेन्द्र अकस्मात् स्तम्भित-सा रह गया।

इतनेमें, "क्यों री बिन्दी, तेरी ददिया-सास अगर कल–" कहती-हुई कोई प्रौढ़ा पड़ोसिन दरवाजेके पास आ गई, और महेन्द्रको देखते ही "ओ मेरी मैया" कहकर लम्बा घूँघट खींचकर तुरत वहाँसे भाग गई।

३८

गाँव-भरमें बड़ा-भारी एक तहलका-सा मच गया। गाँवके बड़े-बूढ़े चंडी-मण्डपमें पंचायत करने बैठ गये, 'यह हरगिज नहीं सहा जा सकता। कलकत्तेमें क्या हुआ, क्या नहीं हुआ – सो सुनी अनसुना किया जा सकता था, किन्तु गाँवमें रहकर इतनी हिम्मत कि चिट्ठीपर चिट्ठी लिखकर महेन्द्रको गाँवमें बुलाकर इस तरह खुल्लमखुल्ला बेहयाई! इस भ्रष्टाको अब गाँवमें हरगिज नहीं रक्खा जा सकता।'

विनोदिनीको निश्चित आशा थी कि आज बिहारीका पत्रोत्तर उसे जरूर मिल जायगा। किन्तु नहीं आया। वह मन-ही-मन कहने लगी, 'मुझपर बिहारीका क्या अधिकार है? मैंने क्यों उसका आदेश पालन किया? मैंने क्यों उसे यह जानने दिया कि 'वह मेरे लिए जैसा विधान देगा, मैं उसीको शिरोधार्य करूंगी? उसे तो अपनी प्यारी आशाको बचानेके लिए जितनेकी जरूरत है, मेरे साथ उसका सिर्फ उतना ही सम्बन्ध है। मेरी अपनी कोई माँग नहीं, मेरा अपना कुछ प्राप्य नहीं, मामूली-सी दो-चार पंक्तिकी चिट्ठी भी नहीं? मैं इतनी तुच्छ हूं, इतनी घृणाकी वस्तु हूं?' और फिर ईर्षाके विषसे विनोदिनीका सम्पूर्ण हृदय भर उठा, और मन-ही-मन वह कहने लगी, 'और किसीके भी लिए इतना दुःख सहा जा सकता है, किन्तु आशाके लिए हरगिज नहीं। यह दीनता, यह वनवास, यह लोक-निन्दा, ऐसी अवज्ञा, जीवनकी ऐसी सर्वप्रकारकी अपरितृप्ति सिर्फ आशाके लिए मुझे वहन करनी होगी, इतना धोखा मैंने क्यों उठाया? क्यों मैं अपने सर्वनाशका व्रत सम्पूर्ण नहीं कर आई? मूर्ख हूं मैं, निर्बोध हूं। मैंने क्यों बिहारीसे प्रेम किया?'

विनोदिनी जब कठपुतलीकी तरह कठिन होकर अपने घरमें बैठी थी, ठीक उसी समय उसकी ददिया-सास अपने दामादके यहाँसे घर लौटी।

उन्होंने घरमें कदम रखते ही विनोदनीसे कहा, "कलमुँही, गाँव-भरमें यह सब क्या सुन रही हूं ?"

विनोदिनीने कहा, "सब ठीक ही सुन रही हो।"

ददिया-सास बोली, "तो इस कलङ्कको गाँवमें लानेकी क्या जरूरत थी ? यहाँ तू क्यों आई ?"

अवरुद्ध क्षोभसे विनोदिनी चुप बैठी रही।

ददिया-सासने कहा, "अब तेरा यहाँ रहना नहीं हो सकता, मैं कहे देती हूं ! जले भाग्यसे मेरे सब मर गये, उसका दुःख मैंने सह लिया,– पर अब यह-सब मुझसे नहीं सहा जायगा। छी-छी-छी, तूने गाँवमें मुझे मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा। तू इसी वक्त यहाँसे काला मुँह कर जा।"

विनोदिनीने कहा, "मैं इसी वक्त चली जाऊँगी।"

इतनेमें महेन्द्र बिना-नहाये बिना-खाये रूखे बाल और रूखा चेहरा लिये सहसा वहाँ आ पहुंचा। रात-भरकी अनिद्रासे उसकी आँखें लाल-सुर्ख हो रही थीं, चेहरा सूखा-हुआ था। उसका सङ्कल्प था कि अँधेरा रहते खूब भोरमें आकर वह विनोदिनीको ले चलनेके लिए दूसरी बार कोशिश करेगा। किन्तु विनोदिनीके कलके घृणा-पूर्ण प्रहारसे उसके मनमें तरह-तरहकी दुविधा होने लगी। और, क्रमशः जब दिन चढ़ गया और रेलका समय होने लगा तब स्टेशनकी यात्री-शालासे निकलकर मनसे सब तरहकी दुविधा जबरदस्ती दूर करके वह घोड़ा-गाड़ीमें बैठकर एकदम विनोदिनीके घरके दरवाजेपर आ खड़ा हुआ। लज्जा-शरम छोड़कर प्रकट-रूपसे दुःसाहसका काम करनेमें जो एक तरहकी स्पर्धा-पूर्ण शक्ति आ जाती है, उस शक्तिके आवेगमें उसे एक तरहके उद्भ्रान्त आनन्दका अनुभव होने लगा, और उसकी सम्पूर्ण श्रान्ति और दुविधा चूर-चूर हो गई। गाँवके कुतूहली लोग महेन्द्रकी उन्मत्त दृष्टिमें धूल-मिट्टीके निर्जीव खिलौने-से मालूम होने लगे।

महेन्द्रने किसी तरफ देखा तक नहीं, वह एकदम सीधा विनोदिनीके पास जाकर बोला, "विनोद, तुम मुझे ऐसा कायर न समझ लेना कि मैं तुम्हें यहाँ लोक-निन्दाके भाड़में छोड़कर चला जाऊंगा। जैसे भी हो, तुम्हें यहाँसे ले

जाना ही होगा। उसके बाद तुम मुझे त्यागना चाहो तो त्याग देना; मैं तुम्हें जरा भी बाधा न दूंगा। मैं आज तुम्हें छूकर प्रतिज्ञा करता हूं कि तुम जब जैसा चाहोगी, मैं वैसा ही करूँगा। तुम दया करोगी तो मैं जीवित रहूंगा, नहीं करोगी तो मैं तुम्हारे रास्तेसे दूर हट जाऊंगा। मैंने संसारमें अनेक अविश्वासके काम किये हैं, किन्तु आज तुम मुझपर अविश्वास मत करो, विनोद! हम दोनों आज प्रलयके सामने खड़े हैं, यह छलना करनेका समय नहीं है।"

विनोदिनीने अत्यन्त स्वाभाविक भावसे अविचल स्वरमें कहा, "मुझे तुम अपने साथ ले चलो। तुम्हारे साथ गाड़ी है?"

महेन्द्रने कहा, "है।"

इतनेमें विनोदिनीकी ददिया-सास बाहर निकल आई, और बोली, "महेन्द्र, तुम मुझे नहीं पहचानते,– पर तुम हमारे गैर नहीं हो। तुम्हारी मा राजलक्ष्मी इसी गाँवकी लड़की है, गाँवके नातेसे मैं उसकी मामी लगती हूं। भला, मैं पूछती हूं, ये-सब तुम्हारे क्या ढंग हैं? घरमें तुम्हारे बहू है, मा है,– और तुम ऐसे बेहया हो गये हो कि मतवालेकी तरह पराई बहू-बेटियोंके पीछे-पीछे फिर रहे हो! अरे जरा सोचो तो सही, समाजके चार भले-आदमी सुनेंगे तो क्या कहेंगे, कैसे तुम उनके आगे अपना मुंह दिखाओगे!"

महेन्द्र जिस भावोन्मादके राज्यमें था, इस ताड़नासे वहाँ जोरका एक धक्का लगा। घरमें उसके मा है, स्त्री है,–और फिर चार भले-आदमियोंका समाज भी है। यह साधारण-सी बात मानो उसके मनमें नये रूपमें उदित हुई।

इस अज्ञात सुदूर गाँवमें एक अपरिचित घरके द्वारपर महेन्द्रको ऐसी बात सुननी पड़ेगी, इसकी उसने पहले कभी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। महेन्द्रके जीवन-चरितमें ऐसा भी एक अद्भुत अध्याय लिखा गया कि जिसमें वह दिन-दहाड़े गाँवमें आकर किसी भद्र-घरकी विधवा बहूको घरसे निकाले लिये जा रहा है! फिर भी उसके मा है, स्त्री है, और चार भले-आददियोंका समाज भी है!

महेन्द्र जब निरुत्तर होकर खड़ा रहा तब वृद्धा फिर बोली, "जाना हो तो अभी जाओ, दूर हो यहाँसे। हमारे घरके दरवाजेपर मत खड़े रहो,— बस चले जाओ यहाँसे, जल्दी जाओ!"

इतना कहकर वृद्धा घरके भीतर चली गई ; और भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये।

विनोदिनी बिना-नहाये बिना-खाये मैले कपड़े पहने रीते-हाथ गाड़ीमें बैठ गई। महेन्द्र जब गाड़ीमें चढ़ने लगा तो उसने कहा, "नहीं, तुम पैदल आओ, स्टेशन दूर नहीं है।"

महेन्द्रने कहा, "गाँवके सब लोग देखेंगे जो मुझे!"

विनोदिनीने कहा, "अब भी तुम्हारे अन्दर लज्जा बाकी है?" कहते-हुए उसने गाड़ीका दरवाजा बन्द कर लिया। और कोचवानसे कहा, "स्टेशन चलो।"

कोचवानने पूछा, "बाबू नहीं चलेंगे?"

महेन्द्र बगलें झाँकने लगा, उसकी हिम्मत ही नहीं हुई कुछ कहनेकी।

गाड़ी चली गई। महेन्द्र सिर नीचा किये-हुए गाँवका रास्ता छोड़कर खेतोंमें होकर घूमता-हुआ स्टेशनकी तरफ चल दिया।

उस समय ग्राम्य-वधुओंका स्नानाहार हो चुका था। केवल घरकी कर्मनिष्ठा बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ जिन्हें काम-काजसे देरसे छुट्टी मिली थी, अपने-अपने पहननेके कपड़े लिये-हुए आम्र-मुकुलकी सुगन्धसे आमोदित और छायासे स्निग्ध पुष्करिणीके एकान्त और निर्जन घाटकी ओर जा रही थीं।

३९

महेन्द्र कहाँ चला गया, इस आशङ्कामें राजलक्ष्मीका खाना-पीना-सोना सब छूट गया। साधुचरण सम्भव-असम्भव सभी जगह उसे ढूंढ़ते फिर रहे हैं, कहीं कुछ पता नहीं लग रहा है। इतनेमें महेन्द्र विनोदिनको साथ लेकर कलकत्ता आ गया। और, पटलडाँगामें एक किरायेके मकानमें विनोदिनीको रखकर वह अपने घर पहुँचा।

माके कमरेमें जाकर उसने देखा, कमरेमें अँधेरा है, लैम्पकी बत्ती बिलकुल नीची करके उसके आगे गत्तेसे आड़ कर दी गई है। राजलक्ष्मी रोगीकी तरह बिस्तरपर पड़ी हैं, और आशा उनके तलवोंपर धीरे-धीरे हाथ फेर रही है। इतने दिन बाद बहूको सासके चरणोंपर अधिकार मिला है।

महेन्द्रके आते ही आशा चौंककर उठ खड़ी हुई, और तुरत बाहर चली गई। महेन्द्रने जबरदस्ती अपनी सब दुबिधाओंको दूर करते-हुए कहा, "मा, यहाँ मेरी पढ़ाई ठीकसे नहीं होती,—मैंने कालेजके पास एक कमरा ले लिया है, अब मैं वहीं रहा करूँगा।"

राजलक्ष्मीने अपने बिस्तरके एक किनारेकी ओर उंगलीसे इशारा करते-हुए कहा, "तू बैठ तो सही जरा।"

महेन्द्र सङ्कोचके साथ बिस्तरपर बैठ गया।

राजलक्ष्मीने कहा, "बेटा, तेरी जहाँ तबीयत आये, तू वहीं रह, पर तू मेरी बहू-रानीको मत सता।"

महेन्द्र चुप बैठा रहा।

राजलक्ष्मी कहती गईं, "मेरी तकदीर ही फूटी है,—इसीसे मैं ऐसी लक्ष्मी बहूको नहीं पहचान सकी।" कहते-कहते उनका गला रुक आया, बोलीं, "पर तैंने उसे इतने दिन जानकर, इतना लाड़-प्यार करके,—अन्तमें इतने दुःखमें कैसे डाल दिया!" कहते-कहते उनसे रहा नहीं गया, वे रोने लगीं।

महेन्द्र वहाँसे भाग सके तो जी जाय, किन्तु भाग न सका। माके बिस्तरपर एक किनारेसे अँधेरेमें चुपचाप बैठा रहा।

बहुत देर बाद राजलक्ष्मीने कहा, "आज रातको तू यहीं रहेगा न?"

महेन्द्रने कहा, "नहीं।"

राजलक्ष्मीसे पूछा, "कब जायगा?"

महेन्द्रने कहा, "अभी।"

राजलक्ष्मी बड़ी मुश्किलसे उठके बैठ गईं। बोलीं, "अभी? एक बार बहूसे अच्छी तरह मिलके भी नहीं जायगा?"

महेन्द्रने कुछ जवाब नहीं दिया।

राजलक्ष्मीने कहा, "बहूके ये कई दिन कैसे कटे हैं, सो क्या तू जरा भी नहीं समझ सकता ! अरे ओ निर्लज्ज, तेरी निष्ठुरतासे मेरी छाती फटी जा रही है ।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी कटी-हुई डालीकी तरह बिस्तरपर गिर पड़ीं ।

महेन्द्र माके बिस्तरपरसे उठकर बाहर चला गया । और बहुत धीरे-धीरे दबे-पाँव जीनेसे चढ़ता-हुआ ऊपर अपने कमरेमें पहुंचा । वह नहीं चाहता कि आशासे उसकी भेंट हो ।

महेन्द्रने ऊपर जाते ही देखा, उसके कमेरेके सामने जो पटी-हुई छत है, आशा वहीं जमीनपर पड़ी है । उसे महेन्द्रके आनेकी आहट नहीं मालूम हुई थी,—अब सहसा उसे अपने सामने खड़ा देख वह जल्दीसे अपने कपड़े सम्हालती हुई उठके बैठ गई । इस समय महेन्द्र यदि एक बार 'चुन्नी' कहकर पुकारता, तो उसी क्षण वह महेन्द्रके समस्त अपराध स्वयं शिरोधार्य करके क्षमा-प्राप्त अपराधिनीकी तरह महेन्द्रके पाँवोंसे लिपटकर अपने जीवनका समस्त रोना रो लेती । किन्तु महेन्द्र उस प्रिय-नामसे न पुकार सका । उसने जितनी ही कोशिश की, इच्छा की, उतनी ही उसे वेदना होने लगी । इस बातको वह भूल न सका कि आज आशासे प्यारकी बातें करना सार-हीन परिहास-मात्र है । उसे मुँहसे सान्त्वना देकर क्या होगा, जब कि विनोदनीको त्यागनेका रास्ता उसने अपने हाथसे एकदम बन्द कर दिया है ?

आशा मारे सङ्कोचके गड़ी-हुई बैठी रही । उठके खड़े होने, चले जाने या और-किसी प्रकारकी गतिकी कोशिश तक करनेमें उसे लज्जा मालूम होने लगी ।

महेन्द्र कोई बात न करके छतपर चहलकदमी करने लगा । कृष्णपक्षके आकाशमें अभी तक चाँद नहीं दिखाई दिया था । छतके एक कोनेमें छोटे-से गमलेमें रजनीगन्धाके दो फूल खिल रहे थे । छतके ऊपरके अन्धकारमय आकाशमें जो नक्षत्र चमक रहे हैं – सप्तर्षि और कालपुरुष – उनमेंसे बहुत-से अनेक रात्रियोंके अनेक निभृत प्रेमाभिनयके नीरव साक्षी रहे हैं, और आज भी वे निस्तब्ध रहकर देखते रहे ।

महेन्द्र सोचने लगा, 'काश, इधर बीचके कुछ दिनोंकी उथल-पुथलको इस आकाश-भरे अँधेरेसे पोंछकर अगर पहलेकी तरह फिर इस खुली छतपर चटाई बिछाकर आशाके पास उसी तरह सहज-स्वाभाविक-भावसे बैठ सकता! काश, कोई सवाल न होता, कोई जवाब न होता,— पहलेका-सा वही विश्वास, वही प्रेम और वही सहज आनन्द होता!' किन्तु हाय, इतने बड़े संसारमें ठीक उसी जगह लौटनेका अब रास्ता ही नहीं रहा। इस छतपर आशाके पास चटाईके एक किनारे बैठनेका अधिकार भी वह खो चुका है।

अब तक विनोदनीके साथ महेन्द्रका बहुत-कुछ स्वाधीन सम्बन्ध था। उसमें प्रेम करनेका उन्मत्त सुख तो था, किन्तु वह अविच्छेद्य बन्धन नहीं था। और अब महेन्द्र विनोदिनीको अपने हाथसे समाज-वृक्षसे तोड़ लाया है,— अब विनोदनीको कहीं भी रखनेकी, कहीं भी लौटानेकी जगह नहीं,— अब तो महेन्द्र ही उसका एकमात्र सहारा है। अब तो इच्छा हो या न हो, विनोदिनीका सारा भार उसे ढोना ही पड़ेगा।

ये-सब बातें सोच-सोचकर महेन्द्रका हृदय भीतर-ही-भीतर पीड़ित होने लगा। छतके ऊपरका वह जीवन, वह शान्ति, बाधा-हीन दाम्पत्य-मिलनकी वे एकान्त-निभृत रातें सहसा महेन्द्रको बड़े आरामदे मालूम होने लगीं। किन्तु वह सहज-सुलभ सुख — जिसपर एकमात्र उसीका अधिकार है — आज महेन्द्रके लिए दुराशाका स्वप्न बन गया है। चिर-जीवनके लिए जिस बोझको उसने अपने सिरपर उठा लिया है उसे उतारकर एक क्षणके लिए भी अब वह आराम नहीं कर सकता।

महेन्द्रने एक गहरी साँस ली, और फिर वह आशाकी तरफ देखने लगा। आशा अपने निस्तब्ध रोदनसे छाती भरे-हुए निश्चल बैठी थी। और रात्रिके अन्धकारने जननीके आँचलकी तरह उसकी लज्जा और वेदनाको ढक रखा था।

मदेन्द्र चहलकदमी करते-करते सहसा रुककर खड़ा हो गया, और, मालूम नहीं क्या कहनेके लिए एकदम आशाके पास आ खड़ा हुआ। आशाके सारे शरीरका खून उसके कानोंमें शब्द करने लगा,— उसने अपनी आँखें मीच लीं। महेन्द्र क्या कहने आया था, कुछ तय न कर सका,— आखिर वह कह ही क्या

सकता था ! किन्तु कुछ-न-कुछ कहे बिना वह लौट भी न सका। उसने कहा, "चाभीका गुच्छा कहाँ है ?"

चाभियोंका गुच्छा रखा था गद्दीके सिरहानेके नीचे। आशा उठकर कमरेके भीतर गई, महेन्द्र भी उसके पीछे-पीछे गया। गद्दीके नीचेसे गुच्छा निकालकर आशाने महेन्द्रके सामने रख दिया। महेन्द्र उसे उठाकर अपनी अलमारीके तालेमें एक-एक चाभी लगाकर देखने लगा। आशासे रहा नहीं गया, उसने धीरेसे कहा, "इस अलमारीकी चाभी तो मेरे पास नहीं थी।"

किसके पास चाभी थी, यह बात आशाके मुँहसे नहीं निकली। किन्तु महेन्द्र समझ गया। आशा जल्दीसे घरसे निकलकर बाहर चली गई। उसे डर लगने लगा कि कहीं उसका रोना महेन्द्रके आगे फूट न निकले। अँधेरी छतके एक कोनेमें जाकर दीवारकी तरफ मुँह करके वह अपने उमड़ते-हुए रोनेको जी-जानसे रोकती-हुई रोने लगी।

किन्तु ज्यादा देर रोनेका समय नहीं था। अचानक उसे याद उठ आई, महेन्द्रके खानेका समय हो गया है। वह जल्दीसे नीचे चली गई।

राजलक्ष्मीने आशासे पूछा, "महेन्द्र कहाँ है, बहू ?"

आशाने कहा, "ऊपर हैं।"

राजलक्ष्मीने कहा, "फिर तुम नीचे क्यों चली आईं ?"

आशाने सिर झुकाये-हुए कहा, "उनका खानेका —"

राजलक्ष्मीने कहा, "खानेका इन्तजाम मैं कर रही हूं, बहू, तुम जाओ, जरा मुँह-हाथ साफ करके ठीकसे कपड़े पहन लो। तुम्हारी वो ढाकेकी साड़ी कहाँ है, पहनकर जल्दी आओ मेरे पास, मैं तुम्हारे बाल बाँध दूँ।"

सासके लाड़की आशा उपेक्षा नहीं कर सकती, किन्तु इस साज-सज्जाके प्रस्तावसे वह मारे शरमके मर मिटी। मृत्युकी इच्छा करके भीष्मने जैसे स्तब्ध होकर वाणोंकी वर्षा सही थी, आशाने भी ठीक वैसे ही राजलक्ष्मीके द्वारा किये गये साज-शृङ्गारको परम धैर्यके साथ अङ्गीकार कर लिया।

सजधजकर आशा अत्यन्त धीरे-धीरे दबे-पाँव जीनेसे चढ़ती-हुई ऊपर पहुंची। जीनेके दरवाजेसे झाँककर देखा, महेन्द्र छतपर नहीं है। धीरे-धीरे

कमरेके दरवाजेके पास जाकर देखा, कमरेमें भी महेन्द्र नहीं है। उसकी परोसी-हुई थाली ज्यों-की-त्यों पड़ी है।

चाभीके अभावमें अलमारीका ताला तोड़कर वह कुछ जरूरी कपड़े और कालेजकी किताबें लेकर चला गया है।

दूसरे दिन एकादशी थी। अस्वस्थ और क्लिष्ट शरीर लिये राजलक्ष्मी बिस्तरपर पड़ी थीं। बाहर बादल हो रहे थे, और आँधीके-से आसार दिखाई दे रहे थे। आशाने धीरे-धीरे कमरेमें प्रवेश किया; और धीरेसे सासके पैरोंके पास बैठकर उनके तलवोंपर हाथ फेरती-हुई कहने लगी, "तुम्हारे लिए दूध और फल लाई हूं, मा, उठके खा लो।"

करुण-मूर्ति पुत्रवधूकी इस अनभ्यस्त सेवाकी चेष्टाको देखकर राजलक्ष्मीकी सूखी आँखोंमें आँसुओंकी बाढ़-सी आ गई। वे उठके बैठ गईं, और आशाको गोदके पास बिठाकर उन्होंने उसके आँसुओंसे भीगे-हुए कपोल चूम लिये; और पूछा, "महेन्द्र क्या कर रहा है, बहू?"

आशा अत्यन्त लज्जित हो उठी, धीरेसे बोली, "वे चले गये।"

राजलक्ष्मीने कहा, "कब चला गया, मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं पड़ा!"

आशाने सिर झुकाये-हुए कहा, "वे तो कल रातको ही चले गये थे।"

सुनते ही राजलक्ष्मीकी मानो सारी कोमलता ही जाती रही। बहूके प्रति उनके लाड़-प्यारके स्पर्शमें रसका लेशमात्र न रहा। आशा उस नीरव लांछनाका अनुभव करके सिर नीचा करके चुपचाप वहाँसे चली गई।

४०

पहली रातको महेन्द्र जब विनोदिनीको पटलडाँगाके मकानमें छोड़कर अपने कपड़े वगैरह लेने घर गया था, विनोदिनी तब कलकत्तेके विश्राम-हीन जन-तरङ्गके कोलाहलमें अकेली बैठी-हुई अपने विषयमें विचार कर रही थी। संसारमें उसका आश्रय-स्थल किसी भी समय काफी विस्तृत नहीं था, फिर भी, उसके लिए एक करवट गरम हो उठनेपर दूसरे करवट सोनेकी जरा-सी जगह

थी। किन्तु आज उसका आश्रय-स्थान अत्यन्त सङ्कीर्ण हो गया है। आज वह जिस नावपर बैठी बहावमें बह रही है वह नाव इतनी हलकी और इतनी छोटी है कि जरा भी दाहने-बायें झुकते ही उसका डूबना निश्चित है; इसलिए, उसे इस नावकी पतवार बड़ी स्थिरता और सावधानीसे पकड़े रहना चाहिए। जरा-सी गलती होते ही, जरा-सा हिलते-डुलते ही उसी क्षण वह अथाह पानीमें जा गिरेगी। इस अवस्थामें किस रमणीका हृदय नहीं काँपेगा? पराये मनको पूरी तरह वशमें रखनेके लिए जितने छल-बल और हाव-भावकी जरूरत है, इस सङ्कीर्णतामें उतनेके लिए अवकाश कहाँ है? एकदम महेन्द्रके मुकाबिलेमें रहकर उसे सारा जीवन बितानेके लिए तैयार रहना होगा। दोनोंमें भेद सिर्फ इतना ही है कि महेन्द्रके पास किनारे लगनेका उपाय है, और विनोदिनीके पास कुछ भी नहीं है।

विनोदिनी अपनी इस असहाय अवस्थाको जितना ही स्पष्ट-रूपसे समझने लगी उतना ही वह अपने मनमें बल-सञ्चय करने लगी। कोई-न-कोई उपाय तो उसे करना ही पड़ेगा, इस तरह वह कैसे रह सकती है?

जिस दिनसे विनोदिनीने बिहारीके आगे अपना प्रेम प्रकट किया है उसी दिनसे उसके धैर्यका बाँध टूट गया है। जिस उद्यत-चुम्बनको वह बिहारीके मुंहके आगेसे लौटा लाई है, उसे, संसारमें और-कहीं भी उससे उतारकर रखते नहीं बन रहा है, उसे वह पूजाके अर्घ्यके समान देवताके लिए अहोरात्र वहन करती ही फिर रही है। अब विनोदिनीका मन किसी भी अवस्थामें एकदम पतवार छोड़ना नहीं जानता,– निराशाको वह स्वीकार ही नहीं करता। उसका मन प्राणोंकी बाजी लगाकर बार-बार यही कह रहा है, 'मेरी यह पूजा बिहारीको स्वीकार करनी ही पड़ेगी।"

विनोदिनीके इस दुर्दमनीय प्रेमके साथ उसकी आत्म-रक्षाकी एकान्त आकांक्षा भी शामिल हो गई। बिहारीके सिवा उसके लिए और-कोई उपाय ही नहीं। महेन्द्रको उसने खूब अच्छी तरह पहचान लिया है। उसपर निर्भर करनेसे वह भार नहीं ढो सकता,– उसे छोड़ देनेसे वह मिल सकता है और पकड़ रखनेकी कोशिश करनेसे वह भाग जाता है। किन्तु नारीके लिए

जिस निश्चिन्त विश्वस्त और निरापद आश्रयकी एकान्त आवश्यकता है, बिहारी उसे दे सकता है। अब बिहारीको छोड़ देनेसे विनोदिनीका बिलकुल ही काम नहीं चल सकता।

गाँवसे आते वक्त विनोदिनीने महेन्द्रसे कहकर स्टेशनसे लगे-हुए डाकघरमें सूचना दिलवा दी थी कि उसके नामकी चिट्ठी-पत्री आवे तो कलकत्तेके नये पतेपर भेज दी जाया करे। बिहारी उसके पत्रका बिलकुल उत्तर ही न देगा, ऐसा विनोदिनी नहीं समझती थी। उसने अपने मनमें कहा, 'मैं सात दिन तक धीरज धरके चिट्ठीकी प्रतीक्षा करूंगी, उसके बाद जैसा होगा देखा जायगा।' इतना कहकर वह अँधेरेमें खिड़की खोलकर गैस-बत्तीसे आलोकित कलकत्तेकी ओर अन्यमनस्क दृष्टिसे देखती रही।

आजके इस सन्ध्याकालमें बिहारी इसी शहरमें है,— यहाँसे दो-एक सड़क और दो-चार गलियाँ पार करके अभी तुरत उसके दरवाजेके आगे पहुंचा जा सकता है। उसके बाद वही पानीके नल-वाला छोटा-सा आँगन, वही जीना, वही सुसज्जित साफ-सुथरा प्रकाश-पूर्ण एकान्त कमरा, — वहाँकी निस्तब्ध शान्तिमें बिहारी अकेला आराम-कुरसीपर बैठा होगा,— और हो सकता है कि वह ब्राह्मण बालक भी पास बैठा हो। वह सुडौल सुन्दर गौरवर्ण आयतनेत्र सरलमूर्ति बालक तस्वीरकी किताब हाथमें लिये तल्लीन होकर उसके पन्ने उलट रहा होगा। एक-एक करके सम्पूर्ण चित्र विनोदिनीकी दृष्टिके आगे नाचने लगा और स्नेहसे प्रेमसे उसका सर्वाङ्ग परिपूर्ण पुलकित हो उठा। 'अभी चाहूं तो अभी जा सकती हूं'— इस बातको सोचकर अपनी इच्छाको गोदमें लेकर छातीसे लगाकर उससे वह खूब खेलने लगी। कुछ दिन पहलेकी बात होती तो अपनी इच्छा पूरी करनेके लिए वह आगे बढ़ती, किन्तु आज बहुत-सी बातें सोचनी पड़ती हैं। अब केवल वासना चरितार्थ करना ही सब-कुछ नहीं, उद्देश्य सिद्ध करना होगा। विनोदिनी अपने मनमें कहने लगी, 'पहले देख लूँ, बिहारीका कैसा उत्तर आता है, उसके बाद तय किया जायगा कि किस रास्ते चलना ठीक होगा।' बिना कुछ समझे-बूझे बिहारीको परेशान करने जाना उसने उचित नहीं समझा, और न उसे इतना साहस ही हुआ।

इस तरह सोचते-सोचते जब रातके नौ-दस बज गये, तब धीरे-धीरे महेन्द्र आ पहुंचा। इधरके कई दिन उसने अनिद्रा और अनियमके कारण उत्तेजित अवस्थामें बताये हैं, आज कृतकार्य होकर विनोदिनीको अपने अधीन घरमें रखनेके बाद अवसाद और श्रान्तिने उसे अभिभूत कर डाला है। आज संसार और अपनी अवस्थाके साथ लड़नेका बल मानो उसमें रहा ही नहीं। उसके सम्पूर्ण भाराक्रान्त भावी जीवनकी क्लान्ति मानो आजसे ही उसपर हमला कर बैठी हो।

बन्द दरवाजेके पास खड़े होकर द्वार खटखटानेमें महेन्द्रको अत्यन्त लज्जा मालूम होने लगी। जिस उन्मत्ततामें उसने सारी पृथ्वीको कुछ नहीं समझा वह मत्तता आज कहाँ गई? आज रास्तेके अपरिचित लोगोंकी दृष्टिके सामने भी उसका सर्वाङ्ग संकुचित क्यों हो जाता है?

भीतर नया नौकर सो रहा था,— दरवाजा खुलवानेमें उसे बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। अपरिचित नये मकानमें अँधेरेमें घुसते ही महेन्द्रका मन दहल गया। माका लाड़ला बेटा महेन्द्र हमेशासे विलास-उपकरणोंमें पला था। आज इस नये मकानके नये आयोजनमें उन बहुमूल्य उपकरणोंका अभाव उस सन्ध्याके अन्धकारमें अत्यन्त परिस्फुट हो उठा। इन सब कमियोंकी उसे स्वयं पूर्ति करनी होगी, क्योंकि इसका भार एकमात्र उसीपर है। महेन्द्रने आज तक कभी भी अपने या पराये आरामके लिए चिन्ता नहीं की। किन्तु आजसे एक नव-गठित असम्पूर्ण गृहस्थीका सब-कुछ उसीको करना पड़ेगा।

जीनेके आलेमें एक मिट्टीके तेलकी ढिबरी उजालेकी जगह सिर्फ जोरसे धुआँ उगल रही थी। उसे देखते ही महेन्द्र सोचने लगा, 'कल ही लालटेन वगैरहका इन्तजाम करना है।' आँगन पार करके जीने तकका रास्ता नलके पानीसे गन्दा हो रहा था। महेन्द्रने मन-ही-मन कहा, 'कल ही राज बुलाकर आँगन ठीक कराना है।' नीचे सड़ककी तरफके दो कमरोंमें जूतेके दूकानदार रह रहे थे, उन्होंने अभी कमरे खाली नहीं किये,— इसके लिए मकान-मालिकसे लड़ना पड़ेगा। ये-सब काम महेन्द्रको खुद ही करने पड़ेंगे। यह सोचते-हुए उसका मन श्रान्तिके बोझसे व्यथित हो उठा।

महेन्द्रने जीनेके पास कुछ देर खड़े रहकर अपनेको सम्हाल लिया, और विनोदिनीसे उसका जो प्रेम था उसे उत्तेजित कर लिया। उसने अपनेको समझाया कि इतने दिन सारे संसारको भूलकर उसने जिसे चाहा था, आज वह उसे मिल गई है, आज दोनोंके बीच कोई बाधा नहीं रही,— आज उसके लिए आनन्दका दिन है। किन्तु 'कोई भी बाधा नहीं'— यही तो सबसे बड़ी बाधा है, आज महेन्द्र आप ही अपनी बाधा बन गया है।

विनोदिनीने महेन्द्रको सड़कसे आते-हुए ही देख लिया था। देखते ही अपने ध्यानासनसे उठकर उसने कमरेकी बत्ती जला दी; और एक कसीदा हाथमें लेकर सिर झुकाये उसे काढ़ने लगी। यह कसीदा काढ़ना विनोदिनीके लिए एक आवरण है, इसके अन्तरालमें मानो उसका कोई आश्रय हो।

महेन्द्रने कमरेमें घुसते-हुए कहा, "विनोद, यहाँ तुम्हें दिक्कत तो जरूर हो रही होगी?"

विनोदिनीने कसीदा काढ़ते-हुए ही कहा, "नहीं तो, कोई दिक्कत नहीं।"

महेन्द्रने कहा, "दो-ही-चार दिनमें मैं पूरा असवाब और जरूरी चीज-बस्त ले जाऊँगा,— तब तकके लिए तुम्हें और भी जरा तकलीफ उठानी पड़ेगी।"

विनोदिनीने कहा, "नहीं, ऐसा तुम हरगिज नहीं कर सकते,— अब तुम्हें यहाँ कुछ भी लानेकी जरूरत नहीं। जो है यहाँ, वही मेरे लिए जरूरतसे बहुत ज्यादा है।"

महेन्द्रने कहा, "अभागा मैं भी क्या उस 'जरूरतसे ज्यादा'में शामिल हूं?"

विनोदिनी बोली, "अपनेको इतना 'ज्यादा' नहीं समझना चाहिए,— जरा विनय रखना अच्छा है।"

इस निर्जन दीपालोकमें कार्य-रत नत-मस्तक विनोदिनीकी आत्म-समाहित मूर्ति देखकर महेन्द्रके मनमें क्षणमें फिर पहले-जैसा मोहका सञ्चार हो उठा।

अपना घर होता तो महेन्द्र विनोदिनीके पैरोंके पास जा पड़ता,— किन्तु यह तो उसका घर नहीं, इसलिए उससे ऐसा करते नहीं बना। विनोदिनी आज असहाय है, एकान्त-रूपसे वह महेन्द्रकी मुट्ठीमें है,— आज अपनेको संयत न रखना महेन्द्रके लिए बड़ी लज्जा और कायरताकी बात होगी।

विनोदिनीने कहा, "यहाँ तुम अपने कपड़े-लत्ते और कालेजकी किताबें क्यों ले आये ?"

महेन्द्रने कहा, "इन्हें जो मैं अपनी जरूरी चीजोंमें समझता हूं। ये 'जरूरतसे ज्यादा'वाली चीजोंमें नहीं हैं।"

विनोदिनीने कहा, "मुझे मालूम है,– पर यहाँ ये-सब क्यों ?"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारी बात तो ठीक है,– यहाँ कोई जरूरी चीज शोभा नहीं दे सकती। किन्तु, विनोद, किताबें भले ही तुम उठाकर फेंक देना,– मैं आपत्ति नहीं करूंगा,– पर उनके साथ मुझे भी मत फेंक देना !" यह कहते हुए उसने जरा आगे बढ़कर अपनी किताबोंका वण्डल विनोदिनीके पैरोंके पास रख दिया।

विनोदिनीने बिना मुँह उठाये ही गम्भीरताके साथ कसीदा काढ़ते-हुए कहा, "लालाजी, यहाँ तुम्हारा रहना नहीं हो सकता।"

महेन्द्र अपने तुरत-जगे-हुए आग्रहके मुँहपर तमाचा-सा खाकर व्याकुल हो उठा, गद्‌गद कण्ठसे बोला, "क्यों, विनोद, क्यों तुम मुझे दूर रखना चाहती हो ? तुम्हारे लिए सर्वस्व त्यागनेके बाद क्या मुझे यही मिलेगा ?"

विनोदिनीने कहा, "मैं अपने लिए तुम्हें सर्वस्व नहीं त्यागने दूंगी।"

महेन्द्र कह उठा, "अब यह तुम्हारे हाथमें नहीं रहा। सारा संसार मेरे चारों तरफसे स्खलित हो चुका है, केवल तुम्हीं अकेली बची-हुई हो, विनोद ! विनोद ! विनोद !" – कहते-कहते वह जमीनपर औंधा लोट गया ; और अत्यन्त विह्वलताके साथ विनोदिनीसे पैरोंसे लिपटकर उसके पद-पल्लवोंका बारम्बार चुम्बन करने लगा।

विनोदिनी अपने पाँव छुड़ाकर उठके खड़ी हो गई ; बोली, "महेन्द्र, तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी, याद है ?"

अपनी सम्पूर्ण शक्तिका प्रयोग करके महेन्द्रने अपनेको सम्हाल लिया और कहा, "याद है। प्रतिज्ञा की थी कि जैसी तुम्हारी इच्छा होगी, मैं वैसा ही करूँगा। मैं कभी भी तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कोई काम न करूँगा। अपनी उस प्रतिज्ञाकी मैं रक्षा करूँगा, विनोद ! मुझे क्या करना होगा, बताओ ?"

विनोदिनीने कहा, "तुम्हें अपने घर जाकर रहना पड़ेगा।"

महेन्द्रने कहा, "तो क्या मैं ही एकमात्र तुम्हारी अनिच्छाका शिकार हूं, विनोद ? अगर यही बात थी, तो तुम मुझे इस तरह क्यों खींच लाईं ? जो तुम्हारे भोगकी वस्तु नहीं, उसका शिकार करनेकी तुम्हें क्या जरूरत थी ? सच-सच बताओ, विनोद, मैं क्या अपनी इच्छासे तुम्हारे हाथ पकड़ाई दिया हूं, या तुमने जान-बूझकर अपनी इच्छासे मुझे पकड़ा है ? मुझे तुम अपनी खुशीका खिलौना बनाकर इस तरह खेल खेलती रहोगी, यह भी क्या मुझे सहना पड़ेगा ? – फिर भी, मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करता रहूंगा। जिस घरमें मैंने अपने स्थानको पदाघातसे नष्ट कर दिया है, मैं उसी घरमें जाकर रहूंगा।"

विनोदिनी जमीनपर बैठकर फिर अपना कसीदा काढ़ने लगी।

महेन्द्र कुछ देर तक स्थिर दृष्टिसे विनोदिनीके मुँहकी तरफ देखता रहा, फिर कहने लगा, "निष्ठुर हो, विनोद, तुम निष्ठुर हो ! मैं बड़ा ही अभागा हूं, जो तुमसे प्यार कर बैठा।"

विनोदिनी कसीदेकी इच्छाकृत गलती सुधारनेके लिए बत्तीके पास जाकर बड़े ध्यानसे डोरा ठीक करने लगी। और महेन्द्रका जी चाहने लगा कि वह विनोदिनीके पाषाण हृदयको अपने कठिन हाथोंसे जोरसे मसलकर पीस डाले, उसकी इस नीरव निर्दयता और अविचलित उपेक्षाको प्रचण्ड आघातसे बाहुबलसे सदाके लिए परास्त कर दे।

किन्तु, महेन्द्र उस समय कमरेके बाहर चला गया; और थोड़ी देर बाद फिर भीतर आकर बोला, "मैं नहीं रहूंगा तो यहाँ अकेलेमें तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ?"

विनोदिनीने कहा, "इसके लिए तुम जरा भी मत डरो। बुआजीने खेमीको निकाल दिया है, आजसे वह यहीं काम करने लगी है। भीतरसे दरवाजा बन्द करके हम दोनों स्त्रियाँ यहाँ बेखटके रहा करेंगी।"

महेन्द्रको भीतर-ही-भीतर जितना ही गुस्सा आने लगा उतना ही विनोदिनीके प्रति उसका आकर्षण बढ़ता गया। उसकी इच्छा होने लगी, इस अटल मूर्तिको

वह वज्र-बलसे छातीसे चिपटाकर क्लिष्ट-पिष्ट कर डाले। और इस निदारुण इच्छासे बच निकलनेके लिए वह जल्दीसे दौड़कर बाहर चला गया।

रास्तेमें घूमते-घूमते महेन्द्र प्रतिज्ञा करने लगा, विनोदिनीकी इस उपेक्षाके बदले वह भी उसके प्रति उपेक्षा ही दिखायेगा। जिस अवस्थामें इस विश्व-जगतमें विनोदिनीका एकमात्र भरोसा महेन्द्र है, उस अवस्थामें भी महेन्द्रकी ऐसी नीरव और निर्भय, ऐसी सुदृढ़ और सुस्पष्ट उपेक्षा ! ऐसा प्रत्याख्यान ! इतना बड़ा अपमान क्या कभी किसी पुरुषके भाग्यमें बदा था ? महेन्द्रका गर्व चूर-चूर हो गया, किन्तु किसी भी तरह मरा नहीं, वह बार-बार पीड़ित और दलित होने लगा। महेन्द्र अपने-आपसे कहने लगा, 'मैं क्या इतना अपदार्थ हूं, इतना तुच्छ हूं ! मेरे साथ ऐसी स्पर्धाका व्यवहार करनेका उसे साहस कैसे हुआ ? मेरे सिवा अब उसका और है ही कौन ?

सोचते-सोचते सहसा खयाल आया, बिहारी है ! क्षण-भरके लिए सहसा उसके हृत्पिण्डका सारा रक्त-प्रवाह मानो स्तब्ध हो गया। 'बिहारीके बूतेपर ही विनोदिनी उसे अपने खेलका खिलौना बनाये-हुए है !' वह सोचने लगा, 'मैं तो उसका सिर्फ उपलक्ष-मात्र हूं, कदम रखकर चढ़नेका सोपान हूं, कदम-कदमपर पदाघात करनेका स्थान हूं, बस, और कुछ नहीं। बिहारीके बूतेपर ही आज वह इतनी इठला रही है, उसीके भरोसे आज वह मेरी इतनी अवज्ञा करनेकी हिम्मत कर रही है।' महेन्द्रको सन्देह होने लगा कि बिहारीके साथ विनोदिनीका जरूर पत्र-व्यवहार चल रहा है, और विनोदिनीको जरूर उसकी तरफसे कुछ-न-कुछ आश्वासन मिला है।'

तब फिर महेन्द्र धीरे-धीरे बिहारीके घरकी तरफ चल दिया। जब उसने बिहारीके घर जाकर दरवाजा खटखटाया, तब ऐसी-कुछ ज्यादा रात नहीं हुई थी। कई बार कड़ा खटखटानेके बाद नौकरने भीतरसे दरवाजा खोल दिया, और कहा, "बाबू सा'ब तो यहाँ हैं नहीं।"

महेन्द्र चौंक पड़ा। सोचने लगा, 'मैं बेवकूफोंकी तरह जब कि सड़कोंकी धूल फाँकता फिर रहा हूं, बिहारी तब विनोदिनीके पास जाकर प्रेमालाप कर रहा होगा ? इसीसे विनोदिनीने ऐसी रातमें इस तरह निर्दयताके साथ मेरा

अपमान किया है। और, मैं भी ऐसा कि खदेड़े-हुए गधेकी तरह वहांसे भाग खड़ा हुआ !'

महेन्द्रने बिहारीके पुराने और परिचित नौकरसे पूछा, "भज्जू, बाबू कब गये हैं बाहर ?"

भज्जूने कहा, "उन्हें तो गये आज चार-पाँच दिन हो गये, बाबू सा'ब ! पछाँहकी तरफ कहीं हवा बदलने गये हैं।"

सुनकर महेन्द्रके जीमें जी आ गया। उसने सोचा, 'अब यहीं पड़कर सो रहूं,- रात-भर कहाँ घूमता फिरूँगा !' इसके बाद वह ऊपर जाकर बिहारीके कमरेमें कोचपर पड़ रहा, और पड़ते ही उसे नींद आ गई।

महेन्द्रने जिस रातको बिहारीके घर आकर उपद्रव मचाया था, उसके दूसरे ही दिन बिहारी यह तय किये बगैर ही कि कहाँ जाना है, पश्चिमकी तरफ रवाना हो गया था। उसने सोचा कि यहाँ रहनेसे मित्रके साथ किसी दिन उसका संघर्ष ऐसा वीभत्स हो उठेगा कि फिर वह जीवन-भरके लिए अनुतापका कारण बन जायगा। इसलिए वह कलकत्ता छोड़कर चला ही गया।

दूसरे दिन महेन्द्रकी जब आँख खुली तब दिनके ग्यारह बज चुके थे। उठते ही सामनेकी तिपाईपर उसकी नजर पड़ी। देखा कि विनोदिनीके हाथका लिखा बिहारीके नामका एक लिफाफा पत्थरके 'पेपर-वेट'के नीचे दबा रखा है। चटसे उसने लिफाफा उठा लिया। देखा कि अब तक वह खोला नहीं गया है,- प्रवासी बिहारीके लिए वह तिपाईपर पड़ा इन्तजार कर रहा था। काँपते-हुए हाथोंसे महेन्द्र जल्दीसे उसे खोलकर पढ़ने लगा। यही चिट्ठी विनोदिनीने अपने गाँवसे बिहारीको लिखी थी, और अभी तक इसका उसे कोई जवाब नहीं मिला था।

चिट्ठीका प्रत्येक अक्षर महेन्द्रको बिच्छूकी तरह डंक मारने लगा। बचपनसे बिहारी महेन्द्रके अन्तरालमें ही पड़ा था। संसारमें स्नेह-प्रेमके नामपर महेन्द्र देवताका सूखा निर्माल्य ही अब तक उसके भाग्यमें बदा था। आज महेन्द्र स्वयं प्रार्थी है और बिहारी है विमुख, फिर भी महेन्द्रको ढकेलकर विनोदिनीने इस अरसिक बिहारीको ही वरण कर लिया ! महेन्द्रकी भी विनोदिनीकी दो-चार

चिट्ठियाँ मिली हैं, किन्तु बिहारीकी इस चिट्ठीके आगे वे नितान्त कृत्रिम है सिर्फ बेवकूफको बहलानेकी कोरी छलना है, और कुछ नहीं।

फिर उसे विनोदिनीकी उस व्यग्रताकी याद उठ आई जो उसने गाँवसे चलते वक्त डाकखानेको अपने नये पतेकी सूचना दिलानेके लिए प्रकट की थी। और तब उसके कारणका भी उसे पता लग गया। विनोदिनी आज अपने सम्पूर्ण प्राण-मनसे प्रतिक्षण बिहारीके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रही है।

पूर्व-प्रथाके अनुसार मालिककी अनुपस्थितिमें भी भज्जू नौकरने महेन्द्रके लिए चाय बनाई और बाजारसे जलपान ले आया। महेन्द्र नहाना-निबटना भूल गया। गरम बालूपर पथिक जैसे जल्दी-जल्दी कदम रखता-हुआ चलता है, महेन्द्र उसी तरह क्षण-क्षणमें विनोदिनीकी ज्वालामय चिट्ठीपर जल्दी-जल्दी आँखें फेरने लगा। मन-ही-मन वह प्रतिज्ञा करने लगा, विनोदिनीसे अब वह बिलकुल ही नहीं मिलेगा। किन्तु उसे ऐसा लगने लगा कि और दो एक दिन विनोदिनीको बिहारीकी चिट्ठी नहीं मिली तो वह जरूर यहाँ आकर पता लगानेकी कोशिश करेगी, और तब सब हाल जानकर सन्तोष कर लेगी। इस सम्भावनासे महेन्द्रका मन बेचैन हो उठा।

महेन्द्रने चिट्ठी जेबमें रख ली ; और शामसे कुछ पहले वह पटलडाँगाके मकानमें उपस्थित हुआ।

महेन्द्रकी मलिन दशा देखकर विनोदिनीको दया आ गई। वह समझ गई कि महेन्द्र कल रातको घर न जाकर रात-भर शायद इधर-उधर फिरता रहा है। उसने पूछा, "कल रातको घर नहीं गये थे क्या ?"

महेन्द्रने कहा, "नहीं।"

विनोदिनीने व्यस्तताके साथ कहा, "अब तक कुछ खाया-पीया भी नहीं क्या ?" इतना कहते-हुए सेवा-परायणा विनोदिनी उसी क्षण भोजनका प्रबन्ध करनेको तैयार हो गई।

महेन्द्रने कहा, "रहने दो, मैं खा आया हूं।"

विनोदिनीने पूछा, "कहाँ खा आये ?"

महेन्द्रने कहा, "बिहारीके घर।"

क्षण-भरके लिए विनोदिनीका चेहरा पीला पड़ गया। क्षण-भर निरुत्तर रहकर अपनेको सम्हालते-हुए उसने पूछा, "बिहारी-लालाजी अच्छे तो हैं?"

महेन्द्रने कहा, "हाँ, अच्छा ही है। पछाँहकी तरफ हवा बदलने चला गया है।"

महेन्द्रने यह बात ऐसे कही, जैसे बिहारी आज ही रवाना हुआ हो।

विनोदिनीका चेहरा और एक बार पीला पड़ गया। और फिर उसने अपनेको सम्हालते-हुए कहा, "ऐसे चञ्चल आदमी मैंने बहुत कम देखे हैं। हमारी सब बातें उन्हें मालूम हो गईं मालूम होता है। बहुत नाराज थे क्या?"

महेन्द्रने कहा, "नहीं-तो ऐसी असह्य गरमीमें क्या शौकसे कोई पश्चिम घूमने जाता है!"

विनोदिनीने कहा, "मेरे विषयमें कुछ कह रहे थे क्या?"

महेन्द्रने कहा, "कहनेको क्या था! यह लो, बिहारीकी चिट्ठी।"

इतना कहकर विनोदिनीके हाथमें चिट्ठी देकर महेन्द्र तीव्र दृष्टिसे उसके चेहरेका भाव देखने लगा।

विनोदिनीने जल्दीसे चिट्ठी ले ली। खुली-हुई चिट्ठी थी, और लिफाफेपर उसीके हाथका बिहारीका पता लिखा-हुआ था। उसने लिफाफेमेंसे चिट्ठी निकाल कर देखी, उसीकी लिखी-हुई चिट्ठी है। उलट-पुलटकर देखने लगी, किन्तु कहीं भी बिहारीके हाथका लिखा-हुआ कोई जवाब उसे नहीं दिखाई दिया।

थोड़ी देर चुप रहकर विनोदिनीने महेन्द्रसे पूछा, "यह चिट्ठी तुमने पढ़ ली है?"

विनोदिनीके चेहरेका भाव देखकर महेन्द्रके मनमें भयका सञ्चार हुआ। वह चटसे झूठ कह बैठा, "नहीं।"

विनोदिनीने चिट्ठीके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, और फिर उन टुकड़ोंको भी रत्ती-रत्ती फाड़कर खिड़कीसे नीचे फेंक दिया।

महेन्द्र बोला, "मैं घर जा रहा हूं।"

विनोदिनीने उसकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया।

महेन्द्रने कहा, "तुम जैसा चाहती थीं, मैं वैसा ही करूंगा। सात दिन मैं अपने घर ही में रहूंगा। कालेज जाते वक्त रोज एक बार यहाँकी देखभाल करके खेमीको समझा जाया करूँगा। तुमसे मिलकर मैं तुम्हें अब परेशान न करूँगा।"

विनोदिनीको महेन्द्रकी कोई बात सुनाई दी या नहीं, कौन जाने! किन्तु उसने कुछ जवाब नहीं दिया, वह खुली-हुई खिड़कीके बाहर अँधेरे आकाशकी ओर देखती रही।

महेन्द्र अपना सामान लेकर चलता बना।

विनोदिनी सूने कमरेमें बहुत देर तक जड़-सी बैठी रही। और अन्तमें अपनेको मानो जी-जानसे सचेतन करनेके लिए छातीकी चोली फाड़कर अपने आपको निष्ठुरताके साथ पीटने लगी।

आवाज सुनकर खेमी दौड़ी आई और बोली, "बहूजी, यह कर क्या रही हो!"

"तू जा यहाँसे!"—कहकर गरजते-हुए विनोदिनीने खेमीको कमरेसे बाहर निकाल दिया। उसके बाद, जोरसे किवाड़ बन्द करके, दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर, जमीनपर लोटकर वह वाणाहत जन्तुकी तरह आर्तस्वरमें रोने लगी। इस तरह विनोदिनी अपनेको क्षत-विक्षत करके मुक्त वातायतके नीचे सारी रात मूर्च्छित-सी पड़ी रही।

सवेरे कमरेमें सूर्यालोक प्रवेश करते ही सहसा उसे सन्देह हुआ, बिहारी अगर न गया हो? महेन्द्रने अगर उसे भरमानेके लिए झूठ कहा हो? उसी क्षण उसने खेमीको बुलाकर कहा, "खेमी, तू अभी जा,—बिहारी-लालाजीके घर जाकर पता लगाकर आ कि वे कहाँ हैं?"

खेमीने घण्टे-भर बाद वापस आकर कहा, "बिहारी-बाबूके घरके तो सब दरवाजे-जंगले बन्द थे। दरवाजा खटखटानेपर नौकरने भीतरसे कहा, बाबू घरमें नहीं हैं, पश्चिमकी तरफ घूमने गये हैं।"

विनोदिनीके मनका सन्देह दूर हो गया।

४१

महेन्द्र रातको ही उठकर चला गया, यह सुनकर राजलक्ष्मी बहूपर बहुत नाराज हुईं। उन्होंने समझा, आशाकी बेवकूफीसे ही महेन्द्र चला गया है।

राजलक्ष्मी आशासे पूछा, "महेन्द्र कल रातको चला क्यों गया ?"

आशाने कहा, "मुझे कुछ नहीं मालूम, मा!"

राजलक्ष्मीने सोचा, यह भी अभिमानकी बात है। उन्होंने नाराजीके साथ कहा, "तुम्हें क्यों मालूम होने लगा! उससे कुछ कहा था तुमने ?"

आशा सिर्फ "नहीं" कहकर चुप रह गई।

राजलक्ष्मीको विश्वास नहीं हुआ। 'भला, यह भी कभी सम्भव हो सकता है ?' उन्होंने पूछा, "कल वो कब गया था ?"

आशाने संकुचित होकर कहा, "मालूम नहीं।"

राजलक्ष्मी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठीं, बोलीं, "तुम्हें कुच्छ भी नहीं मालूम! नन्हीं-सी बच्ची हो न! सब तुम्हारी ही करामात है!"

राजलक्ष्मीने तीव्र स्वरमें यह भी जाहिर कर दिया कि आशाके ही आचरण और स्वभावके दोषसे महेन्द्र घर छोड़कर चला गया है। आशाने सिर झुकाये सासकी डाट-फटकार सह ली, और फिर वह अपने कमरेमें जाकर रोने लगी। वह मन-ही-मन कहने लगी, 'मालूम नहीं, क्यों तो एक दिन उन्होंने मुझसे इतना प्रेम किया था, और आज वे क्यों मुझसे ऐसे विमुख हो गये! अब कैसे उनका प्यार मुझे वापस मिलेगा, सो भी मैं नहीं जानती।' जो आदमी प्रेम करता है, उसे कैसे खुश किया जाता है, यह बात हृदय अपने-आप ही बता देता है, किन्तु जो प्यार नहीं करता, उसके मनको कैसे जीता जाता है, आशा इस रहस्यका क्या जाने! जो आदमी और-किसीसे प्यार करता हो, उससे लाड़-प्यार वसूल करनेकी चेष्टा करना विड़म्बना-मात्र है, इससे बढ़कर लज्जाकी बात और कुछ हो ही नहीं सकती। आशासे भला यह कैसे हो सकता है ?

शामका वक्त है। ज्योतिषीजी और उनकी बहन घरपर आई-हुई हैं। राजलक्ष्मीने लड़केके ग्रहोंकी शान्तिके लिए इन्हें बुलवा भेजा था। राजलक्ष्मीने

बहूकी जन्मपत्री और हाथ देखनेके लिए ज्योतिषीजीसे अनुरोध किया ; और इसके लिए उन्होंने आशाको भी बुला लिया। दूसरोंके समक्ष अपने दुर्भाग्यकी आलोचनाके सङ्कोचसे अत्यन्त कुण्ठित होकर आशा किसी तरह अपना हाथ निकालकर बैठी ही थी कि इतनेमें राजलक्ष्मीको अपने कमरेके सामनेवाले दीप-हीन बरामदेमें किसीके जूतेकी दबी-हुई आवाज सुनाई दी ; मानो कोई दबे-पाँव भीतर चला जा रहा हो। राजलक्ष्मीने पुकारा, "कौन है ?"

कुछ जवाब नहीं मिला तो उन्होंने फिर पुकारा, "कौन जा रहा है ?"

इतनेमें चुपकेसे महेन्द्र आ पहुँचा।

आशा खुश क्या होती,—महेन्द्रकी लज्जा देखकर लज्जासे उसका हृदय भर आया। महेन्द्रको अब अपने घरमें भी चोरकी तरह आना पड़ता है! खासकर ज्योतिषीजीकी बहनकी उपस्थितिसे उसकी लज्जा और भी बढ़ गई। सारे संसारके आगे अपने पतिके लिए जो लज्जा थी, उसका दुःख आशाके अपने दुःखसे भी ज्यादा बढ़ गया।

राजलक्ष्मीने जब धीरेसे कहा, "बहू, पार्वतीसे कह दो, महेनकी थाली ले आवे।"—तब आशासे रहा न गया, उसने कहा, "मैं लिये आती हूं।" घरके दास-दासियोंकी दृष्टिसे भी वह अपने पतिको बचाये रखना चाहती है।

इधर ज्योतिषी और उनकी बहनको देखकर महेन्द्र भीतर ही भीतर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसकी मा और स्त्री दैवकी सहायतासे उसे वश करनेके लिए इन अशिक्षित मूढ़ोंके साथ बैठीं निर्लज्ज-भावसे षड्यन्त्र कर रही हैं, यह महेन्द्रके लिए असह्य हो उठा। इसपर जब ज्योतिषीकी बहनने अत्यन्त मुलायम स्वरमें महेन्द्रसे पूछा, "अच्छे तो हो, बेटा ?" तब फिर महेन्द्रके लिए वहाँ ठहरना ही मुश्किल हो गया ; कुशल-प्रश्नका कुछ उत्तर न देकर उसने मासे कहा, "मा, मैं जरा ऊपर जा रहा हूं।"

माने सोचा, महेन्द्र शायद अपने कमरेमें जाकर एकान्तमें बहूसे बातचीत करना चाहता है। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर जल्दीसे रसोईमें जाकर बहूसे कहा, "जाओ, जाओ, तुम जल्दीसे जरा ऊपर चली जाओ, महेन्द्र ऊपर गया है, शायद उसे कोई जरूरी काम है।"

आशा काँपते-हुए हृदयसे अत्यन्त संकोचसे पैर रखती-हुई ऊपर चली गई। सासकी बातसे उसने यही समझा था कि शायद महेन्द्रने उसे बुलाया है। किन्तु कमरेके भीतर सहसा उससे घुसा नहीं गया। घुसनेके पहले वह अँधेरेमें दरवाजेकी ओटमें खड़ी-खड़ी महेन्द्रको देखने लगी।

महेन्द्र तब अत्यन्त शून्य-हृदयसे नीचेके गद्देपर तकियेके सहारे लेटा-हुआ छतकी कड़ियोंका निरीक्षण कर रहा था। वही महेन्द्र है, वही सब-कुछ, किन्तु कैसा परिवर्तन है! इस छोटेसे शयनागारको एक दिन महेन्द्रने स्वर्ग बना दिया था। फिर आज क्यों वह उस आनन्द-स्मृतिसे पवित्र स्थानको इस तरह अपमानित कर रहा है? 'आज यहाँ यदि तुम्हें इतना कष्ट हो रहा है, इतना क्रोध आ रहा है, इतना चित्त चञ्चल हो रहा है, तो इस बिस्तरपर अब तुम्हें नहीं बैठना चाहिए, महेन्द्र! यहाँ आकर भी यदि तुम्हें पहलेकी वे परिपूर्ण गभीर रातें, वे सुनिविड़ मध्याह्न, वे आत्म-विस्मृत कर्म-विस्मृत घनवर्षाके दिन, दक्षिण-वायुसे कम्पित वसन्तकी वे विह्वल सन्ध्याएँ, वे अनन्त असीम असंख्य अनिर्वचनीय बातें याद न आवें, तो इस घरमें और-भी अनेक कमरे हैं, वहाँ चले जाओ। अब इस छोटेसे शयनागारमें एक क्षणके लिए भी तुम्हारा रहना व्यर्थ है।'

आशा अँधेरेमें खड़ी-खड़ी जितना ही महेन्द्रको गौरसे देखने लगी, उतना ही उसे ऐसा लगने लगा कि महेन्द्र अभी तुरत विनोदिनीके पाससे आ रहा है, उसके शरीरमें उसी विनोदिनीका स्पर्श है, उसकी आँखोंमें उसी विनोदिनीकी मूर्ति है, उसके कानोंमें उसी विनोदिनीका कण्ठस्वर है, और उसके मनमें उसी विनोदिनीकी वासना लिपटी-हुई है। इस महेन्द्रको आशा कैसे अपनी पवित्र भक्ति दे, और कैसे एकाग्र मनसे कहे कि 'आओ मेरे अनन्यपरायण, मेरे हृदयमें आ विराजो, मेरे अटल-निष्ठ सती-प्रेमके शुभ्र शतदलपर अपने दोनों चरण रख कर मुझे धन्य कर दो!'

आशा अपनी मौसीका उपदेश, पुराणोंकी बातें, शास्त्रोंकी शिक्षा, कुछ भी न मान सकी। इस दाम्पत्य-स्वर्गसे च्युत महेन्द्रको वह अपने मनमें देवता न समझ सकी। उसने आज विनोदिनीके कलङ्क-पारावारमें अपने हृदय-देवताको

विसर्जित कर दिया, और उस प्रेमपूर्ण रात्रिके अन्धकारमें उसके कानोंमें, उसकी छातीमें, उसके मस्तिष्कमें, उसके सर्वाङ्गके रक्त-स्रोतमें, उसके चारों तरफके संसारमें, उसके आकाशके नक्षत्रोंमें, उसकी प्राचीर-वेष्टित निभृत-निर्जन छतमें और उसके शयनगृहकी परित्यक्त विरह-शय्यामें एक प्रकारकी भयानक गम्भीर व्याकुलताके साथ विसर्जनके बाजे बजने लगे।

विनोदिनीका महेन्द्र आशाके लिए मानो पर-पुरुषसे भी बढ़कर है, और ऐसा लज्जाका विषय मानो अत्यन्त अपरिचित भी नहीं हो सकता। आशासे किसी भी तरह कमरेके भीतर नहीं जाया गया।

इतनेमें, महेन्द्रकी अन्यमनस्क दृष्टि कड़ियोंसे सामनेकी दीवारपर उतर आई। उसकी दृष्टिका अनुसरण करके आशाने देखा, सामनेकी दीवारपर महेन्द्रकी तसवीरके पास ही आशाकी तसवीर लटक रही है। उसका जी चाहने लगा कि उसे वह आँचलसे ढक दे या उतारकर फेंक दे। अभ्यासवश क्यों उसपर अब तक उसकी दृष्टि नहीं पड़ी और क्यों अब तक उसे उसने उतारा नहीं, इस बातका खयाल कर-करके वह अपनेको धिक्कारने लगी। उसे ऐसा लगा, मानो महेन्द्र मन-ही-मन हँस रहा है, और उसके हृदय-आसनमें विनोदिनी की जो मूर्ति प्रतिष्ठित है वह भी मानो अपनी जुड़ी-हुई भौंहोंके भीतरसे उस तसवीरकी तरफ देख-देखकर कटाक्षसे हँस रही है।

अन्तमें रोषसे पीड़ित महेन्द्रकी दृष्टि दीवारसे भी उतर आई। आशा अपनी मूर्खता मिटानेके लिए आजकल सन्ध्याके बाद काम-काज और सासकी सेवासे छुट्टी पाते ही बहुत रात तक अकेली बैठी पढ़ा करती थी। उसकी पढ़नेकी किताबें और कापी वगैरह एक तरफ रखी-हुई थीं। सहसा महेन्द्रकी उनपर दृष्टि पड़ गई, और वह अलस-भावसे उनमेंसे एक कापी खींचकर उसे देखने लगा। आशाका ऐसा जी करने लगा कि वह चीखकर चिल्लाकर झपटकर महेन्द्रके हाथसे उसे छीन लाये। अपनी कच्ची और भद्दी लिखावटपर महेन्द्रकी हृदयहीन व्यंग-दृष्टिकी कल्पना करके उससे फिर वहाँ एक क्षण भी खड़ा नहीं रहा गया। वह बड़ी तेजीसे नीचे भाग गई। उसने अपने पैरोंकी आहट छिपानेकी भी कोशिश नहीं की।

महेन्द्रके लिए खाना बिलकुल तैयार था। राजलक्ष्मी सोच रही थीं कि महेन्द्र ऊपर बहूके साथ प्रेमालाप कर रहा होगा, और इसलिए उन्होंने भोजनकी थाली ले जाकर बीचमें रस-भङ्ग करना उचित नहीं समझा। अब आशाको नीचे आते देख उन्होंने महेन्द्रको खानेके लिए नीचे बुलवा भेजा।

महेन्द्रके नीचे जाते ही आशा दौड़ी-दौड़ी ऊपर पहुँची। उसने अपनी तसवीर उतारकर उसे तोड़-फाड़कर छतकी दीवारके ऊपरसे बाहर फेंक दिया, और अपनी किताब-कापियाँ उठाकर जल्दीसे नीचे ले आई।

भोजन करनेके बाद महेन्द्र अपने सूने कमरेमें जाकर बैठ गया। राजलक्ष्मी इधर-उधर बहूको ढूंढने लगीं, पर आसपास कहीं भी उसका पता नहीं चला। अन्तमें रसोईघरमें जाकर देखा कि वह उनके लिए दूध गरम कर रही है। इसकी कोई जरूरत नहीं थी। कारण, जो दासी राजलक्ष्मीका दूध गरम किया करती है वह उसके पास ही बैठी थी, और आशाके इस अकारण उत्साहपर वह अपत्ति प्रकट कर रही थी। अवश्य ही, विशुद्ध जलसे पूर्ति करके दूधका जितना अंश वह रोज हरण किया करती थी, उतना अंश आज मारा जानेसे वह भीतर-ही-भीतर व्याकुल हो रही थी।

राजलक्ष्मीने कहा, "यह क्या बहू, तुम यहाँ क्यों? जाओ, ऊपर जाओ।"

आशा ऊपर तो गई, पर बीचकी मंजिलमें सासके कमरेमें ही रह गई।

राजलक्ष्मी बहूके इस व्यवहारसे बहुत नाराज हो उठीं। सोचने लगीं, 'किसी तरह महेन्द्र मायाविनीके मायाजालसे निकलकर क्षण-भरके लिए घर आया भी, तो बहू इस तरह मान-अभिमान करके उसे घरसे विदा करनेके ढंग कर रही है। विनोदिनीके जालमें महेन्द्र जो फँसा है, उसमें दोष तो आशाका ही है। पुरुषोंका क्या है, वे तो खोटे रास्ते चलनेके लिए तैयार ही बैठे रहते हैं,—स्त्रियोंका कर्तव्य है कि उन्हें छल-बल और कौशलसे जैसे भी हो सीधे रास्ते चलायें।'

राजलक्ष्मीने तीव्र भर्त्सनाके स्वरमें कहा, "तुम्हारा यह क्या ढंग है, बहू! भाग्यसे पति घर आया तो अब तुम हँड़िया-सा मुँह बनाकर ठनगन दिखलाने लगीं!"

आशा अपनेको अपराधिनी समझकर अंकुशाहत-चित्तसे ऊपर चली गई और मनको दुबिधा करनेका मौका न देकर एक साँसमें सीधी अपने कमरेमें जा पहुँची।

दस बज चुके हैं। महेन्द्र चिन्तित-मुखसे पलंगके सामने खड़ा-हुआ अनावश्यक लम्बे समय तक मशहरी झाड़ रहा था। विनोदिनीके प्रति उसके मनमें तीव्र अभिमानका उदय हो रहा था। वह मन-ही-मन कह रहा था, 'विनोदिनीने क्या मुझे अपना खरीदा-हुआ गुलाम समझ रखा है, जो आशाके पास भेजनेमें उसे जरा भी दुबिधा-आशङ्का नहीं? आजसे यदि मैं आशाके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करने लगूं, तो विनोदिनी किसके सहारे इस दुनियामें खड़ी रहेगी? मैं क्या इतना ही अपदार्थ हूं कि कर्तव्य-पालनकी इच्छा करना मेरे लिए बिलकुल ही असम्भव है? विनोदिनीके आगे अन्तमें क्या मेरा यही परिचय रह जायगा? मैंने श्रद्धा भी खो दी और प्रेम भी नहीं पाया। मुझे अपमानित करनेमें उसे जरा भी दुविधा नहीं?' महेन्द्र पलंगके पास खड़ा-खड़ा प्रतिज्ञा करने लगा, विनोदिनीके इस स्पर्धाका वह प्रतिवाद करेगा, और जैसे भी हो, आशाके प्रति अपने हृदयको अनुकूल करके वह विनोदिनीके द्वारा किये-गये इस अपमानका बदला लेकर ही रहेगा।

आशाके कमरेमें प्रवेश करते ही महेन्द्रका अन्यमनस्क-भावसे मशहरी झाड़ना बन्द हो गया। 'क्या कहकर आशासे वह बात शुरू करे'—इस समस्याका हल करना उसके लिए अत्यन्त दुरूह हो उठा।

महेन्द्रने सूखी हँसी हँसते-हुए, सहसा जो बात उसकी जबानपर आई, कह डाली। उसने कहा, "तुम भी आजकल, मालूम होता है, मेरी ही तरह पढ़नेमें मशगूल हो रही हो। तुम्हारी किताबें-कापियाँ अभी जो यहाँ देखी थीं, वे कहाँ गईं?"

उसकी बात सिर्फ बेतुकी ही सुनाई दी हो, सो बात नहीं; उसने मानो आशाको थप्पड़-सा मार दिया। मूढ़आशा जो शिक्षिता होनेकी कोशिश कर रही है, यह उसकी अपनी गुप्त बात है। आशाकी धारणा थी कि यह उसके लिए बड़ी हँसीकी बात है। उसके लिए अपने इस शिक्षा-प्राप्त करनेके सङ्कल्पको

अगर किसीके भी हास्य-विद्रूपके लेशमात्र आभाससे छिपानेकी जरूरत है, तो वह विशेष-रूपसे महेन्द्रसे ही। उसी महेन्द्रने जब इतने दिन बाद अपने प्रथम सम्भाषणमें हँसते-हुए उसी बातकी अवतारणा की तब निष्ठुर-वेत्राहत शिशुकी कोमल देहकी तरह आशाका सम्पूर्ण मन संकुचित और व्यथित हो उठा। वह कुछ जवाब न देकर मुँह फेरकर तिपाईसे लगके खड़ी हो गई।

महेन्द्र भी मुँहसे बात निकलते ही समझ गया था कि उसकी बात ठीक सङ्गत और समयोपयोगी नहीं हुई,– किन्तु वर्तमान अवस्थामें उपयोगी बात क्या हो सकती है, यह भी उससे तय करते नहीं बना। बीचमें इतनी बड़ी क्रान्ति हो चुकनेके बाद पहलेकी तरह कोई भी सहज-स्वाभाविक बात ठीक नहीं सुनाई दे सकती थी; और फिर अभी हृदय भी बिलकुल गूंगा बना-हुआ है, कोई बात कहनेके लिए तैयार ही नहीं। महेन्द्र सोचने लगा, 'मशहरीके भीतर घुस जानेसे पलंगके निभृत वेष्टनमें शायद उसके लिए बात करना सहज हो जायगा।' यह सोचकर महेन्द्र फिर अपनी धोतीकी लाँगसे मशहरीका नीचेका हिस्सा झाड़ने लगा। नया अभिनेता जैसे रङ्गमञ्चपर प्रवेश करनेके पहले उत्कण्ठाके साथ नेपथ्य-द्वारपर खड़ा-खड़ा अपने अभिनेतव्य विषयको बार-बार मन-ही-मन दुहराता रहता है, महेन्द्र भी वैसे ही मशहरीके सामने खड़ा-खड़ा मन-ही-मन अपने वक्तव्य और कर्तव्यकी आलोचना करने लगा।

इतनेमें, एक बहुत हलका-सा शब्द सुनाकर महेन्द्रने मुँह फेरकर देखा, आशा कमरेमें नहीं है।

४२

दूसरे दिन सवेरे महेन्द्रने मासे कहा, "मा, पढ़ने-लिखनेके लिए मुझे एक अलग कमरा चाहिए। चाची जिस कमरेमें रहती थीं, मैं उसीमें रहूंगा।"

मा प्रसन्न हो उठीं,–'तो महेन्द्र घरमें ही रहेगा। मालूम होता है बहूसे अब मेल-मिलाप हो गया। मेरी ऐसी सोनेकी गुड़िया बहूकी भला महेन्द्र क्या हमेशा निरादर कर सकता है? घरकी ऐसी लक्ष्मीको छोड़कर भला कोई उस मायाविनी डाइनके फेरमें कब तक फँसा रह सकता है!'

राजलक्ष्मी तुरत कह उठीं, "ठीक है, बेटा, तुम उसीमें रहा करना।" कहते-हुए उसी वक्त उन्होंने चाभियोंका गुच्छा निकालकर बन्द कमरेको खुलवा कर उसे झाड़ने-झूड़नेकी धूम मचा दी।

"बहू! बहू! बहू कहाँ गई?"

बहुत खोज करनेके बाद संकुचिता बहूका घरके किसी कोनेसे आविष्कार किया गया।

राजलक्ष्मीने कहा, "जाओ तो, बहू, एक साफ जाजिम निकाल लाओ। इस कमरेमें टेबिल नहीं है, एक टेबिल भी चाहिए। यहाँ इस बत्तीसे तो काम नहीं चलेगा, ऊपरसे लैम्प भी भेज देना।"

इस तरह दानोंने मिलकर घरके राजाधिराजके लिए अन्नपूर्णाके कमरेमें विस्तृत राजासन प्रस्तुत कर दिया। महेन्द्रने सेवा-कारिणियोंकी तरफ आँख उठाकर देखा तक नहीं, वह गम्भीरताके साथ अपनी किताबें और नोटबुक आदि लेकर कमरेमें जा बैठा; और समयका लेशमात्र अपव्यय न करके उसी क्षण उसने पढ़ना-लिखना शुरू कर दिया।

शामको ब्यालू करनेके बाद महेन्द्र फिर पढ़ने बैठ गया। वह ऊपर अपने सोनेके कमरेमें सोयेगा या नीचे पढ़नेके कमरेमें, किसीके कुछ समझमें न आया। राजलक्ष्मीने बड़े जतनसे आशाको स्पन्दन-हीन जड़ पुतली-सी सजाकर कहा, "जाओ तो, बेटी, महेन्द्रसे जाकर पूछ आओ, उसके बिछौने क्या ऊपर होंगे?"

इस प्रस्तावने आशाके पैरोंको मानो कील दिया, वह चुपचाप सिर झुकाये खड़ी रही। रुष्ट राजलक्ष्मी उसे बहुत डाटने-फटकारने लगीं। आशा मानो हथेलीपर जान रखकर बड़ी मुश्किलसे धीरे-धीरे महेन्द्रके दरवाजे तक गई, किन्तु उससे आगे नहीं बढ़ा गया। राजलक्ष्मी दूरसे बहूका आचरण देखकर बरण्डेके कोनेमें खड़ी-खड़ी क्रोधपूर्ण इशारा करने लगीं। आशा एक साँसमें ऐसे भीतर घुस पड़ी जैसे उसने अपनेको भट्टीमें झोंक दिया हो।

महेन्द्र अपने पीछे पैरोंकी आहट सुनकर किताबसे दृष्टि बगैर उठाये ही कह उठा, "मुझे अभी देर है,– फिर कल भोरमें ही उठकर पढ़ना है, मैं यहीं सोऊँगा।"

कैसी लज्जाकी बात है ! आशा क्या उसे ऊपरके कमरेमें चलकर सोनेके लिए निहोरे करने आई थी ?

आशाके कमरेसे बाहर निकलते ही राजलक्ष्मीने नाराजीके स्वरमें पूछा, "क्या, हुआ क्या ?"

आशाने कहा, "अभी पढ़ रहे हैं,—नीचे ही सोयेंगे।"

इतना कहकर वह सीधी अपने अपमानित सोनेके कमरेमें चली गई। कहीं भी उसे सुख नहीं,—उसके लिए सारी पृथ्वी मानो मध्याह्नकी मरुभूमिकी तरह गरम हो उठी है।

और थोड़ी रात बीतनेके बाद अचानक किसीने आशाके कमरेका दरवाजा खटखटाना शुरू कर दिया। बाहरसे आवाज आई, "बहू, बहू, जरा दरवाजा खोलना।"

आशाने जल्दीसे उठकर दरवाजा खोल दिया। राजलक्ष्मीको दमाकी शिकायत तो थी ही, सीढ़ी चढ़नेके बाद उन्हें साँस लेनेमें तकलीफ होने लगी। घरमें घुसते ही वे गद्देपर बैठ गईं; और बोलनेकी शक्ति आते ही भर्राये-हुए गलेसे बोलीं, "बहू, तुम्हारे ये क्या ढंग हैं! ऊपर आकर किवाड़ बन्द करके सो रही हो जो? यह क्या इस तरह गुस्सा-गुस्सी करनेका समय है? इतना दुःख उठानेपर भी तुम्हें जरा अकल नहीं आई? जाओ, नीचे जाओ।"

आशाने धीरेसे कहा, "उन्हींने तो कहा है, वे अकेले रहेंगे।"

राजलक्ष्मीने कहा, "उन्हींने कहा है! उसने कह दिया, और तुमने सुन लिया? गुस्सेमें उसने क्या कहा और क्या नहीं कहा, इन सब बातोंको लेकर इतनी अकड़ दिखाना ठीक नहीं, बहू! इतना मान-गुमान करनेसे काम नहीं चलता। जाओ, जल्दी जाओ।"

दुःखके दिनोंमें सासने बहूके आगे किसी तरहकी लज्जा नहीं रहने दी। उनके हाथमें जितने भी उपाय हैं उन-सबसे लड़केको उन्हें बाँधकर रखना ही है।

आवेगके साथ बात करते-करते राजलक्ष्मीकी फिर साँस फूल आई। किसी तरह अपनेको सम्हालती-हुई वे उठीं; और आशा भी कुछ न कहकर सहारा

देकर उन्हें नीचे ले गई। नीचे ले जाकर आशाने राजलक्ष्मीको उनके बिस्तर पर बिठा दिया और पीठके पीछे कई तकिये लगा दिये।

राजलक्ष्मीने कहा, "रहने दो। सुधियाको भेज दो। तुम जाओ, अब देर मत करो।'

आशाने इस बार जरा भी दुबिधा नहीं की। सासके कमरेमेंसे निकलकर वह सीधी महेन्द्रके कमरेमें चली गई। महेन्द्रके सामने टेबिलपर किताब खुली पड़ी है; और वह टेबिलपर दोनों पैर फैलाकर कुरसीकी पीठपर सिर रक्खे एकाग्र मनसे कुछ सोच रहा है। पीछेसे किसीके आनेकी आहट सुनकर महेन्द्र चौंककर पीछे देखने लगा। माना वह किसीके ध्यानमें निमग्न था, और अब सहसा उसे ऐसा भ्रम हुआ कि मानो वह जिसके ध्यानमें बैठा था वही आ पहुँची है। आशाको देखकर महेन्द्र संयत होकर पैर नीचे उतारकर बैठ गया और किताब उठाकर उसने अपनी गोदमें रख ली।

महेन्द्र आज मन-ही-मन आश्चर्य करने लगा। आजकल तो आशा उसके सामने ऐसे असङ्कोचसे नहीं आती! दैवसे दोनोंमें कभी भेंट हो भी जाती थी तो वह उसी क्षण भाग जाती थी। आज इतनी रातमें इतने सहज-स्वभावसे वह उसके कमरेमें चली आई, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। महेन्द्र किताबसे दृष्टि बिना उठाये ही समझ गया कि आशाके आज जानेके लक्षण नहीं हैं। आशा महेन्द्रके सामने आकर स्थिर-भावसे खड़ी हो गई। तब फिर महेन्द्रसे पढ़नेका बहाना करते नहीं बना, उसने आँख उठाकर उसकी तरफ देखा। आशाने सुस्पष्ट स्वरमें कहा, "माकी साँस फूल रही है, तुम चलकर एक बार उन्हें देख लो तो अच्छा हो।'

महेन्द्रने कहा, "मा कहाँ हैं?"

आशाने कहा, "अपने सोनेके कमरेमें हैं। उन्हें नींद नहीं आ रही है, तकलीफ ज्यादा मालूम होती है।"

महेन्द्रने कहा, "तो चलो, देख आऊँ।"

बहुत दिन बाद आशासे इतनी बात करके महेन्द्र मानो कुछ हलका-सा हो गया। नीरवता मानो दुर्भेद्य दुर्ग-प्रचीरकी काली छाया बनकर खड़ी थी,

महेन्द्रकी तरफसे उसे तोड़नेका कोई अस्त्र नहीं था,– इतनेमें आशाने अपने हाथसे किलेका छोटा-सा द्वार खोल दिया।

आशा राजलक्ष्मीके दरवाजेके पास आकर खड़ी हो गई। महेन्द्र भीतर चला गया। महेन्द्रको असमयमें अपने पास आते देख राजलक्ष्मी डर गईं, सोचने लगीं, 'मालूम होता है फिर आशासे खटपट हो गई है, और अब यह जानेके लिए मुझसे विदा लेने आया है।' उन्होंने कहा, "क्यों महेन, अभी तक तू सोया नहीं?"

महेन्द्रने कहा, "क्यों मा, तुम्हारी फिर साँस उखड़ आई,– तकलीफ ज्यादा है क्या?"

इतने दिन बाद पुत्रके मुँहसे ऐसा प्रश्न सुनकर माको मन-ही-मन बड़ा अभिमान हुआ। वे समझ गईं कि बहूने जाकर कहा है तब महेन्द्र माकी खबर लेने आया है। इस अभिमानके आवेगसे उनका हृदय और भी ज्यादा आन्दोलित हो उठा। बड़े कष्टसे शब्द उच्चारण करते-हुए उन्होंने कहा, "जा तू, सोने जा। मुझे कुछ नहीं हुआ।"

महेन्द्रने कहा, "नहीं, मा, एक बार अच्छी तरह परीक्षा कर देखनी है। यह रोग उपेक्षा करनेका नहीं है।"

महेन्द्र जानता था कि उसकी माका हृदय बहुत कमजोर है, इसलिए, और उनके चेहरेका लक्षण देखकर वह अत्यन्त चिन्तित हो उठा।

माने कहा, "तुझे परीक्षा करनेकी जरूरत नहीं,– अब मेरा यह रोग अच्छा होनेका नहीं है।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छा तो, आज रात-भरके लिए नींदकी एक दवा मंगाये देता हूं,– किन्तु कल अच्छी तरह परीक्षा कर देखनी होगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "बहुत दवा खा चुकी मैं, अब दवा-दारूकी कुछ जरूरत नहीं। जा तू, बहुत रात हो चुकी है, अब सो जाकर।"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारी तबीयत जरा ठीक हो ले, तब मैं जाऊँगा।"

तब अभिमानिनी राजलक्ष्मीने द्वारके अन्तरालमें खड़ी बहूको सम्बोधित करते-हुए कहा, "बहू, क्यों तुम इतनी रातमें महेन्द्रको फजूल हैरान करनेके

लिए यहाँ ले आईं ?" कहते-कहते फिर उनका श्वासकष्ट बढ़ गया, और वे बेचैन हो उठीं।

तब फिर, आशाने भीतर आकर मृदु किन्तु दृढ़ स्वरमें महेन्द्रसे कहा, "जाओ, तुम सोने जाओ, मैं हूं माके पास।"

महेन्द्रने आशाको एक तरफ बुलाकर कहा, "मैं एक दवा मंगाये देता हूं। शीशीमें दो खुराक दवा होंगी, एक खुराक खिलानेके बाद भी अगर नींद न आये, तो घण्टे-भर बाद दूसरी खुराक भी पिला देना। रातको तकलीफ बढ़े तो मुझे जगा लेना, भूलना नहीं।"

इतना कहकर महेन्द्र अपने नये कमरेमें सोने चला गया। आशा आज महेन्द्रके सामने जिस मूर्तिमें दिखाई दी, उसके लिए मानो यह बिलकुल नई बात थी। इस आशामें किसी तरहका सङ्कोच नहीं, दीनता नहीं ; यह आशा अपने अधिकारमें आपही अधिष्ठित है, किसी भी बातके लिए आज वह महेन्द्रके आगे भिक्षाप्रार्थिनी नहीं। 'अपनी स्त्री'की महेन्द्रने उपेक्षा की है, किन्तु 'घरकी बहू'के प्रति उसके मनमें एक विशिष्ट सम्मान उत्पन्न हो गया।

राजलक्ष्मी यह सोचकर कि बहूको उनका इतना खयाल है कि वह चटसे जाकर महेन्द्रको बुला लाई, मन-ही-मन बहूपर बहुत खुश हुईं। किन्तु मुँहसे बोलीं, "बहू, मैंने तुम्हें सोनेके लिए भेजा था,—और तुम जाकर महेन्द्रको घसीट लाईं।"

आशा उनकी बातका कुछ जवाब न देकर पंखा हाथमें लेकर उनके पीछे बैठी-बैठी हवा करने लगी।

राजलक्ष्मीने कहा, "जाओ, बहू, सोने जाओ।"

आशाने धीरेसे कहा, "मुझे यहीं बैठनेको कह गये हैं।" आशा जानती थी कि इस बातको सुनकर कि महेन्द्र उसे माकी सेवाके लिए छोड़ गया है, राजलक्ष्मी खुश होंगी।

४३

राजलक्ष्मीने स्पष्ट-रूपसे देख लिया कि आशासे महेन्द्रके मनको बाँधते नहीं बनता, और तब उन्हें ऐसा लगा कि 'कमसे कम मेरी बीमारीके कारण ही महेन्द्रका अगर घरमें रहना हो, तो वह भी अच्छा।' उन्हें डर लगने लगा कि कहीं उनका रोग बिलकुल ही अच्छा न हो जाय, और इसलिए वे आशासे छिपाकर दवा फेंक देने लगीं।

अन्यमनस्क महेन्द्र इधर विशेष कुछ लक्ष्य नहीं दे सकता था। किन्तु आशा अनुभव करने लगी कि राजलक्ष्मीकी बीमारी अच्छी नहीं हो रही, बल्कि बढ़ रही है। वह सोचने लगी, उसके पति काफी ध्यान देकर ठीकसे माका इलाज नहीं कर रहे हैं, उनका मन इतना उद्भ्रान्त रहता है कि माकी ऐसी बीमारी भी उन्हें चेता नहीं सकती। महेन्द्रकी इतनी बड़ी दुर्गतिको देखकर आशा मन-ही-मन उसे धिक्कारे बगैर न रह सकी। एक तरफसे नष्ट होनेसे आदमी क्या सभी तरफसे ऐसा नष्ट हो जाता है ?

एक दिन शामके वक्त राजलक्ष्मीकी तकलीफ जब कि काफी बढ़ गई, तब उन्हें बिहारीकी याद उठ आई, कितने दिनोंसे बिहारी नहीं आया जिसका कोई ठीक नहीं! उन्होंने आशासे पूछा, "बहू, आजकल बिहारी कहाँ है ?"

आशा समझ गई और सोचने लगी, 'हमेशासे रोग-धोग और दुःख-कष्टमें बिहारी-लालाजी ही माकी सेवा करते आये हैं। इसीसे माको आज कष्टके समय उनकी याद आ रही है। हाय, इस घरके अटल सेवक सहायक हमेशाके वे बिहारी-लालाजी भी आज दूर चले गये हैं। वे होते तो इस दुःसमयमें माकी बहुत सेवा करते,— इनकी तरह वे हृदयहीन नहीं हैं।' सोचते-सोचते आशाके हृदयसे एक लम्बी साँस निकल आई।

राजलक्ष्मीने कहा, "बिहारीके साथ महेन्द्रने शायद झगड़ा कर लिया है ? बड़े अन्यायकी बात है, बहू! उस जैसा हितू मित्र महेन्द्रका और-कोई मिलेगा नहीं।"

कहते-कहते उनकी आँखोंमें आँसू भर आये।

एकके बाद एक आशाको बहुत-सी बातें याद आने लगीं। अन्धी मूढ़ आशाको यथासमय सावधान करनेके लिए बिहारीने कितनी तरहसे कोशिश की थी, और उन कोशिशोंकी वजहसे वह आशाका कितना अप्रिय हो उठा था, उन सब बातोंकी याद कर-करके आशा आज मन-ही-मन तीव्र-रूपसे अपनेको अपमानित करने लगी। एकमात्र सुहृत्को लाञ्छित करके एकमात्र शत्रुको जो छातीसे लगा लेता है, विधाता उस कृतघ्न मूर्खको क्यों नहीं सजा देंगे? भग्नहृदय बिहारी जैसी आह खींचकर इस घरसे विदा हुआ है, वह आह क्या इस घरको नहीं लगेगी?

बहुत देर तक चिन्तित और स्थिर रहकर राजलक्ष्मी फिर सहसा कह उठीं, "बहू, आज बिहारी अगर होता तो इस बुरे समयमें वह जरूर हमारी रक्षा कर सकता था,— मामला इतना आगे नहीं बढ़ पाता।"

आशा निस्तब्ध होकर सोचने लगी।

राजलक्ष्मीने एक गहरी साँस लेते-हुए कहा, "उसे अगर मालूम हो जाय कि मैं बीमार हूं, तो वह बगैर आये नहीं रह सकता।"

आशा समझ गई कि राजलक्ष्मीकी इच्छा है, बिहारीको खबर पहुंचा दी जाय। बिहारीके अभावमें वे आज बिलकुल ही असहाय/हो गई हैं।

कमरेकी बत्ती बुझाकर महेन्द्र चाँदनीमें खिड़कीके पास चुपचाप खड़ा था। पढ़नेमें अब उसका जी नहीं लगता। घरमें उसे कोई सुख नहीं। जो अपने परम-आत्मीय हैं उनके साथ सहज-स्वाभाविक सम्बन्ध दूर हो जानेपर भी उन्हें गैरोंकी तरह आसानीसे छोड़ा नहीं जा सकता, और न प्रिय-जनोंकी तरह आसानीसे अपनाया ही जा सकता है,— नतीजा यह होता है कि वह अत्याज्य आत्मीयता दिन-रात असह्य भारकी तरह छातीपर जमी ही रहती है। माके सामने जानेकी महेन्द्रकी इच्छा नहीं होती,— महेन्द्र उनके पास जाता है तो वे ऐसे शङ्कित उद्वेगके साथ उसके मुँहकी तरफ़ देखने लगती हैं कि महेन्द्रको उससे बड़ी चोट पहुंचती है। और आशा किसी कामसे उसके पास आती है तो उसके साथ बात करना भी उसके लिए कठिन हो जाता है और चुप रहना

तो और भी कष्टकर हो उठता है। इस तरह भला कैसे किसीके दिन कट सकते हैं! महेन्द्रने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि कमसे कम सात दिन तक तो वह विनोदिनीसे बिलकुल ही न मिलेगा। अभी दो दिन और बाकी हैं,– ये दो दिन अब कैसे कटें?

महेन्द्रने पीछेसे किसीके पैरोंकी आहट सुनी। समझ गया कि आशा आई है। किन्तु वह ऐसा भाव दिखाकर कि उसे कुछ मालूम ही नहीं, चुपचाप खड़ा रहा। आशा उसके इस भावको ताड़ गई, किन्तु फिर भी वह वापस नहीं गई। महेन्द्रके पीछे खड़ी होकर बोली, "एक बात है, उसे सुन लो,– फिर मैं चली जाऊँगी।"

महेन्द्रने उसकी तरफ मुंह फेरकर कहा, "क्यों, चली क्यों जाओगी,– बैठ ही जाओ जरा।"

आशा उसके इस सौजन्यपर विशेष ध्यान न देकर स्थिर खड़ी रही। बोली, "बिहारी-लालाजीको माकी बीमारीकी खबर दे देनी चाहिए।"

बिहारीका नाम सुनते ही महेन्द्रके गहरे हृदय-क्षतपर एकाएक ऐसी चोट पहुंची कि वह तिलमिला उठा। फिर भी उसने अपनेको सम्हालते-हुए कहा, "क्यों, क्यों दे देनी चाहिए जी? मेरे इलाजपर विश्सास नहीं हो रहा होगा शायद?"

आशाका हृदय इस ग्लानिसे भर उठा था कि उसके पति मन लगाकर माका ठीक-ठीक इलाज नहीं कर रहे हैं, इसलिए अनायास ही उसके मुंहसे निकल गया, "तो फिर उनकी तबीयत ठीक क्यों नहीं हो रही,– दिन-दिन बीमारी बढ़ती ही क्यों जा रही है?"

इस साधारण-सी बातकी भीतरी गरमीको महेन्द्र समझ गया। महेन्द्रकी ऐसी गूढ़ भर्त्सना आशाने पहले कभी भी नहीं की। महेन्द्र अपने अहङ्कारमें आहत होकर विस्मित विद्रूपके साथ बोल उठा, "तो अब मुझे तुमसे डाक्टरी सीखनी पड़ेगी मालूम होता है!"

महेन्द्रके इस विद्रूप-वाक्यसे आशाकी पुञ्जीभूत वेदनापर अकस्मात् ऐसी चोट पहुंची कि जिसकी उसे आशा नहीं थी,– उसपर घरमें अँधेरा था, इसलिए

आज वह चिरकालकी निरुत्तर आशा बिना किसी सङ्कोचके उद्दीप्त तेजके साथ कह उठी, "डाक्टरी मुझसे भले ही न सीखो, पर माकी सेवा करना तो सीख सकते हो!"

आशाके मुँहसे ऐसा जवाब सुनकर महेन्द्रके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। ऐसे अनभ्यस्त तीव्र वाक्यसे महेन्द्र एकाएक निष्ठुर हो उठा, बोला, "तुम्हारे 'बिहारी-लालाजी'को क्यों इस घरमें आनेकी मनाही की गई है सो क्या तुम्हें मालूम नहीं! मुझे क्या फिरसे याद दिलाना पड़ेगा?"

आशा बड़ी तेजीसे घरसे बाहर निकल गई। लज्जाकी आँधी मानो उसे ढकेल ले गई हो। लज्जा उसे अपने लिए नहीं थी। जो व्यक्ति अपराधमें डूबा-हुआ है, वह ऐसा अन्यायपूर्ण मिथ्या अपवाद मुँहसे उच्चारण कैसे करता है! इतनी बड़ी निर्लज्जताको तो पर्वत-प्रमाण लज्जासे भी नहीं ढका जा सकता।

आशाके चले जाते ही महेन्द्र अपने सम्पूर्ण पराजयका अनुभव करने लगा। आशा किसी भी समय किसी भी हालतमें उसे इस तरह धिक्कार दे सकती है, इसकी कभी महेन्द्रने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। महेन्द्रने देखा, जहाँ उसका सिंहासन था वहाँ वह आज धूलमें लोट रहा है! इतने दिन बाद उसे आशङ्का होने लगी, शायद आशाकी वेदना घृणामें परिणत हो रही है।

और फिर तुरत बिहारीका खयाल आते ही विनोदिनीकी चिन्ताने उसे अधीर कर दिया। बिहारी पश्चिमसे लौटा है या नहीं, कौन जाने! इस बीचमें विनोदिनीको उसका पता भी मालूम हो सकता है, और बिहारीसे उसकी भेंट होना भी असम्भव नहीं। महेन्द्रके लिए अब अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करना कठिन हो उठा।

रातको राजलक्ष्मीके तकलीफ ज्यादा बढ़ गई। उनसे रहा नहीं गया, उन्होंने खुद ही महेन्द्रको बुलाकर कहा, "महेन, बिहारीको देखनेकी मेरी बड़ी इच्छा है,—बहुत दिनोंसे वह आया नहीं है।"

आशा सिरहानेके पास बैठी सासको पंखेसे हवा कर रही थी। वह मुँह नीचा किये रही।

महेन्द्रने कहा, "वह यहाँ नहीं है, पछाँहकी तरफ कहीं घूमने गया है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मेरा मन कह रहा है कि वह यहीं कहीं है। तुझसे रूठा-हुआ है, इसलिए नहीं आ रहा है। तुझे अपनी माकी सौगन्द है, कल तू एक बार उसके घर जाकर देख आ।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छा जाऊंगा।"

आज सब-कोई बिहारीको बुला रहे हैं! महेन्द्रको ऐसा लग रहा है, मानो उसे सारे संसारने त्याग दिया हो।

४४

दूसरे दिन बड़े तड़के ही महेन्द्र बिहारीके घर पहुंचा। देखा, दरवाजेके आगे बहुत-सी बैलगाड़ियाँ खड़ी हैं और उनपर असबाब लादा जा रहा है। महेन्द्रने भज्जूसे पूछा, "क्या बात है, भज्जू?"

भज्जूने कहा, "बाबू सा'बने बाली-उत्तरपाड़ामें गङ्गा-किनारे एक बगीचा लिया है, वहीं सब सामान जा रहा है।"

महेन्द्रने पूछा, "बाबू घरमें हैं क्या?"

भज्जूने कहा, "वे सिर्फ दो-तीन दिन कलकत्ते रहकर कल बालीके बगीचे चले गये हैं।"

सुनकर महेन्द्रका मन आशङ्कासे भर गया। वह अनुपस्थित था, और इस बीचमें जरूर विनोदिनी और बिहारी आपसमें मिल चुके होंगे – इसमें उसे जरा भी सन्देह न रहा। वह अपनी कल्पनाकी आँखोंसे देखने लगा, विनोदिनीके मकानके सामने भी इस समय बैल-गाड़ियोंपर सामान लादा जा रहा होगा। और फिर अपने मनमें कहने लगा, 'इसीलिए मुझ बेवकूफको विनोदिनीने अपने पाससे दूर हटा रक्खा था।'

एक क्षणकी भी देर न करके महेन्द्र अपनी गाड़ीमें बैठ गया; और कोचवानसे बोला, "चलो।"

उसके खयालसे घोड़े काफी जोरसे नहीं चल रहे थे, और इसके लिए बीचमें-बीचमें वह कोचवानको फटकारने लगा। गाड़ी जब पटलडाँगाकी उस गलीमें पहुंची तो महेन्द्रने दूरसे ही देखा कि वहाँ मकान छोड़कर जानेका

कोई आयोजन ही नहीं! उसे भय हुआ कि शायद उसके आनेके पहले ही विनोदिनी अपना काम पूरा कर चुकी है।

महेन्द्र गाड़ीसे उतरकर जोर-जोरसे दरवाजा खटखटाने लगा। भीतरसे एक बूढ़ेने दरवाजा खोल दिया। महेन्द्रने उससे पूछा, "सब ठीक है तो ?"

नौकरने कहा, "जी हाँ, सब ठीक है।"

महेन्द्रने ऊपर जाकर देखा, विनोदिनी नहाने गई है। उसके निर्जन सोनेके कमरेमें जाकर महेन्द्र उस बिस्तरपर लोट गया, जिसपर वह कल रातको सोई थी। और फिर उसने दोनों बाहुओंसे उस कोमल बिछौनेको समेटकर अपनी छातीके नीचे दबा लिया, और उसे सूँघकर उसपर मुँह फेरकर करने लगा, "निष्ठुर! निष्ठुर!"

इस तरह वह अपने हृदयोच्छ्वासको उन्मुक्त करके बिछौनेसे उठकर अत्यन्त अधीर होकर विनोदिनीकी प्रतीक्षा करने लगा। फिर कमरेमें इधरसे उधर टहलते-टहलते उसने देखा कि फर्शके गद्देपर एक अखबार खुला-हुआ पड़ा है। वक्त काटनेके लिए उसने कुछ अन्यमनस्क-भावसे उसे उठा लिया; और शुरूमें ही जहाँ उसकी नजर पड़ी, वहाँ बिहारीका नाम देखकर वह चौंक पड़ा। क्षण भरमें उसका सम्पूर्ण मन अखबारके उसी स्थानपर केन्द्रित होकर झुक पड़ा। कोई-एक पत्र-प्रेरक लिख रहा है, "कम वेतन पानेवाले क्लर्कोंके इलाज और तीमारीदारीके लिए बाली-उत्तरपाड़ामें गङ्गाके किनारे बिहारी-बाबूने एक बगीचा लिया है, वहाँ एकसाथ पाँच रोगियोंके लिए व्यवस्था की गई है।" इत्यादि।

महेन्द्र सोचने लगा, 'विनोदिनी इस समाचारको पढ़ चुकी है। पढ़कर उसका कैसा भाव हुआ होगा? अवश्य ही उसका मन भागनेको फड़फड़ा रहा होगा।' सिर्फ इसीलिए महेन्द्र विचलित हुआ हो सो बात नहीं, वह सोचने लगा, 'बिहारीके इस सङ्कल्पसे विनोदिनीका मन उसके प्रति जरूर पहलेसे ज्यादा आकृष्ट हुआ होगा; और भक्ति भी बढ़ गई होगी।' बिहारीको उसने मन-ही-मन 'हम्बग' कहा; और उसके कामको 'पाखण्ड' बताकर मन-ही-मन कहने लगा, 'लोगोंके आगे अपनेको परोपकारी सिद्ध करनेका व्यसन बिहारीके बचपनसे ही है। कोई नई बात नहीं।' और फिर महेन्द्रने बिहारीकी अपेक्षा

अपनेको निष्कपट और अकृत्रिम समझकर अपने-आप वाहवाही लेनेकी कोशिश करते-हुए कहा, 'उदारता और आत्म-त्यागका ढोंग करके मैं मूढ़ोंको धोखा देनेकी कोशिश नहीं करता, मुझे इससे घृणा है।' किन्तु हाय, इस परमनिश्चेष्ट अकृत्रिमताके माहात्म्यको लोग – अर्थात् एक विशेष व्यक्ति नहीं समझेंगे! महेन्द्रको ऐसा लगने लगा कि बिहारीने उसपर यह भी एक चल चली है।

विनोदिनीके आनेकी आहट सुनते ही महेन्द्रने जल्दीसे अखबार मोड़कर अपने नीचे रख लिया। सद्यःस्नाता विनोदिनीके कमरेमें घुसते ही महेन्द्र उसके चेहरेकी ओर देखकर विस्मित हो उठा। उसका यह कैसा अपूर्व-सुन्दर परिवर्तन हुआ है! वह मानो इधर कई दिनोंसे अग्नि-तपस्या कर रही हो। उसका शरीर कृश हो गया है; और उस कृशताको भेदकर उसके पाण्डुवर्ण मुखपर मानो एक प्रकारकी दीप्ति निकल रही है।

विनोदिनीने बिहारीके पत्रकी आशा छोड़ दी है। अपने प्रति बिहारीकी अवज्ञाकी कल्पना करके अहोरात्र वह चुपचाप दग्ध हो रही थी। उस दाहसे छुटकारा पानेका उसके पास कोई रास्ता नहीं था। बिहारी मानो उसीका तिरस्कार करनेके लिए पश्चिम चला गया है; और उस तक पहुंचनेका कोई उपाय उसके हाथमें नहीं है। कार्य-परायणा और निरलस विनोदिनीका कार्यके अभावमें इस छोटे-से घरमें मानो दम घुट रहा था, उसका सम्पूर्ण उद्यम मानो स्वयं उसीको आघात कर-करके क्षत-विक्षत कर रहा था। अपने सम्पूर्ण भावी जीवनको इस प्रेम-हीन कर्म-हीन आनन्द-हीन घरमें, इस छोटी-सी बन्द गली में हमेशाके लिए अवरुद्ध समझकर उसकी विद्रोही प्रकृति आयत्तातीत अदृष्टके विरुद्ध मानो आकाशमें सिर फोड़नेकी व्यर्थ चेष्टा कर रही थी। जिस मूढ़ महेन्द्रने विनोदिनीके समस्त मुक्तिके मार्गोंको चारों तरफसे बन्द करके उसके जीवनको आज ऐसा सङ्कीर्ण बना दिया है उसके प्रति विनोदिनीके घृणा और विद्वेषकी सीमा न रही। विनोदिनी समझ गई थी कि उस महेन्द्रको अब वह किसी भी तरह अपनेसे दूर नहीं रख सकती। इस छोटे-से घरमें महेन्द्र प्रतिदिन उसके पास आयेगा और उसके सामने सटकर बैठा करेगा, प्रतिदिन अलक्ष्य आकर्षणसे थोड़ा-थोड़ा करके बराबर उसकी तरफ अग्रसर होता रहेगा,

इस अन्ध-कूपमें, इस समाज-भ्रष्ट जीवनकी पङ्क-शय्यापर, घृणा और आसक्तिमें परस्पर जो रोजकी लड़ाई होती रहेगी वह अत्यन्त वीभत्स होगी। विनोदिनीने अपने हाथसे अपनी चेष्टासे जमीन खोदकर महेन्द्रके हृदयके अन्तस्तलसे जिस लोल-जिह्वा लोलुपताके क्लेदाक्त सर्पको बाहर निकाला है, उसके पुच्छ-पाशसे वह कैसे अपनी रक्षा करेगी ? एक तो वैसे ही विनोदिनीका हृदय व्यथित है, उसपर यह छोटा-सा सङ्कीर्ण घर और महेन्द्रकी वासना-तरङ्गका प्रतिक्षण आघात, इसकी कल्पना-मात्रसे विनोदिनीका सम्पूर्ण मन पीड़ित हो उठता है। जीवनमें इसकी समाप्ति कहाँ है ? कब वह इन-सब धर्मसङ्कटोंसे छुटकारा पा सकेगी ?

विनोदिनीके थके-हुए पीले चेहरेको देखकर महेन्द्रके मनमें ईर्षानल जल उठा। उसमें क्या ऐसी कोई शक्ति नहीं है जिससे वह बिहारीकी चिन्तासे इस तपस्विनीको बल-पूर्वक उत्पाटित कर सके ? ईगल-पक्षी जैसे भेड़के बच्चेको क्षणमें झपट्टा मारकर अपने दुर्गम अभ्रभेदी पर्वत-नीड़में ले जाता है, वैसे ही क्या ऐसा कोई मेघ-परिवृत निखिल-विस्मृत स्थान नहीं है जहाँ अकेला महेन्द्र अपने इस कोमल सुन्दर शिकारको अपनी छातीके नीचे छिपाकर रख सके ? ईर्षाके उत्तापसे उसकी इस इच्छाका आग्रह चौगुना बढ़ गया। अब क्या वह एक क्षणके लिए भी विनोदिनीको आँखोंके ओझल रख सकेगा ? बिहारीकी विभीषिकाको अहोरात्र उसे दूर-ही-दूर रखना होगा। उसे सूच्याग्र-प्रमाण अवकाश देनेका साहस अब महेन्द्र नहीं कर सकता।

'विरहका ताप रमणीके सौन्दर्यको सुकुमार कर देता है'– यह बात महेन्द्रने संस्कृत-साहित्यमें पढ़ी थी। आज विनोदिनीको देखकर वह इस बातका जितना ही अनुभव करने लगा उतना ही सुख-मिश्रित दुःखके सुतीव्र आलोड़न से उसका हृदय मथित होने लगा।

विनोदिनीने क्षण-भर स्थिर रहकर महेन्द्रसे पूछा, "तुम क्या चाय पीके आये हो ?"

महेन्द्र बोला, "मान लो, पी ही आया हूं, इसके मानी यह नहीं कि तुम अपने हाथसे और-एक प्याला देनेमें कंजूसी करो,–'प्याला मोहिं भर दे रे'!"

विनोदिनीने शायद जान-बूझकर ही अत्यन्त निष्ठुर-भावसे महेन्द्रके इस

उच्छ्वासपर सहसा चोट की, बोली, "बिहारी-लालाजी आजकल कहाँ हैं, मालूम है?"

सुनते ही क्षण-मात्रमें महेन्द्रका रंग उतर गया। वह बोला, "वो तो अभी कलकत्तेसे बाहर है कहीं।"

"उनका पता क्या है?"

"वो तो किसीको बताना ही नहीं चाहता।"

"किसी तरह पता नहीं लगाया जा सकता?"

"मुझे तो इसकी कोई खास जरूरत नहीं मालूम होती।"

"जरूरत ही क्या दुनियामें सब-कुछ है? बचपनकी मित्रता क्या कुछ भी नहीं?"

"बिहारी मेरा बचपनका मित्र जरूर है, किन्तु तुम्हारे साथ उसकी मित्रता दो-दिनकी है,–फिर भी तकाजा तुम्हारा ही बहुत ज्यादा मालूम होता है।"

"इसीसे तुम्हें लज्जित होना चाहिए। मित्रता कैसे की जाती है सो तुम ऐसे मित्रसे भी न सीख सके?"

"इसके लिए मैं इतना दुःखित नहीं हूँ, दुःख तो मुझे इस बातका है कि 'धोखा देकर स्त्रियोंका कैसे मन हरण किया जाता है'–यह विद्या मैं उससे न सीख सका। सीख लेता तो आज वह मेरे काम आती।"

"वह विद्या सिर्फ इच्छा रहनेसे ही नहीं सीखी जा सकती, उसके लिए शक्ति चाहिए।"

"ऐसे गुरुदेवका ठिकाना अगर तुम्हें मालूम हो तो बता दो, इस उमरमें एक बार उनके पास जाकर दीक्षा ले आऊं,– उसके बाद शक्तिकी परीक्षा हो जायगी।"

"अपने मित्रका पता अगर न लगा सको, तो प्रेमकी बातें तुम मेरे आगे न किया करो। बिहारी-लालाजीके साथ तुमने जैसा बरताव किया है, उसे देखकर कौन तुमपर विश्वास कर सकता है?"

"मुझपर अगर पूरा विश्वसस न करती होतीं, तो मेरा तुम इतना अपमान

नहीं कर सकती थीं। मेरे प्रेमके विषयमें अगर तुम इतनी निःसंशय नहीं होतीं, तो मुझे शायद इतना असह्य दुःख न उठाना पड़ता। बिहारी किसीके वशमें न आनेकी विद्या जानता है,– वह विद्या अगर वह इस अभागेको सिखा देता, तो उसकी मित्रताका यह सबसे बड़ा काम होता।"

"बिहारी जो मनुष्य ठहरा, इसीसे वह किसीके वशमें नहीं आता।"– इतना कहकर विनोदिनी अपने खुले-हुए बालोंको पीठपर फैलाकर खिड़कीके पास जैसे खड़ी थी वैसे ही खड़ी रही।

महेन्द्र सहसा उठके खड़ा हो गया और जोरसे दोनों मुट्ठियाँ बाँधकर रोष-गर्जित स्वरमें बोल उठा, "क्यों तुम बार-बार इस तरह मेरा अपमान करनेका साहस करती हो? इतने अपमानका तुम्हें कोई प्रतिफल नहीं मिलता, सो क्या तुम्हारी शक्तिसे, या मेरे गुणसे? मुझे अगर तुमने पशु ही समझ रखा हो, तो खूंखार पशु ही समझना! मैं आघात करना बिलकुल जानता ही नहीं, इतना बड़ा कायर मुझे मत समझ लेना!"

इतना कहकर और क्षण-भर स्तब्ध रहकर वह विनोदिनीके मुंहकी तरफ देखता रहा, उसके बाद कहने लगा, "विनोद, अब यहांसे और कहीं चलो। हमलोग बाहर चलें तो अच्छा। पश्चिमकी तरफ, पहाड़पर, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, चलो। यहाँ जीनेकी जगह नहीं। मैं मरा जा रहा हूं।"

विनोदिनीने कहा, "चलो, अभी चलो,– पश्चिमकी तरफ घूमा जाय।"

महेन्द्रने कहा, "पश्चिममें कहाँ चलोगी?"

विनोदिनीने कहा, "कहीं भी नहीं। एक जगह दो-चार दिन नहीं ठहरना, बराबर घूमते-फिरते रहना है।"

महेन्द्रने कहा, "अच्छी बात है, चलो, आज रातको ही चल दें।"

विनोदिनी राजी हो गई, और फिर महेन्द्रके लिए रसोई बनानेकी तैयारी करने चली गई। महेन्द्रने समझा कि बिहारीकी खबरपर विनोदिनीकी दृष्टि नहीं पड़ी; अखबार पढ़नेमें मन लगाने योग्य अवधान-शक्ति विनोदिनीमें अभी नहीं है। फिर भी दैव-संयोगसे विनोदिनीकी उसपर दृष्टि न पड़ जाय, महेन्द्र दिन-भर इसके लिए सावधान बना रहा।

४५

बिहारीकी खबर लेकर महेन्द्र वापस आ रहा होगा, इस धारणासे घरमें उसके लिए रसोई बनी थी। बहुत देर होते देख रोग-पीड़ित राजलक्ष्मी उद्विग्न होने लगीं। रात-भर नींद न आनेसे वे वैसे ही बहुत क्लान्त-श्रान्त थीं, उसपर महेन्द्रकी उत्कण्ठाने उन्हें और भी क्लिष्ट कर दिया। इससे आशा विचलित हो उठी। उसने पता लगानेके लिए नौकरको भेजा तो मालूम हुआ कि गाड़ी लौट आई है। कोचवानसे पता चला कि 'बाबू बिहारी-बाबूके घर होते हुए पटलडाँगा किसीके यहाँ गये हैं।' सुनते ही राजलक्ष्मी दीवारकी तरफ करवट लेकर स्तब्ध होकर सो रहीं। आशा उनके सिरहानेके पास चित्रार्पितकी तरह स्थिर बैठी पंखासे हवा करती रही। और-और दिन राजलक्ष्मी आशासे यथासमय खा आनेके लिए कहती थीं, आज उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।

कल रातको माकी कठिन पीड़ा देखकर भी महेन्द्र जब आज सवेरे ही विनोदिनीके मोहमें दौड़ा चला गया, तब फिर राजलक्ष्मीके लिए इस संसारमें किसीसे कुछ पूछनेको, चेष्टा करनेको, इच्छा करनेको रह ही क्या गया? वे समझ गईं कि महेन्द्रने उनकी बीमारीको मामूली बात समझी है। वह यह समझकर निश्चिन्त है कि माको तो कई बार ऐसा हुआ है और फिर वे अच्छी हो गई हैं, अबकी बार भी वैसा ही हुआ है और वे अच्छी हो जायेंगी। किन्तु महेन्द्रका इस तरह आशङ्का-शून्य उद्वेग-शून्य रहना ही राजलक्ष्मीको अत्यन्त कष्टकर मालूम होने लगा। वे सोचने लगीं, 'महेन्द्र इस प्रेमोन्मत्ततामें किसी आशङ्काको, किसी कर्तव्यको, अपने मनमें स्थान ही नहीं देना चाहता,— वह माके कष्टको, माके रोगको इतनी हलकी बात समझता है! कहीं उसे माकी रोग-शय्याके आस-पास घिर न जाना पड़े, इस डरसे वह ऐसा निर्लज्ज होकर जरा-सा अवकाश पाते ही विनोदिनीके पास भाग गया!' अपनी आरोग्यताके प्रति राजलक्ष्मीका जरा भी उत्साह न रहा। वे मारे अभिमानके यही चाहने लगीं कि उनका रोग कभी भी अच्छा न हो और महेन्द्र जान जाय कि उसकी धारणा कितनी गलत है।

करीब दो बजे आशाने कहा, "मा, दवा पीनेका समय हो गया।"

राजलक्ष्मी कुछ जवाब न देकर चुप रहीं। आशा जब दवा लानेके लिए उठने लगी तब उन्होंने कहा, "दवाकी अब कोई जरूरत नहीं, बहू, तुम जाओ।"

आशा सासका अभिमान समझ गई। और उस अभिमानने संक्रामक होकर उसके हृदयके आन्दोलनको दूना कर दिया। आशासे रहा नहीं गया, उसने अपने रोनेको काफी दबाया, किन्तु फिर भी वह घुमड़-घुमड़कर रोने लगी। राजलक्ष्मीने धीरेसे आशाकी तरफ करवट लेकर उसके हाथपर अपना सकरुण स्नेहपूर्ण हाथ फेरते-हुए कहा, "बहू, रानी-बिटिया मेरी, तुम्हारी उमर अभी कम है,—सुखका मुँह देखनेके लिए तुम्हारे हाथमें अब भी काफी समय है। मेरे लिए अब तुम कोशिश-जतन करना छोड़ दो, बेटी, मैं बहुत दिन जी चुकी हूं, अब जीकर क्या होगा!"

सुनते ही आशाका रोना एकाएक ऐसा उमड़ पड़ा कि उसे आँचलसे अपना मुँह बन्द कर लेना पड़ा।

इस तरह रोगीके घरका वह दिन मन्द-गतिसे निरानन्द बीत गया। हालां कि अभिमानके बावजूद दोनों नारियोंको भीतर-ही-भीतर यह आशा थी कि अब भी महेन्द्र आ सकता है। जरा-सा शब्द होते ही दोनों-की-दोनों चौंक उठती थीं, और इस बातको दोनों ही समझ रही थीं।

क्रमशः दिवसान्तका आलोक अस्पष्ट हो आया। कलकत्तेके अन्तःपुरोंमें जो गोधूलिकी आभा है, उसमें न तो आलोककी प्रफुल्लता है और न अन्धकारका आवरण ही। वह तो केवल विषादको भारी और निराशाको अश्रु-हीन कर डालती है, कार्य और आश्वासनका बल हरण कर लेती है, किन्तु विश्राम और वैराग्यकी शान्ति नहीं लाती। रोगीके घरकी उस शुष्क और श्रीहीन सन्ध्यामें आशा चुपचाप उठकर एक बत्ती जलाकर ले आई।

राजलक्ष्मीने कहा, "बहू, रोशनी मुझे अच्छी नहीं लगती, बत्ती तुम बाहर ही रख दो।"

आशा बत्ती उठाकर बाहर रख आई। अन्धकार जब घना बनकर उस

छोटे-से कमरेमें बाहरकी अनन्त रात्रिको ले आया, तब आशाने साससे मृदु स्वरमें पूछा, "मा, आदमी भेजकर उन्हें खबर पहुँचा दूं ?"

राजलक्ष्मीने दृढ़ स्वरमें कहा, "नहीं, बहू, तुझे मेरी सौगन्द है, महेन्द्रको खबर मत देना।"

सुनकर आशा स्तब्ध रह गई,—उसमें रोनेकी भी शक्ति नहीं थी।

बाहरसे नौकरने कहा, "बाबू साहबने एक चिट्ठी भेजी है।"

सुनकर क्षणमें राजलक्ष्मीको ऐसा लगा कि महेन्द्रकी अकस्मात् शायद तबीयत खराब हो गई है, इसीसे खुद नहीं आ सका है, चिट्ठी भेज दी है। वे अनुतप्त और व्यस्त होकर बोलीं, "देखो तो, बहू, महेन्द्रने क्या लिखा है।"

आशाने बाहर बत्तीके पास जाकर काँपते-हुए हाथसे चिट्ठी पढ़ी। महेन्द्रने लिखा है : कुछ दिनसे यहाँ उसे अच्छा नहीं लग रहा है, इसलिए वह पश्चिम की तरफ घूमने जा रहा है। माकी बीमारीके बारेमें ज्यादा कुछ चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। उन्हें नियमित-रूपसे देखते रहनेके लिए उसने डाक्टर नवीनसे कह दिया है। रातको नींद न आवे या सिरमें दर्द हो तो, कब क्या करना चाहिए, सो भी चिट्ठीमें लिख दिया है। और साथ ही हलके और पुष्टिकर पथ्यके दो डब्बे भी भेज दिये हैं। चिट्ठीके अन्तमें फिलहाल गिरिडीह के पतेसे बराबर माकी सेहतका समाचार भेजते रहनेका भी अनुरोध किया है।

चिट्ठी पढ़कर आशा स्तम्भित रह गई। प्रबल धिक्कार उसके दुःखको भी अतिक्रम कर गया। यह निष्ठुर संवाद वह माको कैसे सुनावे ?

आशाके इस विलम्बसे राजलक्ष्मी और भी ज्यादा उद्विग्न हो उठीं। वे बोलीं, "बहू, महेन्द्रने क्या लिखा है, जल्दी बताओ मुझे।" कहते-कहते वे आग्रहके मारे बिस्तरपर उठके बैठ गईं।

आशाने तब भीतर आकर धीरे-धीरे पूरी चिट्ठी पढ़कर सुना दी। राजलक्ष्मीने कहा, "अपनी तबीयतके बारेमें उसने क्या लिखा है, जरा उस जगह फिरसे पढ़कर सुनाना।"

आशा फिरसे पढ़कर सुनाने लगी, "कुछ दिनसे मुझे यहाँ अच्छा नहीं लग रहा है, इसलिए मैं—"

राजलक्ष्मी कहने लगीं, "रहने दो, रहने दो, आगे पढ़नेकी जरूरत नहीं। यहाँ अच्छा लगेगा कैसे ? बूढ़ी मा मरती भी तो नहीं, बीमार पड़ी-पड़ी सिर्फ उसे जलाया ही करती है। क्यों तुमने उसे बीमारीकी खबर दी ? घरमें था, एक कोनेमें बैठा पढ़ता-लिखता था, अच्छा था, किसीसे कुछ लेन-देन नहीं था। बीचमें माकी बीमारीकी बात छेड़कर उसका घर छुड़ानेसे तुम्हें क्या सुख मिल गया ? मैं यहाँ मरा पड़ी रहूं, तो उससे किसीका क्या नुकसान है ? इतने दुःखमें भी तुम्हारे दिमागमें जरा बुद्धि नहीं आई, बहू!"

इतना कहकर वे खाटपर पड़ रहीं।

इतनेमें बाहर जूतोंकी आवाज सुनाई दी। नौकरने आकर खबर दी, "डाक्टर साहब आये हैं।" और साथ-ही-साथ डाक्टरने खाँसते-हुए कमरेमें प्रवेश किया। आशा झटपट घूँघट काढ़कर खाटके पीछेकी तरफ खड़ी हो गई। डाक्टरने राजलक्ष्मीसे पूछा, "आपको क्या तकलीफ है बताइये तो ?"

राजलक्ष्मी क्रोधके स्वरमें बोल उठीं, "तकलीफ क्या होगी! किसीको मरने भी न दोगे ? तुम्हारी दवा लेनेसे ही क्या मैं अमर हो जाऊँगी ?"

डाक्टरने सान्त्वनाके स्वरमें कहा, "अमर तो कोई भी किसीको नहीं कर सकता,– पर कष्ट दूर करनेकी कोशिश तो –"

राजलक्ष्मी बोल उठीं, "कष्ट दूर करनेका सबसे अच्छा इलाज था तब जब विधवाएँ चितामें जल मरती थीं,– अब तो सिर्फ बाँधके मारना रह गया है। जाओ डाक्टर-बाबू, तुम जाओ,– मुझे अब और ज्यादा परेशान न करो। मैं जरा अकेली रहना चाहती हूं।"

डाक्टरने डरते-हुए कहा, "एक बार आपकी नाड़ी –"

राजलक्ष्मी अत्यन्त विरक्तिके स्वरमें कह उठीं, "मैं कहती हूं, तुम जाओ, मेरी नाड़ी बहुत अच्छी है,– यह नाड़ी जल्दी छूटनेकी नहीं!"

डाक्टर लाचार होकर बाहर चला गया, और फिर आशाको बुला भेजा। आशासे उसने सारा हाल जान लिया और फिर कमरेमें आकर राजलक्ष्मीसे बोला, "देखिये, महेन्द्र-बाबू मुझपर विशेष-रूपसे भार दे गये हैं। मुझे अगर आप इलाज नहीं करने देंगी, तो उन्हें बड़ा कष्ट होगा।"

महेन्द्रको कष्ट होगा ! राजलक्ष्मीको यह बात महज उपहास-सी प्रतीत हुई। उन्होंने कहा, "महेन्द्रके लिए तुम चिन्ता मत करो। कष्ट तो संसारमें सभीको भोगना पड़ता है। इतने-से कष्टसे महेन्द्रको बहुत ज्यादा सदमा नहीं पहुंचेगा। तुम अब जाओ, डाक्टर। मुझे जरा सोने दो।"

डाक्टर समझ गया कि रोगीको इस समय ज्यादा परेशान करना ठीक नहीं। वह धीरे-धीरे बाहर निकल गया, और आशाको बुलवाकर, 'रोगीके लिए उसे क्या-क्या करना चाहिए' सब समझाकर घर चला गया।

आशाके भीतर जाते ही राजलक्ष्मीने उससे कहा, "जाओ, बेटी, तुम अपने कमरेमें जाकर थोड़ा आराम करो। दिन-भरसे रोगीके पास बैठी हो। जाके तुम हरियाकी माको भेज दो, वह बगलके कमरेमें बैठी रहेगी।"

आशा राजलक्ष्मीको जानती थी। यह उनका स्नेहका अनुरोध नहीं, आदेश है,–पालन करनेके सिवा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं। हरियाकी माको भेजकर वह अपने अँधेरे कमरेमें जाकर शीतल भूमि-शय्यापर पड़ रही।

दिन-भरके उपवास और कष्टसे उसका शरीर-मन श्रान्त और अवसन्न हो गया था। मुहल्लेके एक घरमें उस दिन रह-रहकर ब्याहके बाजे बज रहे थे। इस समय फिर शहनाईने रागिनी छेड़ दी। उस रागिनीके आघातसे रात्रिका सम्पूर्ण अन्धकार मानो स्पन्दित होकर बार-बार आशाको आघातपर आघात करने लगा। उसकी विवाह-रात्रिकी प्रत्येक छोटी-से-छोटी घटनाने सजीव होकर रात्रिके आकाशको स्वप्नच्छविसे भर दिया, उस दिनकी रोशनी कोलाहल और भीड़-भम्भड़ने, उस दिनके माला-चन्दन नवीन वस्त्र और होम-धूपकी सुगन्धने, उस दिनकी नववधूके शङ्कित लज्जित आनन्दित हृदयके निगूढ़ कम्पनने, उस दिनकी सारी-की-सारी स्मृतिने जितना उसे चारों तरफसे घेरकर पकड़ना चाहा उतनी ही उसके हृदयकी व्यथा प्राण पाकर उसपर शक्ति-प्रयोग करने लगी। दारुण दुर्भिक्षमें भूखा बालक जैसे कुछ खानेको देनेके लिए माको बार-बार दोनों हाथोंसे पीटता रहता है, उसी तरह जाग्रत सुखकी स्मृति अपने भूखे पेटके लिए आशाकी छातीपर बार-बार रो-रोकर कराघात करने लगी। अवसन्न आशाको फिर उसने पड़ा नहीं रहने दिया। वह उठके बैठ गई, और दोनों

हाथ जोड़कर देवताके आगे प्रार्थना करने लगी तो इस संसारमें उसकी एकमात्र प्रत्यक्ष देवी मौसीकी पवित्र स्निग्ध मूर्ति उसके अश्रु-वाष्पाच्छन्न हृदयमें आविर्भूत हो उठी। अब तक आशा यही प्रण किये बैठी थी कि अब वह अपनी घर-गृहस्थीके दुःख-संकटमें उस तपस्विनीको कभी नहीं बुलायेगी, किन्तु उसे अपनी मौसीके सिवा संसारमें और-कहीं भी कोई उपाय नहीं सुझाई दिया। आज उसके चारों तरफ जमे-हुए निविड़ दुःखमें जरा भी कहीं कोई रन्ध्र-मात्र नहीं था। इसलिए आज वह कमरेमें बत्ती जलाकर अपनी पालथीपर कापी-कागज रखकर बार-बार आँसू पोंछती-हुई मौसीको चिट्ठी लिखने बैठ गई। उसने लिखा :—

"श्रीचरणकमलेषु,

मौसी, आज तुम्हारे सिवा मेरा और कोई नहीं है। एक बार आकर इस दुखियाको अपनी गोदमें उठा लो। नहीं-तो मैं कैसे जीऊँगी? ज्यादा और क्या लिखूँ, मैं नहीं जानती। तुम्हारे चरणोंमें मेरा सैकड़ों हजारों प्रणाम पहुँचे।

तुम्हारी स्नेहकी — चुन्नी।"

४६

अन्नपूर्णा काशीसे कलकत्ते आ गईं; और धीरे-धीरे राजलक्ष्मीके कमरेमें प्रवेश करके उन्होंने राजलक्ष्मीको प्रणाम करके चरणोंकी रज माथेसे लगाई। बीचका विरोध-विच्छेद भूलकर राजलक्ष्मी उनसे ऐसे मिलीं जैसे खोया-हुआ धन उन्हें फिरसे मिल गया हो। भीतर-ही-भीतर अपने अगोचरमें वे अन्नपूर्णाको चाह रही थीं, अन्नपूर्णासे मिलते ही इस बातको वे समझ गईं। बहुत दिन बाद आज राजलक्ष्मीने इस बातका अनुभव किया कि इतने दिनोंसे उनके अन्दर जो अवसाद और क्षोभ इकट्ठा हो रहा था उसका कारण केवल अन्नपूर्णाका अभाव ही था,—क्षण-भरमें उनका व्यथित हृदय अपनी पहली जगहपर आ गया। महेन्द्रके जन्मसे भी पहले इन दोनों देवरानी-जिठानीने जब वधूके रूपमें इस परिवारके समस्त सुख-दुःखको एक होकर वरण किया था—पूजाके

उत्सवमें, दुःख और शोकमें, दोनों जब एकसाथ इस गृहस्थीके रथमें यात्रा कर रही थीं – तबके उस घनिष्ठ सखीत्वने राजलक्ष्मीके हृदयको आज क्षणमात्रमें आच्छन्न कर दिया। जिनके साथ सुदूर अतीत-कालमें एकसाथ जीवन-यात्रा आरम्भ की थी, नाना व्याघातोंके बाद वह बाल्य-सहचरी ही आज परम दुःखके दिनोंमें उनकी पार्श्ववर्तिनी हुई। उन दिनोंके समस्त सुख-दुःख और प्रिय घटनाओंकी कोई स्मृति रह गई है तो वह अन्नपूर्णा ही है। जिसके लिए राजलक्ष्मीने अन्नपूर्णाको चोट पहुँचाई थी वह आज कहाँ है ?

अन्नपूर्णाने रुग्न जिठानीके पास बैठकर उनका दाहना हाथ अपने हाथमें लेते-हुए कहा, "जीजी !"

राजलक्ष्मीने कहा, "मझली-बहू !" इसके आगे वे और कुछ भी न कह सकीं। उनकी दोनों आँखोंसे आँसू बहने लगे। यह दृश्य देखकर आशासे रहा नहीं गया, वह बगलके कमरेमें जाकर रोने लगी।

अन्नपूर्णाको राजलक्ष्मी या आशासे महेन्द्रके सम्बन्धमें कुछ पूछनेका साहस नहीं हुआ। अन्तमें साधुचरणको बुलाकर उन्होंने पूछा, "मामा, महेन्द्रकी क्या खबर है ?"

साधुचरणने महेन्द्र और विनोदिनीका सारा किस्सा कह सुनाया।

अन्नपूर्णाने पूछा, "बिहारीकी क्या खबर है ?"

साधुचरणने कहा, "बहुत दिनोंसे वे यहाँ आये नहीं,– उनके विषयमें तो मुझे विशेष-कुछ मालूम नहीं।"

अन्नपूर्णाने कहा, "एक बार बिहारीके घर जाकर पता तो लगाओ।"

साधुचरणने जाकर पता लगाया; और वापस आकर कहा, "वे घरमें नहीं है,– बाली-उत्तरपाड़ामें गंगा-किनारे एक बगीचा लिया है, वहाँ गये हैं।"

अन्नपूर्णाने फिर नवीन-डाक्टरको बुलवाकर उनसे रोगीकी सब हालत पूछी। डाक्टरने कहा, "हृदयकी कमजोरीके साथ जलन्धर भी हो गया है। अचानक कब क्या हो जाय, कुछ कहा नहीं जा सकता।"

सन्ध्याके बाद राजलक्ष्मीके तकलीफ जब बहुत बढ़ने लगी, तब अन्नपूर्णाने उनसे कहा, "जीजी, एक बार डाक्टरको बुला लिया जाय तो अच्छा रहे।"

राजलक्ष्मीने कहा, "नहीं, मझली-बहू, डाक्टरसे मेरा कुछ नहीं होनेका।"

अन्नपूर्णाने कहा, "तो तुम किसे बुलाना चाहती हो, बताओ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "बिहारीको एक बार खबर पहुँचा दो तो अच्छा हो।"

अन्नपूर्णाके हृदयको बड़ी गहरी चोट पहुंची। उस दिन दूर-प्रवासमें बिहारीको उन्होंने रातके अन्धकारमें घरके दरवाजेसे ही अपमान करके विदा कर दिया था, उस वेदनाको वे आज तक भूल नहीं सकी हैं। बिहारी अब कभी भी उनके दरवाजेपर नहीं आयेगा। इस जीवनमें बिहारीके उस अनादरका अब वे कभी भी प्रतिकार कर सकेंगी, इसकी उन्हें कोई आशा ही नहीं थी।

अन्नपूर्णा एक बार ऊपर गईं महेन्द्रके कमरेमें। घर-भरमें यह कमरा ही एक दिन आनन्द-निकेतन था। आज उस कमरेमें कोई सौन्दर्य नहीं। सारा सामान विशृङ्खल पड़ा-हुआ है, साज-सज्जा अनादृत हो रही है। छतके गमलोंमें कोई पानी तक नहीं देता, पौधे सब सूख गये हैं।

मौसी छतपर गई हैं, यह मालूम होते ही आशा भी धीरे-धीरे ऊपर पहुंच गई। अन्नपूर्णाने उसे छातीसे लगा लिया और उसका मस्तक चूमा। आशा दोनों हाथोंसे उनके पांव पकड़कर बार-बार उनपर अपना सिर छुआने लगी। कहने लगी, "मौसी, मुझे आशीर्वाद दो, मुझे शक्ति दो। आदमी इतना कष्ट सह सकता है, इसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। मैया री, इस तरह अब और कितने दिन सहती रहूंगी!"

अन्नपूर्णा वहीं जमीनपर बैठ गईं, आशा उनके पैरोंके पास सिर रखकर लोट गई। अन्नपूर्णाने उसका सिर अपनी गोदमें उठा लिया, और मुँहसे कोई बात न कहकर वे निस्तब्ध-भावसे हाथ जोड़कर भगवानका स्मरण करने लगीं।

अन्नपूर्णाके स्नेह-चिह्नित निःशब्द आशीर्वादने आशाके गभीर हृदयमें प्रवेश करके बहुत दिन बाद उसमें शान्ति ला दी। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो उसका अभीष्ट अब सिद्ध होनेवाला ही है। देवता उस-जैसी मूढ़की अवहेलना कर सकते हैं, किन्तु मौसीकी प्रार्थनाको नहीं ठुकरा सकते।

इस तरह आशा अपने हृदयमें आश्वास और बल पाकर बहुत देर बाद

एक दीर्घ निश्वास छोड़कर उठके बैठ गई ; और बोली, "मौसी, बिहारी-लालाजीको एक चिट्ठी लिखकर बुला लो तो अच्छा हो।"

अन्नपूर्णाने कहा, "नहीं, चिट्ठी लिखनेसे काम नहीं चलेगा।"

आशाने कहा, "तो फिर उन्हें खबर कैसे दोगी ?"

अन्नपूर्णाने कहा, "कल मैं ही खुद बिहारीसे मिलनेके लिए जाऊँगी।"

४७

बिहारी जब पश्चिममें घूम रहा था, तब वह अनुभव करने लगा था कि किसी-एक काममें बिना लगे उसे शान्ति नहीं मिल सकती। यही सोचकर उसने कलकत्तेके गरीब क्लर्कोंकी चिकित्सा और शुश्रूषाका भार अपने ऊपर लिया है। ग्रीष्मऋतुमें छोटे गड्ढेकी मछली जैसे कीचड़-शुदा कम पानीमें फड़फड़ाकर दम तोड़ती है, कलकत्तेके गली-निवासी अल्प-उपार्जन-क्षम परिवार-भारग्रस्त क्लर्कोंका वञ्चित जीवन भी ठीक वैसा ही है। उनकी दयनीय दशापर बिहारीका हृदय बहुत दिनोंसे व्यथित रहता था। उनके लिए बिहारीने अब वनकी छाया और गङ्गा-तटकी खुली हवा दान करनेका सङ्कल्प किया है।

कलकत्तेके उस पार बाली-उत्तरपाड़ामें गङ्गाके किनारे उसने एक बगीचा लेकर चीनी बढ़इयोंसे उसमें छोटे-छोटे सुन्दर झोंपड़े बनवाना शुरू कर दिया। किन्तु उसका मन शान्त नहीं हुआ। काममें प्रवृत्त होनेके दिन ज्यों-ज्यों निकट आने लगे, त्यों-त्यों उसका चित्त अपने सङ्कल्पसे विमुख हो उठा। उसका मन बार-बार यही कहने लगा कि 'इस काममें कोई सुख नहीं, कोई रस नहीं, कोई सौन्दर्य नहीं, यह केवल शुष्क भार-मात्र है।' कामकी कल्पनाने बिहारीको इसके पहले कभी भी इस तरह क्लेश नहीं दिया। एक दिन था जब बिहारीको विशेष किसी चीजकी जरूरत नहीं थी ; उसके सामने जो भी कुछ आता था उसमें वह अनायास ही अपनेको लगा सकता था। अब उसके मनमें कैसी-तो एक भूख-सी पैदा हो गई है, पहले उसे मिटाये बिना उसका और किसी बातमें मन ही नहीं लग रहा है। पहलेके अभ्यासवश वह काम छेड़ता जरूर है, पर दूसरे ही क्षण सब छोड़छाड़कर छुटकारा पाना चाहता है।

बिहारीके भीतर जो यौवन निश्चल-भावसे सोया-हुआ था, जिसके विषयमें उसने कभी कुछ सोचा तक नहीं, विनोदिनीकी 'जादूकी लकड़ी'के स्पर्शसे आज वह जाग उठा है, और तुरत-पैदा-हुए गरुड़की तरह वह अपनी खुराकके लिए सारी दुनिया छाने डाल रहा है। इस क्षुधित प्राणीके साथ बिहारीका पहले कोई परिचय नहीं था, किन्तु अब उसके मारे वह हैरान-परेशान है। अब वह कलकत्तेके क्षीण-जीर्ण अल्पायु क्लर्कोंको लेकर क्या करेगा?

आषाढ़की गङ्गा सामनेसे बही चली जा रही है। गङ्गाके उस पार नीले मेघोंकी घन-घटा घने वृक्षोंके ऊपर भारसे झुकी आ रही है। सम्पूर्ण नदी-तल फौलादकी तरवारकी तरह कहीं उज्ज्वल-कृष्णवर्ण धारण किये-हुए है तो कहीं आगकी तरह चकक-चमक उठता है। नवीन वर्षाके इस समारोहपर ज्यों ही बिहारीकी दृष्टि पड़ती है, त्यों ही उसके हृदयका द्वार उद्घाटन करके आकाशके इस नील-स्निग्ध प्रकाशसे न-जाने कौन-तो अकेली निकल आती है! न-जाने कौन अपने स्नान-सिक्त घन-तरङ्गायित कृष्ण केश उन्मुक्त करके सामने आ खड़ी होती है, और वर्षा-आकाशसे विदीर्ण-मेघोंमेंसे विच्छुरित समस्त विच्छिन्न सूर्य-किरणोंको बटोरकर न-जाने कौन एकमात्र उसीके मुँहपर अनिमेष-दृष्टिकी दीप्त कातर प्रार्थना-सी प्रसारित कर जाती है!

पहले जो जीवन उसका सुख-सन्तोषसे बीता है, आज उसे वह परम क्षति समझ रहा है। ऐसी कितनी ही मेघाच्छन्न सन्ध्याएँ और कितनी ही पूर्णिमाकी रातें बिहारीके जीवनमें आई हैं, और वे उसके शून्य हृदयके द्वारके पास आकर सुधापात्र हाथमें लिये-हुए चुपचाप लौट गई हैं,— उस दुर्लभ शुभ-लग्नमें कितने सङ्गीत अनारब्ध और कितने उत्सव असम्पन्न रह गये हैं, उनका कोई ठीक है! बिहारीके मनमें जो पूर्व-स्मृतियाँ थीं, विनोदिनी उस दिनके उद्यत-चुम्बनकी रक्तिम आभासे उन्हें आज ऐसी फीकी और ऐसी अकिञ्चित्कर कर गई! महेन्द्रकी छायाके रूपमें उसके जीवनके अधिकांश दिन कैसे कट गये थे, उनमें क्या चरितार्थता थी? प्रेमकी वेदनामें सम्पूर्ण जल-स्थल-अकाशके केन्द्र-कुहरसे ऐसी रागिनी ऐसी वंशी बजती है, इसका तो अचेतन बिहारी पहले कभी अनुमान भी न कर सका था। जिस विनोदिनीने दोनों बाहुओंसे

वेष्ठित करके क्षण-भरमें अकस्मात् उसे ऐसे अनुपम सौन्दर्य-लोकमें पहुँचा दिया है, उसे वह अब कैसे भूलेगा? विनोदिनीकी वह दृष्टि, उसकी वह आकांक्षा आज जो सर्वत्र व्याप्त हो पड़ी है। विनोदिनीकी उन व्याकुल घनी साँसोंने बिहारीके रक्त-स्रोतको आज जो तरङ्गित कर रखा है और उसके स्पर्शके कोमल उत्तापने बिहारीके पुलकाविष्ट हृदयको आज जो फूलकी तरह प्रफुल्लित कर रखा है! उसे अब वह कैसे भूलेगा?

किन्तु फिर भी उस विनोदिनीसे बिहारी आज इतनी दूर क्यों है? इसका कारण यह है कि विनोदिनीने जिस सौन्दर्य-रससे बिहारीको अभिषिक्त कर दिया है, संसारमें विनोदिनीके साथ उस सौन्दर्यके योग्य किसी सम्बन्धकी वह कल्पना नहीं कर सकता। पङ्कजको उसके जन्म-जलाशयसे विच्छिन्न करनेमें उसके साथ थोड़ा पङ्क भी निकल आता है। किस तरह उसे वह ऐसी जगह स्थापित कर सकता है जहाँ सुन्दर वीभत्स न हो उठे? इसके सिवा, महेन्द्रसे कहीं अगर छीनाझपटी हो गई, तो सारा व्यापार ऐसा कुत्सित आकार धारण कर लेगा कि उसकी सम्भावनाको भी बिहारी अपने मनमें स्थान नहीं दे सकता। इसीलिए बिहारी एकान्त निभृत गङ्गा-तटपर विश्व-सङ्गीतके बीचमें अपनी मानस-प्रतिमाको प्रतिष्ठित करके अपने हृदयको धूपकी तरह दग्ध कर रहा है। इसीलिए वह चिट्ठी लिखकर विनोदिनीकी कोई खबर-सुध नहीं ले रहा है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई ऐसा संवाद मिले जिससे उसका सुख-स्वप्नका जाल छिन्न-विच्छिन्न हो जाय।

मेघाच्छन्न प्रभातमें बिहारी अपने बगीचेके दक्षिणकी तरफ फलसे-भरे जामुनके पेड़के नीचे पड़ा-पड़ा अलस-भावसे गङ्गाकी नावोंका जाना-आना देख रहा था। क्रमशः दिन चढ़ने लगा। नौकरने आकर रसोईके बारेमें पूछा तो बिहारीने कह दिया, "अभी रहने दो।" मिस्त्रियोंके सरदारने आकर कुछ विशेष परामर्शके लिए उसे काम देखनेके लिए ले जाना चाहा तो उसने कह दिया, "अभी नहीं, थोड़ी देर बाद।"

इतनेमें, बिहारी सहसा चौंक उठा, देखा कि सामने अन्नपूर्णा खड़ी हैं। वह भड़भड़ाकर उठ बैठा, और दोनों हाथोंसे अन्नपूर्णाके पाँव पकड़कर जमीनसे

मस्तक लगाकर बहुत देर तक उन्हें प्रणाम करता रहा। अन्नपूर्णा परम स्नेहके साथ उसके माथे और पीठपर अपना दाहना हाथ फेरती रहीं; और फिर अश्रु-विजड़ित स्वरमें बोलीं, "बेटा बिहारी, तू इतना दुबला कैसे हो गया?"

बिहारीने कहा, "फिरसे अपनी चाचीका स्नेह पानेके लिए, चाची!"

सुनकर अन्नपूर्णाकी आँखोंसे झरझर आँसू झरने लगे। बिहारीने चञ्चल होकर कहा, "चाची, तुमने अभी खाया-पीया नहीं होगा?"

अन्नपूर्णाने कहा, "नहीं, अभी मेरा समय नहीं हुआ।"

बिहारीने कहा, "चलो, मैं चलकर रसोईकी तैयारी कर दूं। आज बहुत दिन बाद मैं तुम्हारे हाथकी रसोई और तुम्हारी थालीका प्रसाद पाऊँगा।"

महेन्द्र और आशाके सम्बन्धमें बिहारीने कोई बात ही नहीं छेड़ी। अन्नपूर्णाने एक दिन अपने हाथसे बिहरीके लिए उधरका दरवाजा बन्द कर दिया था। अभिमानके साथ बिहारीने उस निष्ठुर-निषेधका पालन किया है।

भोजन करनेके बाद अन्नपूर्णाने कहा, "नाव घाटमें लगी-हुई है,– तुझे एक बार कलकत्ता चलना पड़ेगा।"

बिहारीने कहा, "कलकत्तेमें मेरा क्या प्रयोजन है, चाची?"

अन्नपूर्णाने, "जीजी बहुत बीमार हैं, तुझे देखना चाहती हैं।"

सुनकर बिहारी चकित हो उठा। बोला, "महेन-भइया कहाँ हैं?"

अन्नपूर्णाने कहा, "वह कलकत्तेमें नहीं है, पश्चिमकी तरफ घूमने गया है।"

सुनते ही बिहारीका चेहरा फक पड़ गया, वह चुप रहा, कुछ बोला नहीं।

अन्नपूर्णाने पूछा, "तुझे क्या सब बातें मालूम नहीं?"

बिहारीने कहा, "-कुछ-कुछ मालूम है,– पर अन्तमें क्या हुआ सो नहीं मालूम।"

तब अन्नपूर्णाने विनोदिनीको लेकर महेन्द्रके पश्चिम भाग जानेकी बात बता दी। बिहारीकी दृष्टिमें उसी क्षण जल-स्थल-आकाशका सारा रङ्ग ही बदल गया। उसके कल्पना-भण्डारमें सञ्चित सम्पूर्ण रस क्षण-मात्रमें तिक्त हो उठा। 'तो क्या मायाविनी विनोदिनी उस दिनकी सन्ध्या-वेलामें मेरे साथ महज एक खेल खेल गई? उसका वह प्रेमका आत्म-समर्पण महज एक छल

था ! वह अपना गाँव छोड़कर निर्लज्ज-भावसे महेन्द्रके साथ अकेली पश्चिम भाग गई ! धिक्कार है उसे, और धिकार है मुझे ! मैं मूढ़ हूं जो एक क्षणके लिए भी मैंने उसका विश्वास किया ।'

हाय री मेघाच्छन्न आषाढ़की सन्ध्या, हाय री वर्षान्तकी पूर्णिमा-रात्रि, तुम्हारा इन्द्रजाल इतनी जल्दी कहाँ बिला गया ?

४८

बिहारी सोच रहा था, दुःखिनी आशाके मुँहकी तरफ वह देखेगा कैसे ? ड्योढ़ीके भीतर जब वह घुसा तो नाथ-हीन घरके घनीभूत विषादने उसे उसी क्षण घेर लिया। घरके दरवान और नौकर-चाकरोंके मुँहकी तरफ देखकर अपने लापता उन्मत्त मित्रके लिए लज्जासे उसका मस्तक झुक गया ; परिचित भृत्योंसे वह पहलेकी तरह स्निग्ध-भावसे कुशल तक न पूछ सका। और अन्तःपुरमें घुसते समय उससे पाँव उठाये नहीं उठने लगे। सारे संसारके सामने असहाय आशाको महेन्द्र प्रकाश्य-रूपसे जिस दारुण अपमानमें झोंककर चला गया है – जो अपमान नारीके चरमतम आवरणको हरण करके उसे सम्पूर्ण संसारकी कुतूहल-पूर्ण कृपादृष्टि-वर्षणके बीच खड़ा कर देता है – उस अपमानके अनावृत प्रकाश्यतामें बिहारी कुण्ठित-व्यथित आशाको देखेगा कैसे ?

किन्तु इन-सब बातोंके सोचने-विचारने और सङ्कोच करनेका अब अवसर नहीं रहा। बहारीके अन्तःपुरमें प्रवेश करते ही आशाने बड़ी तेजीसे आकर उससे कहा, "लालाजी, जल्दी आओ, जल्दीसे चलकर माको देखो, उन्हें बड़ी तकलीफ हो रही है।"

बिहारीके साथ आशाका प्रकाश्य-रूपसे यही पहला आलाप है। दुःखके दिनोंमें आँधीका सिर्फ एक ही मामूली-सा झोका सम्पूर्ण व्यवधानको उड़ा ले जाता है, दूर-दूर रहनेवालोंको सहसा आनेवाली बाढ़ एक सङ्कीर्ण भावमें एकत्र कर देती है।

आशाकी इस सङ्कोच-हीन व्याकुलतासे बिहारीको बड़ी गहरी चोट पहुंची। महेन्द्र अपने घरको क्यासे क्या कर गया है, इस जरा-सी घटनासे ही मानो

वह बहुत ज्यादा समझ गया। दुर्दिनकी ताड़नासे घरका सौन्दर्य जैसे उपेक्षित हो रहा है, घरकी लक्ष्मीकी लज्जा भी उसी तरह अपनी 'श्री'की रक्षा करनेमें असहाय हो गई है, उसका छोटा-मोटा आवरण-अन्तराल और मर्यादा सब-कुछ मानो अलग जा गिरा है, उसकी तरफ नजर उठाकर देखने तककी किसीको फुरसत नहीं है।

बिहारी राजलक्ष्मीके कमरेमें पहुंचा। राजलक्ष्मी अकस्मात् श्वास-कष्टके मारे अत्यन्त बेचैन हो उठी थीं, अब तकलीफ कुछ घट जानेसे जरा जीमें जी आया है। बिहारीने प्रणाम करके उनके चरणोंकी रज माथेसे लगाई; और उनका इशारा पाकर वह उनके पास बैठ गया।

राजलक्ष्मीने कहा, "तू है तो अच्छी तरह? बहुत दिनोंसे मैंने तुझे देखा नहीं।"

बिहारीने कहा, "अपनी बीमारीकी तुमने मुझे खबर क्यों नहीं दी, मा? फिर क्या मैं एक क्षणकी भी देर कर सकता था?"

राजलक्ष्मीने मृदु स्वरमें कहा, "सो क्या मैं नहीं जानती, बेटा? तुझे सिर्फ अपने गर्भमें ही नहीं रक्खा, बाकी, तुझसे बढ़कर दुनियामें अपना मेरा और कौन है बता!" कहते-कहते उनकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे।

बिहारी चटसे उठकर आलेमें रखी-हुई दवाकी शशियाँ वगैरह देखनेके बहाने अपनेको सम्हालनेकी कोशिश करने लगा। लौटकर जब वह राजलक्ष्मी की नाड़ी देखने लगा तो उन्होंने कहा, "मेरी नाड़ी तो रहने दे,- तू अपनी नाड़ीका हाल बता,- इतना दुबला कैसे हो गया?" इतना कहकर राजलक्ष्मी अपना दुर्बल कृश हाथ उठाकर बिहारीके कण्ठमें हाथ फेरकर उसकी दुर्बलताकी परीक्षा करने लगीं।

बिहारीने कहा, "तुम्हारे हाथका मछलीका झोर बगैर खाये मेरी ये हड्डियाँ हरगिज नहीं भर सकतीं, मा। तुम जल्दीसे अच्छी हो जाओ, मा, मैं तब तक रसोईकी तैयारी कर रक्खूंगा।"

राजलक्ष्मी म्लान हँसी हँसकर कहने लगीं, "हाँ, जल्दी तैयारी कर बेटा, पर रसोईकी नहीं।" कहते-हुए उन्होंने बिहारीका हाथ दबा लिया और कहा,

"बेटा, अब तू बहू ले आ,–तेरी सम्हाल करनेवाला कोई नहीं है। ओ मझली-बहू, अबकी तुम बिहारीका ब्याह करा दो,–देखो न, लड़केकी कैसी-तो शकल हो गई है!"

अन्नपूर्णाने कहा, "तुम जल्दीसे अच्छी हो जाओ, जीजी। यह तुम्हारा ही काम है। तुम्हीं सब करोगी-धरोगी,–हम सब तो उसमें शामिल होकर खुशियाँ मनायेंगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मुझे अब समय नहीं मिलनेका, मझली-बहू, बिहारीका भार तुम्हींपर रहा,–इसे सुखी बना देना। मैं इसका ऋण नहीं चुका सकी, पर भगवान इसका भला करेंगे।" यह कहते-हुए उन्होंने अपना हाथ बिहारीके सिरपर फेर दिया।

आशासे अब रहा न गया, वह रोनेके लिए बाहर चली गई। अन्नपूर्णा आँसुओंके भीतरसे बिहारीके चेहरेकी तरफ स्नेह-दृष्टिसे देखने लगीं।

राजलक्ष्मीको सहसा किसी बातकी याद उठ आई, उन्होंने पुकारा, "बहू, ओ बहू!" और आशाके भीतर आते ही उससे कहा, "बहू, बिहारीके लिए तुमने खाने-पीनेका इन्तजाम कर लिया?"

बिहारीने कहा, "मा, तुम्हारे इस पेटू लड़केको अब सब पहचान गये हैं। ड्योढ़ीमें घुसते ही मैंने देखा कि बामी-दासी बड़ी-बड़ी अण्डेवाली कवई मछलियाँ लिये रसोईकी तरफ दौड़ी जा रही है,–मैं समझ गया कि इस घरसे अभी तक मेरी ख्याति मिटी नहीं है।" इतना कहकर वह हँसता-हुआ आशाकी तरफ देखने लगा।

आशा आज शरमाई नहीं। बिहारीके हास्यालापको उसने स्नेहके साथ मुसकुराते-हुए ग्रहण किया। बिहारी इस घरका कितना अपना है, आशा इस बातको पहले जानती ही नहीं थी। कितनी ही बार उसने बिहारीको 'अनावश्यक अगन्तुक' समझकर उसकी अवज्ञा की है, और कितनी ही बार अपने आचरणसे बिहारीके प्रति स्पष्टतः विमुख-भाव प्रकट किया है। आज उन-सब त्रुटियोंके लिए अनुतापके धिक्कारसे आशाकी श्रद्धा और करुणा बिहारी की तरफ जोरोंसे दौड़ने लगी।

राजलक्ष्मीने कहा, "मझली-बहू, महाराजके भरोसे रसोईका काम मत छोड़ देना, आजकी रसोई तुम अपनी देखरेखमें कराना। देखना, आज बिहारीके मनकी सब चीजें बननी चाहिए। हमारा लड़का पूर्व-बंगालका है,— चटपटे मिर्च-मसालेका पूरा ध्यान रखना!"

बिहारीने कहा, "मा, तुम्हारी मा तो थीं विक्रमपुरकी,— तुम नदिया जिलेके शरीफ खानदानके लड़केको पूर्व-बंगालका कैसे कह रही हो! यह तो मुझसे नहीं सहा जायगा।"

इस बातको लेकर बहुत देर तक मजाक होता रहा, और बहुत दिन बाद महेन्द्रके घरका विषाद-भार मानो आज हलका हो गया।

किन्तु बातचीतमें किसी तरफसे किसीने महेन्द्रका नाम नहीं लिया। पहले राजलक्ष्मीकी बिहारीके साथ महेन्द्रकी ही बातें हुआ करती थीं, और इस बातको लेकर खुद महेन्द्रने माकी कितनी ही बार हँसी उड़ाई है। किन्तु आज उन्हीं राजलक्ष्मीके मुंहसे महेन्द्रका नाम एक बार भी न सुनकर बिहारी भीतर ही भीतर स्तम्भित रह गया।

राजलक्ष्मीकी जरा आँख झपकते ही बिहारीने बाहर आकर अन्नपूर्णासे कहा, "माकी बीमारी तो सहज नहीं मालूम होती, चाची!"

अन्नपूर्णाने कहा, "सो तो दीख ही रहा है।" इतना कहकर वे जंगलेके पास बैठ गई। और फिर बहुत देर तक चुप रहकर बोलीं, "एक बार तू किसी तरह महेन्द्रको नहीं बुला सकेगा? अब तो देर करना उचित नहीं, बेटा!"

बिहारी कुछ देर निरुत्तर रहकर बोला, "तुम जैसी आज्ञा दोगी, मैं वैसा ही करूँगा। उसका पता-ठिकाना किसीको मालूम है?"

अन्नपूर्णाने कहा, "ठीक-ठीक किसीको नहीं मालूम, पता लगाना पड़ेगा। हां, एक बात तुझसे और कहती हूं, बिहारी, तू जरा आशाके मुँहकी तरफ देख। उसके मुंहकी तरफ देखते ही तू समझ जायगा, उसकी छातीमें कैसा मृत्युवाण चुभा-हुआ है।"

बिहारी मन-ही-मन तीव्र हँसी हँसकर सोचने लगा, 'दूसरोंका उद्धार करने मैं जाऊँगा, भगवान, पर मेरा उद्धार कौन करेगा? उसने कहा, "विनोदिनीके

आकर्षणसे हमेशा उसे बचाये रखूँ, ऐसा मन्त्र मैं क्या जानता हूं, चाची ?" माकी बीमारीमें वह दो दिनके लिए शान्त होकर रह सकता है, किन्तु फिर वह उस तरफ नहीं मुड़ेगा, यह कौन कह सकता है !"

इतनेमें मलिन-वसना आशा आधा घूँघट काढ़े धीरेसे आई और अपनी मौसीके पैरोंके पास बैठ गई। वह जानती थी कि इन दोनोंमें राजलक्ष्मीकी बीमारीके बारेमें बातचीत हो रही होगी, इसलिए वह उत्सुकताके साथ सुनने चली आई। पतिव्रता आशाके चेहरेपर निस्तब्ध दुःखकी नीरव महिमा देखकर बिहारीके मनमें एक अपूर्व भक्तिका सञ्चार हुआ। दुःख-शोकके तप्त तीर्थ-जलसे अभिषिक्त होकर इस तरुणी रमणीने प्राचीन-युगकी देवियोंके समान एक अचञ्चल मर्यादा प्राप्त कर ली है,– इस समय वह साधारण नारी नहीं मालूम होती, आज मानो उसने दारुण दुःखमें पुराण-वर्णिता साध्वियोंके समान अवस्था प्राप्त कर ली है।

बिहारीने राजलक्ष्मीके पथ्य और दवाके विषयमें आशाके साथ बातचीत करके जब उसे विदा किया तब एक लम्बी साँस छोड़ते-हुए अन्नपूर्णासे कहा, "महेन्द्रका मैं उद्धार करूँगा ही।"

इसके बाद उसने बैङ्कमें जाकर पता लगा लिया कि कुछ दिनोंसे महेन्द्रका लेन-देन इलाहाबाद-ब्राञ्चसे चालू हुआ है।

४९

हवड़ा-स्टेशनपर विनोदिनी अपनी इच्छासे इण्टर-क्लासके जनाने-डब्बेमें बैठ गई। महेन्द्रने कहा, "यह क्या कर रही हो! मैंने तुम्हारे लिए सेकेण्ड क्लासका टिकट लिया है।"

विनोदिनीने कहा, "जरूरत क्या है सेकेण्ड-क्लासकी,– मुझे यहीं ज्यादा आराम रहेगा।"

महेन्द्रको आश्चर्य हुआ। विनोदिनी स्वभावसे ही शौकीन थी। पहले गरीबीका कोई लक्षण ही उसे अच्छा नहीं लगता था। अपनी सांसारिक दीनताको वह अपमानजनक ही समझती थी।

महेन्द्र समझता था कि उसके घरके अमीरी चाल-चलन, विलास-उपकरण और समाजमें धनाढ्यके रूपमें ख्यातिके गौरवने ही किसी समय विनोदिनीका मन उसकी ओर आकर्षित हुआ था; और इस कल्पनाने उसके मनको अत्यन्त उत्तेजित कर दिया था कि वह अनायास ही उस धन-सम्पदाकी, सब तरहके आराम और गौरवकी, अधीश्वरी हो सकती है। किन्तु आज जब उसका महेन्द्रपर प्रभुत्व प्राप्त करनेका समय आया, बिना माँगे ही जब वह महेन्द्रकी सारी धन-सम्पदा अपने भोगमें ला सकती थी तब क्यों वह ऐसी असह्य उपेक्षा के साथ अत्यन्त उद्धत-भावसे कष्टदायक लज्जा-दायक दीनता स्वीकार किये ले रही है?

महेन्द्रके प्रति अपनी निर्भरताको विनोदिनी यथासम्भव संकुचित किये रखना चाहती है। जिस उन्मत्त महेन्द्रने विनोदिनीको उसके स्वाभाविक आश्रय-स्थलसे हमेशाके लिए विच्युत कर दिया है, उस महेन्द्रके हाथसे वह ऐसा कुछ भी नहीं चाहती जो उसके सर्वनाशके मूल्य-स्वरूप गिना जा सके।

विनोदिनी जब महेन्द्रके घरमें थी तब उसके आचरणमें वैधव्य-व्रतकी कठोरता विशेष-कुछ नहीं थी, किन्तु इतने दिन बाद वह अपनेको सर्वप्रकारके भोगोंसे वञ्चित कर रही है। अब वह एक वक्त खाती है, मोटे कपड़े पहनती है। और उसका वह अनर्गल हास्य-परिहास अब कहाँ चला गया? अब तो वह ऐसी स्तब्ध, ऐसी आवृत, ऐसी सुदूर और ऐसी भीषण हो उठी है कि महेन्द्रको उससे एक साधारण-सी बात भी जोरसे करनेकी हिम्मत नहीं पड़ती। महेन्द्र विस्मत होकर क्रुद्ध होकर बार-बार यही सोचने लगा कि 'विनोदिनीने पहले तो मुझे इतनी कोशिशसे दुर्लभ फलकी तरह इतनी ऊँची डालीसे तोड़ लिया, और अब वह उसे बिना सूंघे ही इस तरह दूर फेंके दे रही है, इसका कारण क्या?' महेन्द्रने पूछा, "तो अब कहाँका टिकट करवाऊँ बताओ?"

विनोदिनीने कहा, "पश्चिमकी तरफ जहाँ खुशी हो, चलो,—कल सवेरे जहाँ गाड़ी ठहरेगी वहीं उतर जाना है।"

इस तरहका भ्रमण महेन्द्रके लिए लोभनीय नहीं हो सकता। आराममें खलल पड़ना उसके लिए कष्टदायक है। बड़े शहरमें अच्छी जगह न रहना

उसके लिए एक मुसीबत है। वह देख-भालकर तलाश करके ठीक इन्तजाम करनेवाला आदमी ही नहीं। इसलिए वह अत्यन्त क्षुब्ध-विरक्त मनसे गाड़ीमें सवार हुआ। और फिर थोड़ी देर बाद बार-बार उसे भय होने लगा कि विनोदिनी उससे बगैर कहे-सुने ही कहीं बीच ही में न उतर पड़े।

विनोदिनी इसी प्रकार शनि-ग्रहकी तरह खुद घूमने लगी और साथ-साथ महेन्द्रको भी घुमाने लगी। कहीं भी महेन्द्रको जरा विश्राम नहीं लेने देती। विनोदिनीमें एक खास गुण यह था कि वह बहुत जल्द लोगोंसे हिल-मिल सकती है। इसलिए जल्दी ही वह गाड़ीकी सहयात्रिनियोंसे मेल-जोल कर लेती थी। जहाँ जानेकी उसकी इच्छा होती, वहाँके सब हालचाल वह पहलेसे ही जान लेती थी। यात्री-शालामें ठहरती, और जहाँ जो-कुछ देखनेका होता, देख लिया करती। इस तरह महेन्द्र विनोदिनीके लिए अपनी अनावश्यकता देखकर प्रतिदिन अपनेको हतमान अनुभव करने लगा। टिकट खरीद देनेके सिवा उसका और कोई काम ही न था। बाकी समयमें उसकी प्रवृत्ति उसको दंशन किया करती और वह अपनी प्रवृत्तिको। शुरू-शुरूमें कुछ दिनों तक वह विनोदिनीके साथ-साथ रास्ते-रास्ते घूमता रहा था, किन्तु बादमें क्रमशः यह उसके लिए असह्य हो उठा। अब तो वह खा-पीकर सोनेकी कोशिश किया करता है, और विनोदिनी दिन-भर घूमा करती है। इसके पहले इस बातकी कभी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि माका लड़का महेन्द्र किसी दिन इस तरह इधरसे उधर मारा-मारा फिरा करेगा।

एक दिन, इलाहाबाद स्टेशनपर दोनों जने गाड़ीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। किसी आकस्मिक कारणसे गाड़ी आनेमें देर हो रही थी। इस बीचमें विनोदिनी और-ओर गाड़ियोंके यात्रियोंको घूम-फिरकर देख रही थी। पश्चिममें घूमते घूमते और चारों तरफ देखते-देखते अकस्मात् कहीं कोई दिखाई दे जायगा, शायद यही उसे आशा थी। कमसे कम बन्द गलीमें जन-हीन घरमें निश्चल उद्यमसे अपनेको प्रतिदिन, दबाकर मारनेकी अपेक्षा इस नित्यकी अनुसन्धान-प्रवृत्तिमें, इस उन्मुक्त मार्गके जन-कोलाहलमें, अधिक शान्ति है।

अचानक स्टेशनकी एक काँचकी ढक्कनदार सूचना-पेटिकापर दृष्टि पड़ते

ही विनोदिनी चौंक पड़ी। डाकखानेकी उस पेटीमें जिन लोगोंका ठीक पता नहीं चलता उनके पत्र प्रदर्शित किये जाते हैं। विनोदिनीने देखा कि उसमें एक पत्र बिहारीके नामका भी है। 'बिहारीलाल' नाम कोई असाधारण नहीं, और उस पत्रका बिहारी विनोदिनीका अभीष्ट बिहारी ही हो ऐसा समझनेका भी कोई कारण नहीं था,—फिर भी बिहारीका पूरा नाम देखकर उसके मनमें अपने एकमात्र बिहारीके सिवा और किसी बिहारीका सन्देह ही नहीं हुआ। पत्रपर लिखे-हुए पतेको उसने कण्ठस्थ कर लिया। और फिर जिस बेञ्चपर महेन्द्र अत्यन्त अप्रसन्न-मुखसे बैठा था उसपर आकर बैठ गई; और उससे बोली, "मैं तो कुछ दिन इलाहाबादमें ही रहूंगी।"

विनोदिनी महेन्द्रको अपनी इच्छाके अनुसार चला रही है, किन्तु उसके क्षुधित अतृप्त हृदयको जरा भी खुराक नहीं दे रही, इससे महेन्द्रका पौरुषाभिमान प्रतिदिन आहत हो-होकर उसके हृदयमें विद्रोह पैदा कर रहा था। इलाहाबादमें कुछ दिन रहकर जरा विश्राम ले ले तो वह जी जाय; किन्तु इच्छाके अनुकूल होनेपर भी विनोदिनीकी खामखयालीपर सम्मति देनेमें सहसा उसका मन विद्रोही हो उठा। उसने कुछ गुस्सेसे कहा, "जब चलनेके लिए निकल ही पड़े हैं तब चलेंगे ही! रुकेंगे नहीं।"

विनोदिनीने कहा, "मैं नहीं जाऊँगी।"

महेन्द्रने कहा, "तो तुम अकेली रहो,—मैं जाता हूं।"

विनोदिनीने कहा, "अच्छी बात है।" और उसी वक्त इशारेसे कुली बुलाकर अपने सामानके साथ वह स्टेशनसे बाहर चल दी।

महेन्द्र अपने पुरुष-कर्तृत्व-अधिकारको लिये बेञ्चपर बैठा रहा। और जब तक विनोदिनी दीखती रही तब तक वह स्थिर होकर बैठा रहा। विनोदिनीने जब एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा और सीधी बाहर निकल गई तब वह जल्दीसे कुलियोंके सरपर अपना सामान लादकर लपकता-हुआ उसके पीछे-पीछे चल दिया।

बाहर जाकर उसने देखा, विनोदिनी एक घोड़ा-गाड़ीमें बैठ चुकी है। महेन्द्र मुँहसे कुछ बोला नहीं, गाड़ीकी छतपर अपना सामान रखवाकर खुद

कोचबक्सपर बैठ गया। अपने अहङ्कारको छोटा करके गाड़ीके भीतर विनोदिनी के सामने बैठने-लायक उसका मुँह ही नहीं रहा।

किन्तु गाड़ी तो चलती ही चली जा रही है! करीब एक घण्टा हो चुका, क्रमशः शहरकी बस्ती छूट गई, और फिर चारों तरफ खेत दिखाई देने लगे। कोचवानसे कुछ पूछनेमें महेन्द्रको शरम मालूम होने लगी ; कारण, इससे वह समझ जायगा कि भीतर जो मालिकिन बैठी है, उसने इस अनावश्यक पुरुषसे इतनी भी सलाह नहीं की कि कहाँ जाना है! महेन्द्र अपने रुष्ट अभिमानको भीतर-ही-भीतर हजम करके चुपचाप कोचबक्सपर बैठा रहा।

गाड़ी निर्जन यमुनाके किनारे एक शानदार बगीचेके भीतर जाकर ठहरी। महेन्द्र आश्चर्यसे दंग रह गया। सोचने लगा, 'यह किसका बगीचा है, इस बगीचेका ठिकाना विनोदिनीको कैसे मालूम हुआ ?'

बगीचेके भीतरका मकान बन्द था। कई बार पुकारनेके बाद एक बूढ़ा दरवान बाहर निकल आया। विनोदिनीके प्रश्नका उत्तर देते-हुए उसने कहा, "बगीचेके मालिक यहांके बड़े रईसोंमेंसे हैं,– उनका मकान यहांसे बहुत ज्यादा दूर नहीं है। आपलोग उनकी मंजूरी ले आइये, फिर आप शौकसे यहां रह सकते हैं।"

विनोदिनी महेन्द्रके मुँहकी तरफ देखने लगी। महेन्द्रका मन इस मनोहर स्थानको देखकर मुग्ध और लुब्ध हो रहा था। लम्बे समयके बाद कुछ दिन स्थितिकी सम्भावना देखकर वह प्रफुल्लित हो उठा ; और विनोदिनीसे बोला, "तो चलो, वहीं चले चलें। तुम बाहर गाड़ीमें बैठी रहना, मैं भीतर जाकर किराया वगैरह तय करके रहनेकी मंजूरी ले आऊँगा।"

विनोदिनीने कहा, "मुझसे अब घूमा नहीं जायगा,– तुम जाओ, तब तक मैं यहाँ आराम करूँ। डरनेकी कोई बात नहीं।"

महेन्द्र गाड़ी लेकर चला गया। विनोदिनी उस बूढ़े ब्राह्मण दरवानको अपने पास बुलाकर उससे बाल-बच्चोंके बारेमें पूछ-ताछ करने लगी। बात करते-करते जब उसने सुना कि उसकी स्त्री भी मर चुकी है तब वह यह कहकर

सहानुभूति प्रकट करने लगा कि 'अरे रे, तब तो तुम्हें बड़ी-भारी तकलीफ होती होगी। बोलो भला, इस उमरमें तुम अकेले रह गये! तुम्हारी देख-भाल करनेवाला कोई भी नहीं!'

इसके बाद बातचीतके सिलसिलेमें विनोदिनीने पूछा, "बिहारी-बाबू यहाँ रहते थे न?"

बूढ़ेने कहा, "हाँ, कुछ दिन रहे तो थे यहाँ। तो, आप उन्हें जानती हैं क्या?"

विनोदिनीने कहा, "मेरे तो मेरे रिश्तेदार हैं।"

विनोदिनीको दरवानके मुँहसे बिहारीका जो-कुछ विवरण और वर्णन मालूम हुआ, उससे उसके मनमें कोई सन्देह नहीं रहा कि वह उसीका बिहारी है। उसने बूढ़ेसे कहकर वे कमरे खुलवाकर देखे जिनमें बिहारी सोता था और बैठता था। बिहारीके चले जानेके बादसे वे कमरे बन्द पड़े थे, इससे उसे ऐसा लगने लगा कि मानो अदृश्य बिहारीका सञ्चरण अब भी इन कमरोंमें जमा-हुआ है, हवा उसे अभी भी उड़ाकर ले नहीं जा सकी है। विनोदिनीने घ्राणसे उसे सूंघकर अपना हृदय भर लिया, स्तब्ध हवाके स्पर्शसे अपने सर्वाङ्गको पुलकित कर लिया। किन्तु बिहारी कहाँ गया है, इसका पता वह नहीं लगा सकी। हो सकता है कि वह फिर यहाँ आवे, किन्तु स्पष्ट कुछ नहीं जान सकी। दरवानने यह आश्वासन दिया कि वह अपने मालिकसे पूछकर बतायेगा।

इतनेमें पेशगी किराया देकर और रहनेकी मंजूरी लेकर महेन्द्र वापस आ गया।

५०

हिमालय-शिखर जिस यमुनाको तुषार-स्रुत अक्षय जल-धारा दे रहा है और युग-युगके कवियोंने मिलकर जिस यमुनामें कवित्व-स्रोत बहाया है, वह अक्षय है, वह चिरस्थायी है। इसकी कल-ध्वनिमें न-जाने कितने विचित्र छन्द ध्वनित हो रहे हैं, और इसकी तरङ्ग-लीलामें न-जाने कितने युगोंका पुलकोच्छ्वसित भावावेग उद्वेलित हो रहा है, कौन कह सकता है!

प्रदोष-कालमें उस यमुनाके तटपर महेन्द्र आकर जब बैठा, तब घनीभूत प्रेमके आवेशने उसकी दृष्टिमें, उसके निःश्वासमें, उसकी शिराओंमें, उसकी अस्थियोंमें प्रगाढ़ मोह-रसका प्रवाह सञ्चारित कर दिया। आकाशमें सूर्यास्त-किरणोंकी स्वर्ण-वीणा वेदनाकी मूर्च्छनामें एक अश्रुतपूर्व सङ्गीतमें झंकृत हो उठी।

विस्तीर्ण निर्जन बालू-तटपर वचित्र वर्णच्छटामें दिन धीरे-धीरे समाप्त हो गया। महेन्द्र मानो काव्य-लोकमें पहुंच गया, और अर्ध-निमीलित नेत्रोंसे वृन्दावनके गोधूलि-जालमें अपने-अपने गोष्ठको लौटनेवाली धेनुओंका हम्बारव सुनने लगा।

वर्षाके मेघोंसे आकाश आच्छन्न हो आया। अपरिचित स्थानका अन्धकार केवल कृष्णवर्णका आवरण ही नहीं होता, किन्तु विचित्र रहस्यसे परिपूर्ण होता है। उसमेंसे जो थोड़ी-सी आभा अथवा आकृति दिखाई देती है वह अज्ञात अनुच्चारित भाषामें बातें करती है। उस पारकी रेतीकी अस्फुट पाण्डुरताने, निस्तरङ्ग जलकी मसी-कृष्ण कालिमाने, बगीचेके घन-पल्लव विशाल निम्ब-वृक्षकी पुञ्जीभूत निस्तब्धताने, तरु-हीन म्लान धूसर तटकी बङ्किम रेखाने, सब-कुछने आषाढ़-सन्ध्याके उस प्रदोष-अन्धकारमें विविध अनिर्दिष्ट अपरिस्फुट आकारोंमें एकसाथ मिलकर महेन्द्रको मानो चारों तरफसे घेरकर बन्दी बना लिया।

'पदावली'-साहित्यमें वर्णित 'वर्षाभिसार' की महेन्द्रको याद उठ आई। अभिसारिका घरसे चल पड़ी है। यमनाके उस तटपर वह अकेली आकर खड़ी हुई है। किन्तु पार कैसे होगी? "पार करौ जी, मोहिं पार करौ"—महेन्द्रके हृदयके भीतर बार-बार यही एक पुकार आ-आकर आघात करने लगी—"पार करौ जी, मोहिं पार करौ।"

नदीके उस पार बहुत दूर अँधेरेमें खड़ी है वह अभिसारिका, किन्तु फिर भी महेन्द्रने उसे स्पष्ट देख लिया। उसका कोई काल नहीं, उसकी कोई उमर नहीं, चिरकालीन गोप-बाला है वह, किन्तु फिर भी महेन्द्र उसे पहचान गया, विनोदिनी है वह, अपने सम्पूर्ण विरह सम्पूर्ण वेदना सम्पूर्ण यौवन-भारको लेकर वह उस कालसे यात्रा करके—न-जाने कितने गीत और कितने छन्दोंमें होती हुई—आजके कालमें आ पहुंची है। आजके इस निर्जन यमुना-तटके ऊपरके

आकाशमें उसीका तो कण्ठस्वर सुनाई दे रहा है – "पार करौ जी, मोहिं पार करौ !" – पार पहुंचानेवाली नावके लिए वह इस अन्धकारमें और कब तक इस तरह अकेली खड़ी रहेगी ? – "पार करौ जी, मोहिं पार करौ !"

बादलोंके जरा फटते ही आकाशमें कृष्णपक्षकी तृतीयाका चाँद निकल आया। ज्योत्स्नाके माया-मन्त्रसे वह नदी और नदी-तट, वह आकाश और आकाशका सीमान्त मानो इस पृथ्वीसे बिलकुल बाहर चला गया। मानो अब मृर्त्यका कोई बन्धन ही न रहा। मानो कालकी सम्पूर्ण धारावाहिकता टूट गई, अतीत-कालका समस्त इतिहास लुप्त हो गया, भविष्यत्-कालका समस्त फलाफल अन्तर्हित हो गया, केवल-मात्र यह रजत-धारा-प्लावित वर्तमान-काल ही यमुना और यमुना-तटके बीच महेन्द्र और विनोदिनीको लिये-हुए विश्व-विधानके बाहर चिरस्थायी हो रहा।

महेन्द्र मतवाला हो उठा। विनोदिनी आज उसे अस्वीकार कर देगी, ज्योत्स्ना-रात्रिके इस निर्जन स्वर्ग-खण्डको लक्ष्मीके रूपमें सुसम्पूर्ण नहीं करेगी, इस बातकी वह कल्पना ही न कर सका। वह उसी क्षण उठकर विनोदिनीको ढूँढ़नेके लिए बंगलेकी तरफ चल दिया।

शयन-गृहमें जाकर उसने देखा, सारा घर फूलोंकी सुगन्धसे भर उठा है। उन्मुक्त वातायन-पथसे ज्योत्स्नाका प्रकाश शुभ्र-शय्यापर आकर पड़ रहा है। विनोदिनीने बगीचेसे फूल चुनकर उनसे मालाएँ गूँथकर जूड़ेमें लपेटी हैं, गलेमें पहनी हैं, करधनीकी तरह कमरसे बाँधी हैं,– फूलोंसे भूषित होकर आज वह वसन्तऋतुकी पुष्प-भारसे झुकी-हुई भू-लुण्ठित लताकी तरह चाँदनीकी शुभ्र शय्यापर पड़ी-हुई है।

महेन्द्रका मोह दूना हो उठा। उसने अवरुद्ध कण्ठसे कहा, "विनोद, मैं यमुना-किनारे तुम्हारी प्रतीक्षामें बैठा था,– तुम यहाँ प्रतीक्षा कर रही हो, आकाशके चाँदने मुझे यह संवाद दिया, और मैं चला आया।"

इतना कहकर महेन्द्र बिस्तरपर बैठनेके लिए अग्रसर हुआ।

विनोदिनी चौंककर बड़ी तेजीसे उठ बैठी, और अपना दाहना हाथ हिलाती-हुई बोली, "जाओ, तुम जाओ। तुम इस बिछौनेपर मत बैठाना।"

तीव्रगतिसे बहती-हुई पाल-शुदा नाव सहसा बालू-चरसे टकराकर जहाँकी तहाँ रुक गई। महेन्द्र स्तम्भित होकर खड़ाका खड़ा ही रह गया। बहुत देर तक उसके मुँहसे कोई बात ही नहीं निकली। और विनोदिनी इस डरसे कि, कहीं महेन्द्र उसका कहा न माने, बिछौनेसे उठकर उसके सामने आ खड़ी हुई।

महेन्द्रने कहा, "तो फिर तुमने किसके लिए यह श्रृङ्गार किया है? यहाँ पड़ी-पड़ी तुम किसकी प्रतीक्षा कर रही थीं?"

विनोदिनीने दोनों हाथोंसे अपनी छातीको दबाते-हुए कहा, "जिसके लिए श्रृङ्गार किया है वह मेरे हृदयके भीतर है।"

महेन्द्रने कहा, "कौन है वह? – बिहारी?"

विनोदिनीने कहा, "उसका नाम तुम अपने मुँहसे उच्चारण न करो।"

"उसीके लिए तुम पश्चिममें घूमती-फिरती हो?"

"हाँ, उसीके लिए।"

"उसीके लिए तुम यहाँ पतीक्षा कर रही थीं?"

"हाँ, उसीके लिए।"

"उसका पता मालूम कर लिया है?

"नहीं, किन्तु जैसे भी होगा, मैं उसका पता लगाकर ही रहूंगी।"

"किन्तु मैं हरगिज नहीं लगाने दूंगा।"

"न लगाने दोगे तो न सही,– किन्तु याद रखना, मेरे हृदयसे उसे तुम किसी भी तरहसे नहीं निकाल सकोगे।" इतना कहकर विनोदिनीने आँखें मींचकर अपने हृदयमें फिर एक बार बिहारीका अनुभव कर लिया।

महेन्द्र उस पुष्पाभरणा विरह-विधुर-मूर्ति विनोदिनीके द्वारा एक-ही-साथ प्रबल वेगसे आकृष्ट और प्रत्याख्यात होकर अकस्मात् भीषण हो उठा। और अपनी मुट्ठी उठाकर कहने लगा, "छुरीसे चीरकर मैं तुम्हारी छातीके भीतरसे उसे निकाल बाहर करूंगा!"

विनोदिनीने अविचलित-मुखसे कहा, "तुम्हारे प्रेमकी अपेक्षा तुम्हारी छुरी मेरे हृदयमें आसानीसे घुस जायगी।"

"तुम मुझसे डरतीं क्यों नहीं? यहाँ तुम्हारा रक्षक कौन है?"

"तुम मेरे रक्षक हो। तुम खुद अपने-आपसे मेरी रक्षा करोगे।"

"इतनी श्रद्धा, इतना विश्वास, क्या अब भी तुम्हारे अन्दर बाकी है?"

"इतना अगर न होता, तो मैं आत्मघात करके मर जाती,– तुम्हारे साथ नहीं निकलती।"

"फिर मर क्यों नहीं गईं? इतनेसे विश्वासकी फाँसी मेरे गलेमें डालकर मुझे देश-देशान्तरमें क्यों घसीटती फिरती हो? तुम्हारे मर जानेसे कितना मङ्गल होता, जरा सोच तो देखो!"

"मैं सब जानती हूं,– किन्तु जब तक बिहारीकी आशा है तब तक मैं मर नहीं सकती।"

"किन्तु जब तक तुम नहीं मरतीं तब तक मेरी प्रत्याशा भी नहीं मर सकती; और इसके बिना मरे मैं भी छुटकारा नहीं पा सकता। आजसे मैं सर्वान्तःकरणसे भगवानसे कामना करूँगा कि तुम मरो। तुम मेरी भी न होना और बिहारीकी भी न होना। तुम जाओ। मुझे छुट्टी दो। मेरी मा रो रही हैं, मेरी स्त्री रो रही है,– उनके आँसू मुझे दूरसे दग्ध कर रहे हैं। जब तक तुम नहीं मरतीं, जब तक तुम मेरी और संसारके और-सबकी आशाके अतीत नहीं चली जातीं, तब तक मुझे उनके आँसू पोंछनेका अवसर नहीं मिलनेका।"

इतना कहकर महेन्द्र दौड़ता-हुआ बाहर चला गया। विनोदिनी अकेली पड़ी अपने चारों तरफ जो मोह-जाल रच रही थी, उसे वह छिन्न-विच्छिन्न कर गया। विनोदिनी चुपचाप खड़ी-खड़ी बाहरकी तरफ देखती रही। आकाश-भरी चाँदनी बिलकुल सूनी हो गई? उसका सारा-का-सारा सुधा-रस क्षणमें कहाँ बिला गया? सामनेका वह क्यारियोंवाला बगीचा, उसके आगेका वह बालू-तट, उसके आगेकी यमुना, उसके आगेकी उस पारकी अस्फुटता – सब-कुछ मानो एक बड़े कागजपर पेन्सिलसे अङ्कित चित्र मात्र है – सब-कुछ नीरस और निरर्थक।

महेन्द्रको विनोदिनीने कैसे प्रबल वेगसे आकर्षित किया है और प्रचण्ड आंधी बनकर कैसे उसे वह जड़से उखाड़ लाई है, इस बातका अनुभव करके

आज उसका हृदय और भी ज्यादा अशान्त हो उठा। विनोदिनी सोचने लगी, 'मुझमें तो ये सभी शक्तियाँ हैं, फिर क्यों नहीं बिहारी पूर्णिमा-रात्रिके उद्वेलित समुद्रकी तरह मेरे सामने आकर गिर पड़ता ? क्यों एक अनावश्यक प्रेमका प्रबल अभिघात प्रतिदिन मेरे ध्यानमें आकर रो रहा है ? और एक आगन्तुक क्रन्दन बार-बार आकर क्यों मेरे अन्तःकरणके क्रन्दनको परिपूर्ण अवकाश नहीं दे रहा ? उसने जो इस तरहके एक प्रचण्ड आन्दोलनको जगा रखा है उसे लेकर मैं क्या करूंगी ?'

आज जिन फूलोंकी मालाओंसे विनोदिनीने अपनेको विभूषित किया था उनपर महेन्द्रकी मुग्ध दृष्टि पड़ जानेसे उसने उन-सबको तोड़-मसलकर अलग फेंक दिया। वह सोचने लगी, उसकी सारी शक्ति वृथा है, उसकी सारी चेष्टाएँ वृथा हैं, उसका जीवन वृथा है,– यह कानन, यह चाँदनी, यह यमुना-तट, यह अपूर्व-सुन्दर संसार, सब-कुछ वृथा है, वृथा है।

इतनी व्यर्थता है, तो भी, जो जहाँ है वह वहीं खड़ा है,– संसारमें किसीका भी लेशमात्र परिवर्तन नहीं हुआ। कल फिर सूर्यका उदय होगा और संसार अपना छोटेसे छोटा काम करना भी नहीं भूलेगा। और बिहारी जैसे दूर था वैसे ही दूर रहकर ब्राह्मण-बालकको रोजकी तरह 'बोधोदय'का नया पाठ पढ़ायेगा।

विनोदिनीकी आँखें फट गईं और उनमेंसे आँसू निकल पड़े। आखिर वह अपने सम्पूर्ण बल और आकांक्षाको लिये-हुए किस पत्थरको ढकेल रही है ? उसका हृदय रक्तमें बह गया, किन्तु उसका अदृष्ट सूच्याग्र-प्रमाण भी टससे मस नहीं हुआ।

५१

महेन्द्रको रात-भर नींद नहीं आई और अन्तमें श्रान्त-क्लान्त शरीर जब शिथिल हो आया तब भोरके वक्त उसकी आँख लग गई। काफी दिन चढ़नेके बाद आठ-नौ बजे उसकी आँख खुली तो वह भड़भड़ाकर उठ बैठा। गत रात्रिकी कोई-एक असमाप्त वेदना नींदके भीतर-ही भीतर मानो प्रवाहित हो

रही थी। सचेतन होते ही महेन्द्र उसकी व्यथा अनुभव करने लगा। कुछ देर बाद ही रातकी सारी घटना उसके मनमें स्पष्ट होकर जाग उठी। सवेरेकी सूर्य-किरणोंमें अपनी अतृप्त निद्राकी क्लान्तिसे उसे समस्त जगत और जीवन अत्यन्त नीरस मालूम होने लगा। घर छोड़नेकी ग्लानि, धर्म त्यागनेका गभीर सन्ताप और अपने इस उद्भ्रान्त जीवनका सम्पूर्ण अशान्ति-भार महेन्द्र किसके लिए वहन कर रहा है? मोहावेश-शून्य प्रभातके प्रकाशमें महेन्द्रको ऐसा लगने लगा कि वह विनोदिनीसे प्रेम नहीं करता। सड़ककी तरफ उसने आँख उठाकर देखा कि सारा जाग्रत संसार व्यस्तताके साथ अपने काममें जुट पड़ा है। और उसी क्षण महेन्द्रकी दृष्टिके आगे सम्पूर्ण आत्म-गौरवको पङ्कमें डुबो कर एक विमुख नारीके चरणोंमें अकर्मण्य जीवनको प्रतिदिन आबद्ध रखनेकी जो मूढ़ता थी वह सुस्पष्ट हो उठी।

असलमें, प्रबल आवेगके उच्छ्वासके बाद हृदयमें एक तरहका अवसाद आ जाता है, और क्लान्त हृदय तब अपनी अनुभूतिके विषयको कुछ समयके लिए दूर हटाये रखना चाहता है। भाव-समुद्रके इस भाटेके समय तलेका सारा-का-सारा दबा-हुआ पङ्क बाहर निकल आता है,– जो मोह लाता था उससे वितृष्णा हो जाती है। महेन्द्र किस लिए अपनेको इस तरह अपमानित कर रहा है, सो आज वह नहीं समझ सका। आज वह अपने मनमें कहने लगा, 'मैं सब तरहसे विनोदिनीसे श्रेष्ठ हूं, फिर भी आज मैं सब तरहकी हीनता और लांछना स्वीकार करके घृणित भिक्षुककी तरह उसके पीछे-पीछे अहोरात्र दौड़ता फिर रहा हूं! ऐसा अद्भुत पागलपन किस शैतानने मेरे दिमागमें भर दिया?' विनोदिनी महेन्द्रके लिए आज एक नारीके सिवा और कुछ नहीं। विनोदिनीके चारों तरफ समस्त पृथ्वीके सौन्दर्यसे, समस्त काव्योंसे, समस्त कहानियोंसे जो एक लावण्य-ज्योति आकृष्ट हो रही थी, आज वह माया-मरीचिकाकी तरह अन्तर्धान हो गई; और तब मात्र एक साधारण नारी बच रही, उसमें किसी तरहकी अपूर्वता या विशेषता नहीं रही।

तब महेन्द्र इस धिक्कृत मोह-चक्रसे अपनेको छुड़ाकर घर जानेके लिए व्यग्र हो उठा। जो शान्ति, जो प्रेम और जो स्नेह उसके पूर्व-जीवनमें था, आज

वही उसे दुर्लभतम अमृत-सा मालूम होने लगा। बिहारीका आशैशव अटल-निर्भर बन्धुत्व उसे आज महामूल्य मालूम होने लगा। वह मन-ही-मन कहने लगा, 'जो वास्तवमें गभीर और स्थायी है, उसमें बिना-चेष्टाके बिना-बाधाके अपनेको सम्पूर्णतः निमग्न रखा जा सकता है, इसीसे हम उसके गौरवको नहीं समझ पाते। और जो चञ्चल छलना-मात्र है, जिसकी परितृप्तिमें भी लेशमात्र सुख नहीं, वह पीछेसे खदेड़-खदेड़कर हमें घुड़दौड़के घोड़ेकी तरह दौड़ाती रहती है,– इसीलिए उसे हम कामनाकी वस्तु समझते हैं।'

महेन्द्र मन-ही-मन कह उठा, 'आज ही मैं घर लौट जाऊँगा। विनोदिनी जहाँ भी रहना चाहेगी वहाँ उसके रहनेकी व्यवस्था करके मैं मुक्त होऊँगा।' ये अन्तिम शब्द – 'मैं मुक्त होऊँगा'– उसके मुँहसे दृढ़ताके स्वरमें निकल पड़े, और उससे उसके मनमें एक अपूर्व आनन्दका अविर्भाव हुआ। इतने दिनोंसे लगातार जिस दुबिधाके भारको वह वहन करता आ रहा था, वह हलका हो आया। इतने दिनोंसे, एक क्षणमें जो उसे अत्यन्त अप्रीतिकर मालूम होता था और दूसरे ही क्षण उसे करनेके लिए उसे बाध्य होना पड़ता था, जोरके साथ उससे 'ना' या 'हाँ' करते नहीं बनता था, उसके अन्तःकरणमें जो आदेश उठता था, बराबर जबरदस्ती उसका मुँह दबोचकर वह दूसरे रास्ते चलता था,– अब जैसे ही उसने दृढ़ कण्ठसे कहा कि 'मैं मुक्त होऊँगा', वैसे ही उसके मनकी सारी दुबिधाएँ दूर हो गईं, और उसी क्षण उसके दुबिधाके झूलेमें झूलता-हुआ पीड़ित हृदय एक आश्रय पाकर उत्फुल्ल होकर उसका अभिनन्दन करने लगा।

महेन्द्र उसी वक्त उठकर हाथ-मुँह धोकर विनोदिनीसे मिलने चल दिया। जाकर देखा कि उसके कमरेका दरवाजा बन्द है। उसने दरवाजा खटखटाते हुए कहा, "सो रही हो क्या?"

विनोदिनीने कहा, "नहीं। अभी तुम जाओ।"

महेन्द्रने कहा, "तुमसे मुझे एक खास बात करनी है,– मैं ज्यादा देर नहीं ठहरूँगा।"

विनोदिनीने कहा, "बातें अब मुझसे नहीं सुनी जातीं,– तुम जाओ, मुझे परेशान न करो, मुझे जरा अकेलेमें रहने दो।"

और-कोई समय होता तो इस प्रत्याख्यानसे महेन्द्रका आवेग और-भी बढ़ जाता ; किन्तु आज उसे अत्यन्त घृणा मालूम होने लगी। वह सोचने लगा, 'इस मामूली एक स्त्रीके लिए मैंने अपनेको इतना हीन कर डाला है कि जब-है-तब इस तरह अवज्ञा करके मुझे दुरदूरा देनेका इसे अधिकार पैदा हो गया है ! यह अधिकार इसका स्वाभाविक अधिकार नहीं है। मैंने ही इसे अधिकार देकर इसके गर्वको इस तरह अनुचित-रूपसे बढ़ा दिया है।' इस लाञ्छनाके बाद महेन्द्रने अपनेमें श्रेष्ठता अनुभव करनेकी चेष्टा की, और फिर अपने मनमें कहने लगा, 'मैं विजयी होऊँगा,—इसके बन्धनको तोड़कर मैं चला जाऊँगा।'

खा-पीकर महेन्द्र रुपया लेनेके लिए बैङ्क चला गया। वहाँसे रुपया लेकर वह आशाके लिए और माके लिए कुछ अच्छी-अच्छी नई चीजें खरीदनेके लिए बाजारमें घूमने लगा।

अब, फिर किसीने विनोदिनीका दरवाजा खटखटाया। पहले तो वह झुँझला उठी, और कुछ जवाब ही नहीं दिया,—बादमें फिर बार-बार दरवाजा खटखटाये जानेपर वह झल्लाकर उठ बैठी और गुस्सेमें जोरसे किवाड़ खोलकर कहने लगी, "क्यों तुम मुझे बार-बार परेशान करने आते हो ?—" किन्तु बात पूरी कह भी न हो पाई कि उसने देखा, सामने बिहारी खड़ा है !

कमरेमें महेन्द्र है या नहीं, यह देखनेके लिए बिहारीने एक बार चारों तरफ निगाह दौड़ाई। देखा कि घर-भरमें सूखे-हुए फूल और टूटी-हुई मालाएँ बिखड़ी पड़ी हैं। उसका मन उसी क्षण प्रबल वेगसे उससे विमुख हो उठा। जब वह दूर था तब विनोदिनीकी जीवन-यात्राके सम्बन्धमें कोई सन्देह-जनक चित्र उसके मनमें उदित न हुआ हो सो बात नहीं ; किन्तु कल्पनाकी लीलाने उस चित्रको ढककर उसकी जगह एक उज्ज्वल मोहिनी छबि खड़ी कर दी थी। बिहारी जब बगीचेमें प्रवेश कर रहा था तब उसका हृदय काँप रहा था। इस डरसे कि कहीं उसकी कल्पनाकी प्रतिमापर अकस्मात् आघात न आ लगे, उसका चित्त संकुचित हो रहा था। अब विनोदिनीके शयनगृहके दरवाजेपर आकर खड़े होते ही उसे वही आघात लगा।

विनोदिनीने कहा, "मैंने गाँवसे तुम्हें जो पत्र लिखा था, उसे खोलकर ना कुछ जवाब दिये ही तुमने महेन्द्रके हाथ उसे वापस क्यों कर दिया था ?"

बिहारीने कहा, "तुम्हारा कोई पत्र मुझे नहीं मिला।"

विनोदिनीने कहा, "अबकी बार कलकत्तेमें महेन्द्रसे तुम्हारी भेंट हुई थी या ?"

बिहारीने कहा, "तुम्हें गाँव पहुँचा आनेके दूसरे दिन महेन्द्र मेरे घरपर या था, और उसके बाद ही मैं कलकत्ता छोड़कर इधर घूमने निकल पड़ा था। से फिर मेरी भेंट नहीं हुई।"

विनोदिनीने फिर पूछा, "उसके पहले और-किसी दिन मेरी चिट्ठी बिना पर दिये तुमने वापस कर दी थी ?"

बिहारीने कहा, "नहीं, ऐसा कभी नहीं हुआ।"

विनोदिनी स्तम्भित होकर बैठी रही। उसके बाद एक दीर्घ-निःश्वास कर बोली, "अब मैं सब समझ गई। अब मैं अपनी सब बातें तुमसे कहती हूं। अगर विश्वास करो तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगी, और अगर न करो तो तुम्हें कोई दोष न दूंगी,—मुझपर विश्वास करना कठिन है।"

बिहारीका हृदय उस समय आर्द्र हो गया था। इस भक्ति-भारसे विनम्र विनोदिनीकी पूजाका वह किसी भी तरह अपमान न कर सका। उसने कहा, "भाभी, तुम्हें अब कुछ भी कहनेकी जरूरत नहीं, बिना कुछ सुने ही मैं तुम्हारा विश्वास करता हूं। मैं तुमसे घृणा नहीं कर सकता। अब तुम एक भी शब्द मत कहो।"

इतना सुनते ही विनोदिनीकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे, उसने बिहारीके पाँवोंकी धूल माथेसे लगा ली। बोली, "सब बातें बिना बताये मैं जी नहीं सकती। जरा धीरज रखके तुम्हें सुनना ही होगा। तुमने मुझे जो आदेश दिया था उसे मैंने शिरोधार्य कर लिया। यद्यपि तुमने मुझे एक पत्र भी नहीं दिया, फिर भी मैं अपने गाँववालोंकी निन्दा और हँसीको सहती-हुई गाँवमें अपना जीवन बिता देती, तुम्हारे स्नेहके बदले तुम्हारे शासनको ही अपना ती,—किन्तु विधाताको यह स्वीकार न था। मैंने जिस पापको जगाया था

उसने मुझे निर्वासनमें भी नहीं टिकने दिया। महेन्द्रने गाँवमें
घरके दरवाजेपर जाकर, मुझे सबके सामने लाञ्छित किया।
मेरे लिए स्थान नहीं रहा। दूसरी बार फिर तुम्हारे आदेशके
बहुत खोजा, पर किसी भी तरह मैं तुम्हें पा न सकी।
मेरी खुली-हुई चिट्ठी तुम्हारे घरसे वापस लाकर मुझे धोखा
समझा कि तुमने मुझे बिलकुल ही त्याग दिया। इसके बाद
नष्ट हो सकती थी,– किन्तु मालूम नहीं, तुममें क्या गुण है, तुम
भी रक्षा कर सकते हो,– तुम्हें मैंने अपने मनमें स्थान दिया है, इसीसे
हो गई हूं। एक दिन तुमने मुझे दूर करके अपना जो परिचय
तुम्हारा वही कठोर परिचय, कठोर सोनेकी तरह, कठोर मणि
मनमें विराज रहा है। उसने मुझे महामूल्य कर दिया है।
तुम्हारे इन चरणोंको छूकर कहती हूं, मेरा वह मूल्य नष्ट नहीं

बिहारी चुप बैठा रहा। विनोदिनीने भी फिर कोई

अपराह्नका प्रकाश क्रमशः म्लान होता जा रहा था। इतनेमें
द्वारके पास आकर बिहारीको देखकर चौंक पड़ा। विनोदिनी
मनमें जो एक उदासीनता पैदा हो रही थी वह ईर्षाकी ताड़ना
विनोदिनी बिहारीके पैरोंके पास स्तब्ध बैठी-हुई है, यह देखकर
अस्वीकृत महेन्द्रके गर्वको बड़ी गहरी चोट पहुँची। अब उसे
न रहा कि बिहारीका विनोदिनीके साथ जरूर पत्र-व्यवहार चल
उसीका यह नतीजा है। अब तक बिहारी विमुख था, अब अगर
आकर पकड़ाई दे, तो विनोदिनी किसके रोके रुक सकती है? आज
देखकर महेन्द्र इस बातको समझ गया कि वह विनोदिनीको छोड़
किन्तु और-किसीके हाथ नहीं छोड़ सकता।

व्यर्थ रोषसे तीव्र व्यंगके स्वरमें महेन्द्रने विनोदिनीसे कहा, "तो अब
से महेन्द्रका प्रस्थान और बिहारीका प्रवेश है! दृश्य बहुत सुन्दर है,
पीटकर अभिनन्दन करनेको जी चाहता है। किन्तु आशा है कि
अङ्कका शेष दृश्य होगा। इसके बाद और कुछ भी अच्छा नहीं

विनोदिनीका चेहरा सुर्ख हो उठा। महेन्द्रका आश्रय लेनेके लिए जब कि बाध्य होना पड़ा है, तब इस अपमानका उत्तर उसके पास कुछ भी नहीं वह व्याकुल-दृष्टिसे सिर्फ एक बार बिहारीकी तरफ देखकर रह गई।

बिहारी लंगसे उठा और आगे बढ़कर महेन्द्रसे बोला, "महेन्द्र, विनोदिनी तुम काए,रुषोंकी तरह अपमान न करो। तुम्हारी भद्रता अगर तुम्हें न सके तो तुम्हें रोकनेका अधिकार मुझे है।"

महेन्द्र हँस दिया, बोला, "इस बीचमें अधिकार भी ठीक हो गया! तो तुम्हारा नया नामकरण कर दिया जाय,– विनोद-बिहारी!"

बिहारीने अपमानकी मात्रा बढ़ते देख महेन्द्रका हाथ पकड़ लिया ; और "सुनो, हेन्द्र, विनोदिनीसे मैं विवाह करूँगा, मैं तुम्हें जताये देता हूं। ाए अबसे तुम संयत होकर बात करना।"

सुनकर महेन्द्र मारे विस्मयके निस्तब्ध हो गया ; और विनोदिनी चौंक , उसकी [illegible] भीतरका रक्त उथल-पुथल होने लगा।

बिहारीने कहा, "तुम्हें और एक संवाद देना है, तुम्हारी मा मृत्यु-शय्यापर ड़ी हैं, उनके जीनेकी कोई आशा नहीं। मैं आज रातकी गाड़ीसे ही चला ाऊंगा,– वि[illegible]नी भी मेरे साथ जायेगी।"

विनोदिनी फिर चौंक उठी, बोली, "बुआजी इतनी बीमार हैं?"

बिहारीने कहा, "अच्छी होनेवाली बीमारी नहीं है वह। कब क्या हो , कहा [illegible] जा सकता।"

इसके बाद महेन्द्र और-कोई बात न कहकर चुपचाप घरसे बाहर निकल ।

विनोदिनीने बिहारीसे कहा, "जो बात तुमने अभी कही है वह तुम्हारे से निकली कैसे? यह क्या उपहास कर रहे हो?"

बिहारीने कहा, "नहीं, मैं सच कह रहा हूं, तुमसे मैं विवाह करूँगा।"

"इस पापिष्ठाका उद्धार करनेके लिए?"

"नहीं। मैं तुमसे प्रेम करता हूं, श्रद्धा करता हूं, इसलिए।"

"बस बस, यही मेरे लिए चरम पुरस्कार है। इतना जो तुमने मुझे

तुम्हारा

कहा था कि बहू, आज तुम अपने हाथसे रसोई बनाना, बिहारीको मैं अपने सामने बिठाकर खिलाऊँगी।"

यह सुनकर बिहारीकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने पूछा, "मा[illegible] तबीयत कैसी है ?" आशाने कहा, "तुम एक बार खुद चलकर देख लो,—मुझे तो लगता है, रोग बढ़ता ही जाता है।"

बिहारी कमरेके भीतर चला गया। महेन्द्र बाहर खड़ा-खड़ा [illegible] करने लगा, आशाने अनायास ही घरका कर्तृत्व ग्रहण कर लिया है। उसने उसे भीतर जानेसे कितनी स्वाभाविकतासे रोक दिया ! न सङ्कोच [illegible] अभिमान ! महेन्द्रका बल आज कितना घट गया है, आज वह अपराधी [illegible] वह चुपचाप बाहर खड़ा रहा,—माके कमरेमें भी न घुस सका।

उसपर यह भी एक बड़े आश्चर्यकी बात है कि बिहारीके साथ आशा कैसी निःसङ्कोच होकर बात करने लगी है। सब सलाह उसीसे होती है, [illegible] आज घरका एकमात्र रक्षक है, सबका हितू है, मित्र है। उसकी [illegible] सर्वत्र है, उसीके उपदेशसे सब चल रहा है। महेन्द्र कुछ दिनोंके लिए [illegible] जगहको छोड़कर चला गया था, वापस आकर देखता है कि वह जगह [illegible] पहले-जैसी नहीं रही।

बिहारीके भीतर घुसते ही राजलक्ष्मीने अपनी करुण दृष्टि बिहारीके मुँह [illegible] रखते-हुए कहा, "आ गया, बेटा !" बिहारीने कहा, "हाँ, मा, आ गया।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तेरा काम पूरा हो गया ?" इतना कहकर वे [illegible] दृष्टिसे उसके मुँहकी तरफ देखने लगीं।

बिहारी प्रफुल्ल मुखसे बोला, "हाँ मा, मेरा काम पूरा [illegible] गया, अब मुझे कोई चिन्ता नहीं।" इतना कहकर उसने एक बार बाहरकी तरफ देखा।

राजलक्ष्मीने कहा, "आज मेरी बहू-रानी तेरे लिए अपने हाथसे रसोई बनायेगी, मैं यहींसे पड़ी-पड़ी बताती रहूंगी। डाक्टर मना करते हैं,—[illegible] अब मनाही किस लिए, बेटा ! मैं क्या जी भरकर तुमलोगोंको एक बार अपने सामने बिठाकर खिला भी न जाऊँ ?"

बिहारीने कहा, "इसमें डाक्टरकी मनाहीका तो कोई कारण नहीं [illegible] होता मुझे। मा, तुम नहीं बताओगी तो काम कैसे चलेगा ? बचपनसे

ही तुम्हारे हाथकी रसोई हमलोगोंको अच्छी लगती आई है,– और महेन भइयाका तो पश्चिमकी दाल-रोटी खाते-खाते जी ऊब गया होगा,– आज, तुम्हारी बहू-रानीके हाथका मछलीका झोर खाकर उनका कायापलट हो जायगा। आज हम दोनों भाई बचपनकी तरह होड़ लगाकर खायेंगे,– देखें आज तुम्हारी बहू-रानी कहाँ तक खिला सकती हैं !"

यद्यपि राजलक्ष्मी समझ गई थीं कि बिहारी महेन्द्रको अपने साथ लेता आया है, फिर भी उसका नाम सुनते ही उनके हृदयका स्पन्दन क्षण-भरके लिए बढ़ गया और साँस लेनेमें कष्ट होने लगा।

कष्ट कुछ उपशम होनेपर महेन्द्रने कहा, "पश्चिम जाकर महेन-भइयाका स्वास्थ्य तो कुछ अच्छा हो गया है। सफरकी वजहसे चेहरेपर आज कुछ थकान जरूर है, नहाने-खानेके बाद ही सब ठीक हो जायगा।"

राजलक्ष्मी फिर भी महेन्द्रके सम्बन्धमें कुछ नहीं बोलीं। और तब बिहारी कहने लगा, "मा, महेन-भइया बाहर खड़े हैं, तुम्हारे बुलाये बिना उनसे आते नहीं बन रहा है।"

राजलक्ष्मी मुँहसे कुछ न कहकर दरवाजेकी तरफ देखने लगीं। देखते ही बिहारी पुकार उठा, "महेन-भइया, भीतर आओ।"

महेन्द्रने धीरे-धीरे घरमें प्रवेश किया। राजलक्ष्मी इस डरसे कि कहीं सहसा उनका हृदय-स्पन्दन बन्द न हो जाय, महेन्द्रके मुँहकी तरफ तत्काल देख न सकीं। [illegible]-आधी आँखें नीचे रहीं। महेन्द्र माके बिस्तरकी तरफ देखते ही [illegible] मानो किसीने उसे तमाचा मार दिया हो।

[illegible] पाँवोंके पास सिर रखकर पाँव पकड़े पड़ा रहा। हृदयके स्पन्दनसे राजलक्ष्मीका सारा शरीर काँप उठा। कुछ देर बाद अन्नपूर्णाने धीरेसे कहा, "जीजी, महेनको तुम उठनेके लिए कहो, नहीं तो वह नहीं उठेगा।"

राजलक्ष्मीने मुश्किलसे मुंहसे शब्द निकालते-हुए कहा, "महेन, उठ।"

महेन्द्रका नाम उच्चारण करते ही बहुत दिन बाद उनकी आँखोंसे झरझर आँसू झरने लगे। भीतरके आँसुओंने बाहर निकलकर उनके हृदयकी वेदनाको कुछ हलका कर दिया। तब महेन्द्र उठा और जमीनपर घुटने टेककर पलंग की पाटीपर छाती रखकर अपनी माके पास आकर बैठ गया। राजलक्ष्मीने

मुश्किलसे करवट बदलकर दोनों हाथोंसे महेन्द्रका सिर अपनी तरफ खींचकर उसके माथेको सूँघा और चूम लिया। महेन्द्र गद्‌गद कण्ठसे बोला, "माँ, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिये हैं, अब मुझे माफ कर दो।"

हृदय शान्त होनेपर राजलक्ष्मीने कहा, "ऐसी बात तू न कह, महेन, तुझे माफ किये बिना क्या मैं जी सकती हूं! – बहू, बहू! कहाँ गई?"

आशा बगलके कमरेमें पथ्य बना रही थी। अन्नपूर्णा उसे बुला लाईं।

तब राजलक्ष्मीने महेन्द्रको जमीनसे उठकर पलंगपर बैठनेके लिए इशारा किया। महेन्द्रके पलंगपर बैठ जानेपर राजलक्ष्मीने आशाको उसके पास बैठनेके लिए जगह दिखाते-हुए कहा, "बहू, तुम यहाँ बैठो, – आज मैं तुम दोनोंको एक बार एकसाथ बिठाकर देखूंगी, इससे मेरा सब दुःख जाता रहेगा, बहू! बेटी, अब मुझसे तुम शरमाओ मत, – और महेनसे भी अपने मनमें किसी तरह अभिमान न रखकर एक बार यहाँ बैठ जाओ, आज मुझे अपनी आँखें ठंडी कर लेने दो, बेटी!"

तब आशा घूँघट काढ़े लज्जाके साथ धीरे-धीरे कम्पित हृदयसे महेन्द्रके पास जाकर बैठ गई। राजलक्ष्मीने अपने हाथमें आशाका दाहना हाथ लेकर महेन्द्रके हाथमें रखते-हुए कहा, "मैं अपनी इस रानी-बेटीको तेरे हाथ सौंपे जाती हूं, – मेरी एक बात याद रखना, ऐसी लक्ष्मी और कहीं भी तुझे नहीं मिलनेकी। मझली-बहू, आओ, इन्हें एक बार आशीर्वाद दो, – तुम्हारे पुण्यसे इनका कल्याण हो।"

अन्नपूर्णाके सामने आकर खड़े होते ही दोनोंने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उन्हें प्रणाम किया और पांवकी धूल माथेसे लगाई। अन्नपूर्णाने दोनोंका माथा चूमते-हुए कहा, "भगवान तुमलोगोंका कल्याण करें।"

राजलक्ष्मीने कहा, "बिहारी, आओ बेटा, तुम भी महेनको क्षमा कर दो।"

बिहारीके उसी क्षण महेन्द्रके सामने जा खड़े होते ही महेन्द्रने उठकर दोनों बाहुओंसे उसे अपनी छातीसे लगा लिया।

राजलक्ष्मी बोलीं, "महेन, मैं तुझे यही आशीर्वाद देती हूं कि बचपनसे बिहारी तेरा जैसा मित्र रहा है, हमेशा वैसा ही बना रहे। इससे बढ़कर तेरा सौभाग्य और कुछ भी नहीं हो सकता।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी अत्यधिक क्लान्तिके कारण निस्तब्ध हो गईं। ारी एक उत्तेजक दवा उनके मुँहके पास ले गया तो उन्होंने उसका हाथ दिया, और कहा, "अब दवाका क्या होगा, बेटा ! अब मुझे भगवानका ण करने दे,– वे ही मुझे मेरे समस्त संसार-दाहकी आखिरी दवा देंगे। न, अब तुमलोग जाकर जरा आराम करो। बहू, जाओ, रसोई चढ़ाओ।"

शामके वक्त बिहारी और महेन्द्र दोनों राजलक्ष्मीके सामने भोजन करने । आशापर परोसनेका भार था, वह परोसने लगी।

महेन्द्रकी छातीके भीतरसे आँसू उमड़े आ रहे थे, उसके मुँहमें कौर नहीं ता था। राजलक्ष्मी उससे बार-बार कहने लगीं, "महेन, तू कुछ खा क्यों ीं रहा है ? अच्छी तरह खा, मैं देखूं!"

बिहारीने कहा, "जानती हो, मा, महेन-भइया हमेशासे ही ऐसे हैं, कुछ ही नहीं सकते। भाभी, छैनेकी कढ़ी जरा और देना, बड़ी अच्छी बनी है।"

राजलक्ष्मी प्रसन्न होकर जरा हँसती-हुई बोलीं, "मैंने कहा था न, बिहारीको की कढ़ी अच्छी लगती है। अरे, इतनेसे क्या उसका होगा, बहू, जरा छी तरह परोसो।"

बिहारीने कहा, "तुम्हारी यह बहू बड़ी कंजूस है, मा, हाथसे जल्दी कुछ कलता ही नहीं।"

राजलक्ष्मी हँसती-हुई बोलीं, "देखो तो, बहू, बिहारी तुम्हारा ही नमक कर तुम्हारी ही निन्दा कर रहा है !"

अबकी बार आशाने बिहारीकी थालीमें बहुत-सी कढ़ी परोस दी। बिहारी ने लगा, "हाय हाय, सिर्फ कढ़ी खिलाकर ही पेट भर दोगी मालूम होता । बाकीकी सब अच्छी-अच्छी चीजें भाई-साहबकी थालीमें परोसी जायेंगी !"

आशा अस्पष्ट स्वरमें कह गई, "निन्दकका मुँह किसी भी तरह बन्द ही ीं होता !"

बिहारीने भी मृदु स्वरमें कहा, "मिठाई देकर परीक्षा कर देखो, बन्द होता ा नहीं !"

दोनों मित्र एकसाथ बैठकर भोजन कर चुके तो राजलक्ष्मीको बड़ा सन्तोष ा। उन्होंने कहा, "बहू, अब तुम जल्दीसे खा-पी लो।"

राजलक्ष्मीके आदेशसे आशा जब खाने चली गई, तो उन्होंने कहा, "महेन, जा तू, आराम कर जाके।"

महेन्द्रने कहा, "अभीसे सो जाऊँ जाकर?"

महेन्द्रने निश्चय किया था कि आज वह माकी सेवा करेगा, राजलक्ष्मीने ऐसा नहीं करने दिया। उन्होंने कहा, "तू रास्तेका है, जा, सो जाकर।"

आशा खा-पीकर पंखा हाथमें लिये राजलक्ष्मीके सिरहाने बैठी, उन्होंने धीरेसे कहा, "बहू, महेन्द्रके बिस्तर वगैरह ठीकसे हुए कि न देख तो आओ,—वह अकेला होगा।"

आशा मारे शरम गड़-गड़ गई और किसी तरह कमरेसे बाहर ऊपर चली गई। राजलक्ष्मीके पास अन्नपूर्णा और बिहारी रह गये। रा बिहारीसे पूछा, "तुझसे एक बात पूछती हूं, बेटा। तू बता विनोदिनीका क्या हुआ? अब वो कहाँ है?"

बिहारीने कहा, "कलकत्ते ही में है।"

राजलक्ष्मी नीरव दृष्टिसे बिहारीसे कुछ पूछने लगीं। बिहा गया। बोला, "विनोदिनीके बारेमें अब तुम्हें कोई डर नहीं, मा।"

राजलक्ष्मीने कहा, "उसने मुझे बड़े दुःख दिये हैं, बिहारी, फि उसे भीतरसे चाहती हूं।"

बिहारीने कहा, "वह भी भीतरसे तुम्हें बहुत चाहती है, मा।"

राजलक्ष्मी बोलीं, "मुझे भी ऐसा मालूम होता है। दोष-गुण सभी हैं, पर वो मुझे चाहती जरूर थी, वैसी सेवा कोई कपटसे नहीं कर सक

बिहारी बोला, "तुम्हारी सेवा करनेके लिए वह व्याकुल हो रही है

राजलक्ष्मीने एक गहरी साँस ली और कहा, "महेन्द्र वगैरह तो अब चले गये हैं,—रातको उसे एक बार यहाँ ले आनेमें हर्ज क्या है?"

बिहारीने कहा, "मा, वो तो बाहरवाले घरमें छिपी बैठी है। मैंने कहा, पर उसने आज दिन-भर पानी तक नहीं छुआ। उसने प्रतिज्ञा है कि जब तक तुम उसे बुलाकर माफ नहीं कर दोगी तब तक